माध्यमिक पाठ्यक्रम

भारतीय दर्शन-247

पुस्तक-2

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

माध्यमिक स्तर

भारतीय दर्शन-247

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति,
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर:, कलिकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावडा-711202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ्यविषय निर्माण समिति

संपादक मण्डल

डॉ. वेंकटरमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय,
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुल गाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठः 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)
श्री विष्णुपदपाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावड़ा-711202 (प.बंगाल)

(पाठः 16)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कलकत्ता-700035 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. योगेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, उस्नोता,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आप से दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत से शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' नामक से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक है, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बने, देशभक्त हो, और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है की जो गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखे हुये हैं। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि। भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्चतर माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना आवश्यक है।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थो के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।

अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हों, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठयक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

भारतीय दर्शन, माध्यमिक की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

दर्शन प्रस्थान परिचय

1. दर्शन का सामान्य परिचय
2. भारतीय विद्या विभाग
3. भारतीय विद्या परिचय-1
4. भारतीय विद्या परिचय-2
5. प्रस्थानत्रयी का श्रुतिप्रस्थान
6. प्रस्थानत्रयी के स्मृति-न्याय प्रस्थान

नास्तिक दर्शन

7. चार्वाक दर्शन
8. बौद्ध दर्शन
9. आर्हत दर्शन

आस्तिक दर्शन

10. न्याय दर्शन
11. वैशेषिक दर्शन
12. सांख्य दर्शन
13. योग दर्शन
14. मीमांसा दर्शन
15. वेदान्त दर्शन-1
16. वेदान्त दर्शन-2

पुस्तक-2

17. अनुबन्ध चतुष्टय
18. निर्गुण ब्रह्म
19. सगुण ब्रह्म
20. अज्ञान
21. जीव
22. अध्यारोप-अपवाद
23. बहिरन्न साधन
24. अन्तरन्न साधन
25. मोक्ष

भारतीय दर्शन

माध्यमिक पाठ्यक्रम

पुस्तक-2

क्रम	विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
अद्वैत वेदान्त		
17.	अनुबन्ध चतुष्टय	1
18.	निर्गुण ब्रह्म	23
19.	सगुण ब्रह्म	36
20.	अज्ञान	49
21.	जीव	67
22.	अध्यारोप-अपवाद	80
23.	बहिरन्न साधन	99
24.	अन्तरन्न साधन	124
25.	मोक्ष	143

17

अनुबन्ध चतुष्टय

प्रस्तावना

किसी भी शास्त्र में प्रवेश से पहले उस के विषय में अच्छी तरह से जानना चाहिए। ग्रन्थ के विषय प्रयोजन आदि के निरूपण के लिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण किया जाता है। जिस प्रकार आस्तिक लोग ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं उसी प्रकार वहाँ अनुबन्धों का भी उल्लेख करना चाहिए। अनुबन्धों से यह ज्ञान होता है यह शास्त्र किस पाठक के लिए उपयुक्त है अर्थात् इस शास्त्र को पढ़ने के लिए कौन सा पाठक योग्य है? शास्त्र का विषय क्या है? शास्त्र के साथ विषय का कौन सा सम्बन्ध है? इस शास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ है? फलतः कहा जा सकता है कि अनुबन्ध वाचक होते हैं। शास्त्रों के भेद से अनुबन्धों के वाच्यों में भी परिवर्तन आते हैं। इस पाठ में वेदान्त शास्त्रों के अनुबन्धों का विचार किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अनुबन्ध चतुष्टय क्या है यह जान पाने में;
- वेदान्त में अनुबन्ध चतुष्ट्य क्या है यह जान पाने में;
- वेदान्त के अधिकारी को जान पाने में;
- वेदान्त के विषय को जान पाने में;
- वेदान्त के प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त करने में;

- वेदान्त में कहे गए प्रयोजन के लाभ को प्राप्त करने के लिए अधिकारी बनने के लिए प्रयुक्त होगें;
- मनुष्य जीव का लक्ष्य जान पाने में;
- वेदान्त की व्यावहारिकता को समझनें एवं जीवन जीने में सक्षम होंगे;
- वेदान्त में प्रौढ़ ग्रन्थों में रूचि रखते हुए उच्चतर तत्त्वों की खोज में प्रवृत्त होंगे।

17.1 आलोचित विषय-

शास्त्रों में प्रवेश से पूर्व हमारे मन में कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठते हैं-

1. इस शास्त्र को कौन पढ़ सकता है अर्थात् इस शास्त्र का अधिकारी कौन है?
2. इस शास्त्र में किन विषयों का प्रतिपादन किया गया है?
3. लिखित विषय के साथ पुस्तक का तथा पाठक के साथ विषय का कौन सा सम्बन्ध है?
4. इस शास्त्र के प्रयोजन क्या हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु अनुबन्धों का उपस्थापन करते हैं। अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन ये चार अनुबन्ध है, इन्हें ही ''अनुबन्ध चतुष्टय'' कहा जाता है। ''अनु स्वज्ञानात् अनन्तर बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जन्ति प्रवर्तयन्ति ये ते अनुबन्धा'' यह अनुबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति है जिसका तात्पर्य है कि जो अपने ज्ञान से अन्य को बांध कर ग्रन्थ अथवा शास्त्र में प्रवृत्त करते हैं उन्हें अनुबन्ध कहते हैं। अत एव अनुबन्धों के ज्ञान के बाद ही किसी शास्त्र में पुरूष की प्रवृत्ति सम्भव है। यदि शास्त्र के आदि में अनुबन्धों का उल्लेख नहीं होता है तो ''शास्त्र पढ़ने में पाठक की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसीलिए कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्तिक में कहा है-

''ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतु श्रोता प्रवर्तते।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्य सम्बन्धः सप्रयोजनः॥'' इति (1/1/17)

श्रोता, ज्ञाता, अर्थ, सम्बन्ध का ज्ञान करके ही शास्त्र में प्रवृत्त होता है। अतः शास्त्र के प्रारम्भ में सम्बन्धादि का उल्लेख अवश्य ही करना चाहिए। यह श्लौकार्थ है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन इन अनुबंधों के क्रम में विषय में भी कोई नियम है क्या। तब कहा जाता है कि शास्त्र के ज्ञाता के बिना शास्त्र में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है, अतः अधिकारी का उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिए। यद्यपि अधिकारी की उपस्थिति हो गयी है परन्तु विषय ज्ञान से हीन अधिकारी की शास्त्र में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है इसलिए दूसरे क्रम में विषय का उल्लेख करना चाहिए। विषय के साथ शास्त्र अथवा व्यक्ति के सम्बन्ध का ज्ञान आवश्यक है इसलिए तृतीय

स्थान में सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है। प्रयोजन की स्थिति हमेशा अन्तिम होती है। इसलिए चौथे नम्बर में प्रयोजन का उल्लेख है।

आस्तिक दर्शन छः हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। उत्तरमीमांसा दर्शन ही वेदान्त कहा जाता है। अब प्रसंगानुसार प्राप्त वेदान्त दर्शन के अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन क्या है ये प्रकरण ग्रन्थों के आधार पर विस्तार से वर्णन करते हैं। अब यह समझना चाहिए कि किसी भी शास्त्र के जो अनुबन्ध होते हैं, उस शास्त्र के प्रकरण ग्रन्थों के भी वो ही अनुबन्ध होते हैं। प्रकरण ग्रन्थ का तात्पर्य क्या है, इस विषय में कहा जाता है-

''शास्त्रैकदेशसम्बन्धं शास्त्रकार्यन्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरण नाम ग्रन्थभेऽं विपश्चितः॥''

इति (पराशर उपपुराण 1.3/21-22)

जो ग्रन्थ शास्त्र के एकदेश से सम्बन्धित होता है, तथा उस सम्बन्धित विषय को ही विशेषतया विस्तार करता है, उस ग्रन्थ को विद्वान लोग प्रकरण ग्रन्थ कहते हैं। जैसे वेदान्तसार, विवेकचूड़ामणि, पञ्चदशी इत्यादि ग्रन्थ वेदान्त शास्त्र के प्रकरण ग्रन्थ हैं।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. अनुबन्ध क्या है?
2. अनुबन्ध की व्युत्पत्ति क्या है?
3. आस्तिक दर्शन कितने हैं?
4. उत्तरमीमांसा का दूसरा नाम क्या है?
5. वेदान्तशास्त्र के एक प्रकरण ग्रन्थ को बताइए।

अब वेदान्तसार के अनुसार अनुबन्ध चतुष्टय की व्याख्या करते हैं।

17.2 अधिकारी

वेदान्तसार में अधिकारी का स्वरूप कहा गया है-

'अधिकारी तु विधिवद्धीतवेदवेदाङ्गत्वेन अपाततः अधिगताखिलवेदार्थः अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरः सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मल- स्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता।'' इति

प्रमाता तु अधिकारी इस प्रकार अन्वय किया गया है। तु शब्द के द्वारा वेदान्ताधिकारी

अन्य अधिकारियों की अपेक्षा विशिष्ट गुणों से सम्पन्न हो यह सिद्ध होता है। प्रमाता ही अधिकारी है। 'शेष सभी पद प्रमाता के विशेषण हैं। प्रमाता शब्द का अर्थ ''ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरूष यह है। इस लक्षण का सरलार्थ इस प्रकार है- इस जन्म में तथा अन्य जन्मों में विधि के अनुसार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरूक्त इन सभी अंगों के साथ वेद के अध्ययन के द्वारा संशय के विरोधी तथा निश्चयरूपी समग्र वेदार्थ को जानकर, काम्य तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग करके, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासनारूप कर्मों का अनुष्ठान करके चित्त की निर्मलता का सम्पादन करके नित्य तथा अनित्य वस्तु के ज्ञान को, यहाँ तथा अन्यत्र फल भोग के विराग को, शमदमादिषटक को तथा मुमुक्षुत्व को जिसने प्राप्त कर लिया है वही पुरूष यहाँ अधिकारी है। इस अधिकारी को लक्षण के विषय में अनेक व्याख्याएं हैं। अब वेदान्तसार की विविध व्याख्याओं के अनुसार अधिकारी का लक्षण विस्तार से बताया जा रहा है।

श्रीमान् आपदेव द्वारा विरचित बालबोधिनी नामक वेदान्तसार की अत्यंत प्रसिद्ध व्याख्या है। बालबोधिनीकार के मत में ''प्रमातृशब्दः सदाचारप्रयुक्तब्रह्मणादिपरः'' इति। अर्थात् वेदों के अध्ययनादि सदाचारों से युक्त ब्राह्मण प्रमाता है। परन्तु ऐसा स्वीकार करने पर स्त्री, शूद्र आदि जिनको वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं है, उनके वेदान्त श्रवण के अधिकार का भी निषेध हो जाता है।

श्री रामतीर्थयति जी द्वारा विरचित विद्वन्मनोरञ्जनी यह वेदान्तसार की अत्यन्त प्रमाणित व्याख्या है। विद्वन्मनोरञजनीकार के मत में ''लौकिकवैदिकव्यवहारेषु अश्रान्तः जीवः एव प्रमाता'' इति। अर्थात् जो पुरूष ज्ञान होने के साथ-साथ लौकिक तथा वैदिक कर्मों का सविधि सम्पादन करता है वह प्रमाता है। प्रमाता शब्द से सभी जीवों का ग्रहण सम्भव नहीं है क्योंकि सभी जीव यथा रूप से सभी कार्यों को सम्पादित नहीं कर पाते हैं। जो व्यक्ति जिस कार्य का अधिकारी नहीं है यदि वह उस कार्य को करता है तो प्रमाद हो सकता है। यदि प्रमाता शब्द से सभी का ग्रहण होता तो जिनका वेदान्त में अधिकार नहीं है उनका भी ग्रहण हो जाएगा। किन्तु वेदान्त अत्यन्त गूढ़ है वहाँ भ्रम हो सकता है। शास्त्र का अभिप्राय सभी नहीं समझ सकते हैं। कहीं अलग ही प्रतिपादन कर देते हैं। अतः वेदान्त में सभी जीव प्रमाता नहीं होते हैं। परन्तु केवल प्रमाता ही अधिकारी नहीं होता है। और भी उपयुक्तगुण उसमें होने चाहिए। प्रमाता किन गुणों से युक्त हो यह क्रम से प्रतिपादित किया है।

अधिकारी के लक्षण में कहा, ''साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता अधिकारी'' इति। चार प्रकार के साधन हैं, उन साधनों से युक्त प्रमाता होता है वही अधिकारी कहलाता है। प्रमाता तभी साधन चतुष्टय से युक्त होता है जब उसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल होता है। शुद्ध सत्त्व से युक्त ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसीलिए मुण्डकोपनिषद् में सुना जाता है ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मालोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (3/2/5) यह श्रुति यहाँ प्रमाण है। मन तभी निर्मल होता है जब मल समग्रतया मन से बाहर निकल जाते हैं। मल ही कल्मष कहा जाता है।

मल के कारण से ही मनुष्य नित्य तथा अनित्य वस्तुओं को पहचान नहीं पाता है।, संसार में बंध जाते हैं, उनमें सद्गुणों का विकास नहीं हो पाता है। अत: मल के निष्कासन की अत्यन्त आवश्यकता है। और मल का निष्कासन तभी सम्भव है जब व्यक्ति काम्य तथा निषिद्ध कर्मो का त्याग करते हुए नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चित इन तीन कर्मो का अनुष्ठान करे। अत: इसे तप का आचरण करना चाहिए। ऐसे तप से अर्थात् कर्मो के इस प्रकार से आचरण से कल्मष दूर हो जाते हैं। मनुसंहिता में कहा गया है ''तपसा कल्मषं हन्ति, विद्ययामृतमृनुते'' (12/104) यह स्मृति वाक्य यहाँ प्रमाण है। तैत्तिरीयोपनिषद् के भाष्य में भगत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है ''तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व'' (तै. उ. 3/2/1) इति।

अत: विद्या की उत्पत्ति के लिए कर्मो का आचरण करना चाहिए।'' अनुशस्तीत्यनुशासनम्'' इस शब्दानुशासन की व्युत्पत्ति में तो दोषों की उत्पत्ति हो सकती है। कर्मो के पहले कहे जाने के कारण, केवल ब्रह्मविद्या के अभ्यास से पहले कर्म बताए गए हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है ''लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषय: क्षीणकल्मषा:। छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता:।।'' (5/25) इति।।

इनका आचरण तभी सम्भव है जब प्रमाता ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व चारों वेदों का अर्थ सामान्यतया जानता है, वेदों का अर्थज्ञान वेदांगों के साथ ही सम्भव है। व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, शिक्षा, कल्पसूत्र तथ छन्दशास्त्र ये छ: वेदांग है। छहों वेदांगों के द्वारा ही वेदों के अर्थ का सम्यक् ज्ञान सम्भव है, अन्यथा नहीं है। अत: वेदों के अर्थ के परिज्ञान के लिए छहों अकों के साथ-साथ वेदाध्ययन की आवश्यकता है। अत: लक्षण में ''विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेन'' यह कहा है।

अब प्रश्न उठता है कि वेदों में ही वेदान्त अन्तर्निहित है। वेदांग के साथ विधि का अनुसरण करते हुए वेदपाठ होता है तो प्रमाता वेद पाठ काल में ही वेदान्त के तत्त्व को जानता है। इसलिए अलग से वेदान्त शास्त्र के ज्ञान की योग्यता प्राप्त नहीं करनी चाहिए। इस प्रश्न के समाधान के लिए लक्षण में ''आपातत:'' इस पद का प्रयोग होता है। आपातत: इसका अर्थ प्राथमिकता यह है। जो प्राथमिकतया वेदार्थ को जानता है परन्तु वेदान्त तत्व को नहीं जानता है वैसा प्रमाता यहाँ अधिकारी है।

यहाँ अब यह जानना चाहिए कि विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन, वेदार्थ का ज्ञान, काम्य तथा निषिद्ध कर्मो का परित्याग, नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चित कर्मो का अनुष्ठान इत्यादि कर्म एक तो जन्म में करेंगे जिन्होंने पूर्व जन्म में यह सभी नहीं किया है। परन्तु जिन्होंने ये कर्म पूर्वजन्म में अनुष्ठित कर लिया है उनके लिए इस जन्म में नित्यादि कर्मो की आवश्यकता नहीं है। यहाँ प्रश्न होता है कि हम कैसे जान सकते हैं कि कोई व्यक्ति पूर्व जन्म में नित्यनैमित्तिकादि कर्मो को साध पाये या नहीं? वहाँ कहा जाता है जो द्विजकुल में उत्पन्न नहीं है अपितु शूद्रकुल में उत्पन्न नहीं है, परन्तु उनका मन संसार में लीन नहीं है। वहाँ पूर्व जन्म में सम्पादित नित्यकर्मो के द्वारा मन: शुद्धि ही कारण है। वे लोग इस जन्म में यद्यपि वेदाध्ययन वैदिक कर्मो का अनुष्ठान नहीं कर पाये

हैं किन्तु उसके बिना भी वह वेदान्त के अधिकारी हैं। जैसे विदुरादि। अनेक महापुरूष एक ही जन्म में विधिपूर्वक वेदाध्ययन के द्वारा नित्यकर्मों के अनुष्ठान के द्वारा वेदान्त में अधिकारी लाभ के लिए प्रेरित होते हैं। परन्तु साधारण लोग अनेक जन्म में किए गए तपस्या के प्रभाव से अधिकारी होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि-

> **''प्रयत्नादातमानस्तु योगी संशुद्धिकिल्बिषः।**
> **अनेकजन्मससिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥'' इति (6/45)**

संशुद्धिकिल्बिषः - अर्थात् जिसके सभी पाप नष्ट हो गए हैं, वैसा व्यक्ति। प्रयत्नात्- अत्यन्त यत्न से। यतमानः अर्थात् प्रवर्तमान, कार्य में लग्न यह अर्थ है। योगवान् पुरूष तो अनेक जन्मों में परिशुद्ध है और उसके बाद पर गति को प्राप्त करता है। यह श्लोकार्थ है।

अर्थात् जो पुरूष विधि का अनुसरण करके शास्त्रोक्त कर्मों का आचरण करता है, उनके सभी प्राप्त नष्ट होते हैं, इस प्रकार अनेक जन्मों में क्रमशः शुद्ध होकर वह मुक्तिरूप परमगति को प्राप्त करता है। यह भावार्थ है। विद्यारण्यमुनि जी ने पञ्चदशी में कहा है -

> **''कुर्वते कर्म भोगाय कर्म कर्तु च भुज्यते।**
> **जद्यां कीट इवावर्तादावर्तान्तरमाशु ते॥**
> **व्रजन्तो जन्मनो जन्म लभन्ते नैव निवृत्तिम्॥'' इति (1/30)**

जिस प्रकार जल में गिरा हुआ कोई कीड़ा सत्कर्मों के प्रभाव से किसी परमकृपालु पुरूष के द्वारा बाहर निकाल के बचाये जाने के बाद नदी के तट पर पेड़ की छाया में विश्राम करता है, उसी प्रकार भवसागर में पड़ा हुआ जीव अनेक जन्म यापन करके सत्कर्मों के प्रभाव से परमकृपालु गुरू द्वारा संसारसागर से बाहर निकाले जाने से रक्षित होते हैं। अतः आत्मा की शुद्धि के लिए अनेक जन्म आवश्यक हैं यह प्रमाणित होता है। इसलिए लक्षण में ''अस्मिन् जन्मनि जन्मान्ते वा'', यह कहा गया है। इस प्रकार सामान्यतः अधिकारी का लक्षण प्रदर्शित किया, अब उसका विस्तार करना आवश्यक है।

यह सिद्ध हो गया है कि वेदाङ्गों के साथ-साथ वेदाध्ययन करना चाहिए, वह एक ही जन्म में हो जाए या फिर अनेक जन्मों में। विधिवत् अध्ययन का तात्पर्य यह है कि द्विजों का अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों का उपनयन संस्कार करना चाहिए, उसके बाद गुरूकुल जाना चाहिए, वहाँ रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों का अङ्गों के साथ अध्ययन ही विधिवत् अध्ययन है। वेदान्त के तत्त्व को जानने के लिए वेदों के अर्थ का समग्र ज्ञान आवश्यक है। वेदार्थ के ज्ञान से मन विशुद्ध होता है तथा विशुद्ध मन की त्याज्य कर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 17.2

1. प्रमाता शब्द का अर्थ क्या है?
2. बालबोधिनी टीका के लेखक कौन हैं?
3. आपदेव के मत में प्रमाता शब्द का अर्थ क्या है?
4. विद्वन्मनोरञ्जनीकार कौन हैं?
5. साधन कितने प्रकार के हैं?
6. वेदाङ्ग कितने हैं?
7. पञ्चदशी ग्रन्थ का रचयिता कौन है?
8. किनका उपनयन संस्कार होता है?
9. विशुद्ध मन कहाँ प्रवृत्त नहीं होता है?

17.3 काम्य कर्म

त्यज्य कर्म दो प्रकार का है- काम्य कर्म तथा निषिद्ध कर्म। ''फलोद्देश्येन क्रियमागनि कर्माणि काम्यानि'' (विद्वन्मनोरञ्जनी) फल की आकांक्षा से जो कर्म किए जाते हैं, वे कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं। जैसे-स्वर्ग प्राप्ति के कामना से किए गए ज्योतिष्टोम यज्ञादि। मरने के बाद स्वर्ग की प्राप्ति हो ऐसे फल को प्राप्त करने के लिए ज्यातिष्टोम याग का अनुष्ठान किया जाता है। स्वर्गरूपी फल की प्राप्ति के लिए ज्योतिष्टोम याग किया जाता है इसलिए ज्योतिष्टोम याग काम्य कर्म है। जो कृतक अर्थात् कर्मजन्य हो वह अनित्य होता है। क्योंकि फल के उपभोग कर लेने के बाद यदि कोई फिर उस फल का उपभोग करना चाहता है तो उसे वह कर्म पुनः करना पड़ता है।

17.4 निषिद्ध कर्म

ब्राह्मण हनन इत्यादि अनिष्ट रूप नरक के साधन रूप निषिद्ध कर्म है। वेदों में जिन कर्मो का निषेध है वे निषिद्ध कर्म हैं। ये कर्म अनिष्ट नरकादि के साधक हैं। जैसे- ''ब्राह्मणों न हन्तव्यः'' अर्थातृ ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए इस प्रकार वेद में ही निर्देश है। यदि कोई भी वेद के निर्देश को ना मानकर ब्राह्मण की हत्या करता है तो वह निषिद्ध कर्म का आचरण करता है। उससे वह पाप का भागी होता है। उसे नरकादि अनिष्ट लोकों की प्राप्ति होती है। इसका फल भी अनित्य ही है।

वेद के तत्त्व के ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है वह काम्य कर्मों में तथा निषिद्ध कर्मों में नियुक्त नहीं होता है। अनित्य फल का त्याग करके नित्य फल के लाभ के लिए यत्न करता है। किन कर्मों से नित्यलाभ होता है? साधन चतुष्टय से ही नित्यफल का लाभ मिलता है उससे पूर्व नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना इन कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

17.5 नित्य कर्म

''नित्यानि अकरणे प्रत्यवाससाधनानि'' अर्थात् जिन कर्मों के आचरण से अत्यधिक पुण्य तो नहीं मिलता है पर न करने से पाप होता है ऐसे कर्म नित्यकर्म है। जैसे- संध्या-वंदन आदि। श्रुति में कहा है कि ''अहरहः सन्ध्यानुपासीत'' इति। प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए ऐसा श्रुति का निर्देश है। जो व्यक्ति प्रतिदिन सन्ध्योपासना करता है वह उस कर्म से लाभ तो प्राप्त नहीं करता है परन्तु जो आलस्य के कारण सन्ध्यावन्दन का त्याग करता है वह पापी होता है। मनुसंहिता में भी कहा है-

''अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसञ्जन् च इन्द्रियार्थेषु नरः यतनमृच्छति॥ (11/44) इति

सर्वसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि-

''मोक्षार्थी न प्रवर्तित तत्र काम्यनिषिद्धकर्मणोः।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायनिहागया॥ (11/34,35) इति

तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावली में भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है-

'इष्टानिष्टफलानारन्धानां क्षयार्थानि नित्यानि इति चेत्, नः अकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। प्रत्यावायशन्दोहि अनिष्टविषयः। नित्याकरणनिमित्तस्य प्रत्यतायस्य दुःखरूपस्य आगामिनः परिहारार्थानि नित्यानीत्यभ्युपगमात् नित्यानीत्वश्युपगमात् न अनारब्धफलवर्त्मक्षयार्धानिक'' इति।

जो शास्त्रों से विहित सन्ध्यावन्दन आदि को छोड़कर शास्त्र द्वारा निषिद्ध ब्राह्मण हननादियों का आचरण करता है, फिर इन्द्रिय भोग्य विषयों में आसक्त होता है वह नरकादि में गिर जाता है। अतः शास्त्र विहित नित्य कर्मों सन्ध्यावन्दनादियों का आचरण प्रतिदिन करना चाहिए।

17.6 नैमित्तिक कर्म

'नैमित्तिकालि उत्रजन्माधनुबन्धीनि जातेष्ययादीनि''। निमित्तमूलक ही नैमित्तिक है। अर्थात् किसी निमित्त के उद्देश्य रूप मान कर शास्त्रोपदेश द्वारा जो कर्म किया जाता है वह नैमित्तिक कर्म है। जैसे जातेष्टि आदि यज्ञ। जातेष्टि याग की विनायक वाक्य इस प्रकार

टिप्पणी

है- ''वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्ववेत पुत्रे जाते'' इति। जब पुत्र होता है तब बारह कपालों में पुरारेव्रश रखकर वैश्वानर देव का देना चाहिए। पुत्र प्राप्ति के लिए जातेष्टि याग होता है इसलिए याग नैमित्तिक कर्म है।

17.7 प्रायश्चित कर्म

''प्रायश्चितानि पापक्षय साधनानि चान्द्रायणादीनि'। मनुष्य भ्रम के कारण ही आलस्य करते हैं। लोभादि के वशीभूत होकर पाप करते हैं। विहित कर्मों तथा निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से ही मनुष्य पाप भागी होते हैं। पर किए गए पाप के लिए अनुशोचन करते हैं इसी जन्म में उन पापों से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही मनुष्यों के लिए ही शास्त्र ने प्रायश्चित कर्म का विधान किया गया है। प्रायश्चित शब्द का अर्थ है ''प्राय: तुष्टं चित्तं यत्र तत् प्रायश्चित्तम्'' अर्थात् जहाँ तुष्ट चित्त होता है उसे प्रायश्चित कहते हैं। प्राय: शब्द का अर्थ ''प्रकृष्टम अय:'' अर्थात् लोहे के समान कठोर तप। फलत: जिस व्रतानुष्ठान में कठोर तप के द्वारा चित्त तुष्ट होता है वह प्रायश्चित कहलाता है। जिससे पापों का क्षय होता है। चान्द्रायण एक प्रायश्चित है। चान्द्रायण के विषय में मनु ने कहा है-

''एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले चवर्धयेत्।
उपस्पृशन् त्रिवणनेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥'' इति (11/216)

प्रतिदिन सुबह, शाम तथा दोपहर में नहाना चाहिए। पूर्णिमा के दिन पन्द्रह मुट्ठी के बराबर भोजन करके कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि से लेकर चतुर्दशी तिथि तक प्रत्येक दिन एक मुट्ठी भोजन घटना चाहिए। फिर अमावस्या को उपवास करना चाहिए। फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से भोजन करना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रतिदिन एक-एक मुट्ठी भोजन बढ़ाते जाना चाहिए इस प्रकार पूर्णिमा को फिर से पन्द्रह मुट्ठी भोजन हो जाएगा। इस तरह एक महिने तक करना चाहिए। इस प्रायश्चित कर्म का नाम चान्द्रायण है। इस प्रकार अन्य और भी प्रायश्चित कर्म है।

इन नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चितों का बुद्धि की शुद्धि ही प्रमुख प्रयोजन है। इन कर्मों के अनुष्ठान से बुद्धि की शुद्धि होती है। इसीलिए इन का आचरण करना चाहिए।

17.8 उपासना

सगुण ब्रह्म विषयक मानस व्यापार रूपी शाण्डिल्य विद्या आदि उपासना है। जो पुरूष प्रायश्चित कर्म करता है उसका मन निर्मल होता है। निर्मल मन की एकाग्रता सम्पादित करने के लिए उपासन करना चाहिए। ''उप समीपे आस्यते स्थीयते अनेन इति उपसनम्'' इस व्युत्पत्ति के बल से उपासन का तात्पर्य है जिस कर्म द्वारा उपासक, उपासक के

समीप बैठता है। अर्थात् उपासक का चित्त सदा उपास्य में ही लगा रहता है। उपासना विद्यारूप है। यहाँ विद्या का अर्थ है ''विद्यते लक्ष्यते उपास्ये चित्तस्यैर्य यया क्रियया सा विद्या।'' अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा उपास्य गुणसप्ति ब्रह्म में उपासक का चित्त स्थिर होता है वह क्रिया विद्या है। वह विद्या शाण्डिल्यादि महर्षियों द्वारा बतायी गयी है। इसलिए शाण्डिल्य विद्यादि कहा गया। उपासनों से चित्त की एकाग्रता ही सम्पादित होती है। वहाँ ''तमेतमात्मानं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञने यह श्रुतिवचन तथा ''तपसा कल्मषं हन्ति'' यह स्मृतिवचन प्रमाण है।

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना रूप गौण फल तो पितृलोक प्राप्ति तथा सत्य लोक की प्राप्ति है। यहाँ प्रमाण यह श्रुतिवचन है- ''कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः।''

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना आदि द्वारा परिशुद्ध मन साधन चतुष्टय के सम्पादन में समर्थ होता है। अतः नित्यादि कर्मों से जिस पुरूष का चित्त निर्मल होता है वह साधन चतुष्टय के सम्पादन में खुद को लगाता है।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. त्याज्य कर्म कितने प्रकार के हैं?
2. काम्य कर्म कौन से हैं?
3. स्वर्ग प्राप्ति के लिए कोन सा याग किया जाता है?
4. निषिद्ध कर्म कौन से हैं?
5. निषिद्ध कर्म के अनुष्ठान से क्या होता है?
6. नित्य कर्म कौन से हैं?
7. नैमित्तिक कर्म कौन से हैं?
8. प्रायश्चित कर्म कौन से हैं?
9. उपासना कर्म कौन से हैं?
10. नित्यादि कर्मों का मुख्य फल क्या है?
11. नित्यादिकर्मों का गौण फल क्या है?

साधन चतुष्टय क्या है इस विषय में वेदान्तसारप्रणेता कहते हैं-

''साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेक-इहामुत्रफलभोगविराग-शमादिषटक-सम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि'' इति।

टिप्पणी

अर्थात् नित्यानित्यवस्तुविवेक इहामुत्रलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं। अब इनके विवरण क्रमशः देखते हैं-

17.9 नित्यानित्य वस्तुविवेक

जगत् में नित्य तथा अनित्य ये दो प्रकार की वस्तुएँ हैं। उनका विवेक अर्थात् विवेचन, कौन सी वस्तु नित्य है तथा कौन सी वस्तु अनित्य है इनका विचारपूर्वक ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। वेदान्तसारकार के मत में- ''नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावत् ब्रह्मैत नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यामिति विवेचनम्'' इति। ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अलावा ये सम्पूर्ण आकाशादि प्रपञ्च् अनित्य वस्तु का विचार पूर्वक ज्ञान। नित्य वस्तु क्या है। क्योंकि तीनों कालों में जिस वस्तु की सत्ता रहती है वह नित्य वस्तु है। जो भूतकाल में भी था, वर्तमान में भी है तथा भविष्य में भी रहेगा वह नित्य वस्तु है। वैसा केवल ब्रह्म ही है। ब्रह्म नित्य वस्तु है यहाँ प्रमाण- ''अजो नित्यः शाश्वतः'' (कठोपनिषद् 1/2/18) ''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म'' (तैत्तिरीये 2/1) इत्यादि श्रुतिवाक्य हैं। ब्रह्म के अलावा बाकी सब कुछ अनित्य है। वो पूर्व में नहीं थी, अभी है, भविष्य में नहीं होगी। अतः वे तीनों कालों में नही रहेंगे। अतः ये अनित्य वस्तुएँ हैं। ब्रह्म से भिन्न सभी के अनित्यत्व के विषय में ''नेह नानास्ति किञ्चन'' (4/4/19), ''अथ यदलयं तन्मर्त्यम्'' (छान्दोगये 7/2/4/9) इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणभूत है। नित्य तथा अनित्य वस्तुओं को अलग-अलग करना ही नित्यानितयवस्तुविवेक है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येत्वरूपो विनिश्चयः।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः॥'' इति।

''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'' अर्थात् ब्रह्म सत्य है तथा संसार मिथ्या है इस प्रकार का निश्चय ही नित्यानितयवस्तुविवेक कहा गया है।

जब नित्यअनित्यवस्तुओं का ज्ञान हो जाए तभी दूसरे साधन में (इहामुत्रफलभोगविराग में) यत्न करना चाहिए।

17.10 इहामुत्रफलभोगविराग

इह अर्थात् इस लोक में तथा अमुत्र स्वर्गलोक में कर्मजन्य जो फल प्राप्त होते हैं उनके भोग से विरक्ति अर्थात् आसक्ति का अभाव ही 'इहामुत्रफलभोगविराग है। वेदान्तसार में कहा गया है-

''ऐहिकानां सक्चन्दनवनितादिविषयाभोगानाम् अनितयत्वतत्
आमुष्मिकाणाम् अपि अमृतादिविषयभोगानाम् अनितयतया तेभ्यो विरतिः
इहामुत्रफलभोगविराग'' इति।

''इहलोके भव ऐहिकः'' इस व्युत्पत्ति के प्रभाव से इस लोक में होने वाले को ऐहिक कहते हैं। माला, आभूषण, चन्दन, जीवन साथी, घर, खेत-इत्यादि विषय इस लोक में ही रहते हैं अतः ये ऐहिक हैं। इन विषयों के भोग से ही जीव खुद को सुखी मानते हैं। परन्तु जीव ऐहिक वस्तुओं से जिस सुख का अनुभव करता है वह अनित्य है क्योंकि ये विषय अनित्य है और अनित्य वस्तुओं से उत्पन्न सुख अनित्य होता है। इसी प्रकार स्वर्गादि लोकों के अमृतादि विषय भोग भी अनित्य हैं। वहाँ प्रमाण - ''तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवम् अत्र अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते'' (छा. 1/8/16) इत्यादि श्रुतियाँ हैं। अर्थात् कर्मों द्वारा अर्जित पृथिवी लोक भोग द्वारा क्षीण होते हैं, उसी प्रकार पुण्यों द्वारा अर्जित स्वर्गलोक भी भोग से क्षीण होता है। ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' यह गीतावचन भी प्रमाणभूत है। अतः लौकिक तथा स्वर्गीय दोनों प्रकार के सुख अनित्य है। क्योंकि वे अनित्य हैं अतः उनसे पूर्णतया विमुखता ही इहामुत्रफलभोगविराग है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि॥'' (21)

अपनी देह से प्रारम्भ करके ब्रह्मलोक पर्यन्त भोग वस्तुओं के दर्शन श्रवणादि में स्वाभाविक रूप से घृणा का बोध ही वैराग्य है। अर्थात् मनुष्य का शरीर अनित्य है यह सभी जानते हैं। पुण्य कर्मों से पुरूष ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है, यद्यपि वहाँ वह दीर्घकाल तक निवास करता है तथापि वहाँ उसका नित्य निवास सम्भव नहीं है। ब्रह्मलोक में प्राप्त सुखों की समाप्ति होती ही है। कुछ वस्तुएँ अनित्य हैं यह ज्ञान दर्शन मात्र से हो जाता है, परन्तु कुछ वस्तुओं के अनित्यत्व का ज्ञान आप्त पुरूष के वचनों को सुनने से होता है। दोनों प्रकार की भोग्य वस्तुओं की अनित्यता को जानकर उनके संग्रहण में घृणा का भाव ही वैराग्य कहलाता है।

17.11 शमादिषट्कसम्पत्ति

अधिकारी जब द्वितीय साधन से सम्पन्न हो जाता है तब तीसरे साधन का मार्ग खुल जाता है। तृतीय साधन है- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा की प्राप्ति।

शम- ''शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः मनसः निग्रहः'' यह वाक्य वेदान्तसार में कहा है। वस्तुतः मन का निग्रह ही शम है। वेदान्त के तत्त्व का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। जिस क्रियाविशेष से आत्मा के विषय श्रवणादियों से बलपूर्वक मन का निग्रह किया जाता है वह शम है। जीव का चित्त अत्यधिक चञ्चल होता है। वह एक ही विषय में अधिक समय तक नहीं लगता है। भूखे की भोजन के प्रति जिस प्रकार की अभिरूचि होती वैसी ही वैराग्य युक्त पुरूष की तत्त्व ज्ञान से अभिरूचि होती है। ऐसा होने पर भी पूर्व संस्कार के कारण व्यक्ति

का मन विक्षिप्त हो जाता है, उस अवस्था में जिस वृत्ति विशेष के द्वारा पार्थिव सुख अनित्य है अतः इनके परिणाम दुख जनक है। ऐसा बोध कराकर बलपूर्वक विषयों से मन दूर खींचा जाता है वह वृत्ति शम है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''विरज्य विषयव्रातादोषदृष्टचा मुहुर्मुहुः।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था दृष्टचा मुहुर्मुहुः॥ इति (22)

मुमुमेहु - प्रतिक्षण, दोष दृष्टचा-दोषों क दर्शन द्वारा, विषयव्रतात्-विषयों के समूह से, विरज्य-वैराग्य प्राप्ति के द्वारा, मन का स्वलक्ष्ये-ब्रह्म तत्त्व ज्ञान में, नियतावस्था-निश्चित रूप में स्थिति शम कहलाता है। यह उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य है।

दम- ''दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्'' यह वेदान्तसार में कहा गया है। बाह्य इन्द्रियों अर्थात् चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों का उनके विषयों से आकर्षण। अर्थात् चक्षु का रूप से, कर्ण का शब्द से, नासिका का गन्ध से, जिह्वा का रस से तथा त्वक् का स्पर्श से जिस वृत्ति विशेष द्वारा आकर्षण किया जाता है वह दम है। वस्तुतः बाह्येन्द्रियों का निग्रह ही दम कहलाता है। प्रथम मन का निग्रह करना चाहिए फिर बाह्येन्द्रियों का। इसीलिए पहले शम बताया गया और फिर दम का निर्देश किया गया। यदि मन वशीभूत होगा तभी चक्षु आदि इन्द्रियों का निग्रह सम्भव है। क्योंकि मन के निर्देश से ही इन्द्रियाँ अपने विषयों की तरफ भागती हैं। यदि कोई पुरूष किसी विषय में मन का नियन्त्रण कर लेता है तो उसके सम्मुख सुन्दर रूप होते हुए भी वह नहीं देखता है, अत्यन्त मधुर संगीत होते हुए भी नहीं सुनता। अतः मन का निग्रह होने पर स्वयंमेव बहिरिन्द्रियों का भी निग्रह हो जाता है। परन्तु संस्कार के कारण विक्षिप्त हो जाता है। इसलिए प्रयास करना चाहिए। विवेकचूड़ामणि में दम के विषय में कहा है कि-

''विषयेभ्य परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके।
उभयेषामन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः॥'' इति (23)

अर्थात् दोनों प्रकार की इन्द्रियों को (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का) उनके अपने-अपने विषयों से विमुख करके खुद के स्थान में ही स्थिर करना ही दम कहा गया। शम तथा दम से युक्त पुरूष ही स्थितप्रज्ञ है यह भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहा है -

''यदा संहरते चायं कूर्मोऽन्नानवि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'' इति (2/58)

'यदा अयं कूर्म अङ्गानि इव सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्य संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति' ये अन्वय है। अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वदा शब्दादि विषयों में प्रवृत्त होती हैं। कछुआ जिस प्रकार भय के कारण अपने अंगों को छुपा लेता है उसी प्रकार यह ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त व्यक्ति अपनी सभी इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से छुपा लेता है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है तथा वह स्थितप्रज्ञ होता है।

उपरति- वेदान्तसार में उपरति के दो लक्षण कहे हैं- ''निवर्तितानाम् एतेषा तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य: उपरमणम् उपरति:'' अथवा ''विहितानां कर्मणां विधिना परित्याग:' इति।

मन तथा बाह्य इन्द्रियों के निग्रह मात्र से तत्त्वज्ञान का मार्ग बाधारहित नहीं होता है। पूर्व वासना के प्रभाव से वे पुन: चंचल हो जाते हैं। अत: निग्रह की गई बाह्येन्द्रियों तथा मन का अनेक विषयों से बार-बार दोष दिखाकर निवृत्ति कराना ही उपरति है। अथवा शास्त्रों में वर्णित नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चितों का विधिपूर्वक परित्याग ही उपरति है। विवेकचूड़ामणि में कहा है - ''बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरूत्तमा।'' इति। अर्थात् मन की विषय प्रकाश शक्ति का बाह्य आलम्बन के अपरिणत हो जाना ही उत्तम उपरति है।

तितिक्षा - ''तितिक्षा शीतोष्णादि द्वन्द्वसहिष्णुता'' ऐसा कहा गया है। अर्थात सर्दी गर्मी आदि विपरीत विषयों तथा उनसे उत्पन्न सुख तथा दुख को सहन करना। सभी जीव सुख से आनन्द का अनुभव करते हैं। अत: प्रमाद नहीं करते हैं। परन्तु सभी दु:ख को सहन नहीं कर सकते हैं। बहुत सारे लोग दु:ख के कारण प्रमाद करते हैं। परन्तु जो तितिक्षा का अभ्यास करते हैं उसके लिए सुख तथा दुख दोनों ही समान है। वह सुख से अत्यधिक आनन्दित तथा दु:ख से अत्यधिक दु:खी नहीं होता है। वह प्रमाद से रहित धैर्यवान् होकर साधना में विचलित नहीं होता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''सहनं सर्वसुखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगयते॥'' इति।

सभी प्रकार के दु:खों को चिन्ता तथा विलय से रहित होकर प्रतिकार न करते हुए सहन करना ही तितिक्षा कहलाता है।

वस्तुत: शम, दम तथा उपरति के द्वारा बाह्य विषयों से निवृत्ति है परन्तु तितिक्षा से चित्त का अन्तर्विषयों से निवृत्ति होती थी।

समाधान- ''निगृहीतस्य मनस: श्रवणादो तदनुगुणविषये च समाधि: समाधानाम्'' अर्थात् विषयों से दूर हो चुके चित्त का आत्मा विषयक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन में तथा तदनुगुण गुरूसेवा आदि में लगाना ही समाधान है। इस अवस्था में ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिसमें आत्मा विषयक स्मृति की धारा में विच्छेद होता हो। आत्म विषयक प्रत्यय के प्रवाह का उत्पादन ही समाधि है, वही समाधान है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''सम्यगास्थापनं बुद्धेः शुद्धेः ब्रह्माणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य त्वालनम्॥'' इति।

अर्थात् ब्रह्मविषयक तत्त्व ज्ञान में चित्त का यथार्थ रूप से स्थितीकरण ही समाधान है ऐसा कहा जा चुका है। किन्तु चित्त का लालन कुतूहल पूर्वक वेदान्त तत्त्व के आलोचन

टिप्पणी

से मन को तृप्ति का लाभ न होना ही समाधान है। समाधि के बिना आत्म साक्षात्कार नहीं होता है।

श्रद्धा- केवल श्रवणादियों द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता है। श्रवणादि श्रद्धापूर्वक ही करना चाहिए। श्रद्धा क्या है इस विषय में कहा है कि- ''गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा'' इति। अर्थात् गुरू के वचनों तथा गुरू द्वारा उपदिष्ट शास्त्रवचनों में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है। आत्म तत्त्व के जिज्ञासु के लिए श्रद्धा मेरूदण्ड है। श्रद्धा नहीं हो तो सैंकड़ों बार उपदेश करने के बाद भी अर्थ का अवधारण नहीं होता है। अतः आत्मा की उपलब्धि होती है तो वह सभी द्वारा श्रद्धा कही जाती है। इस प्रकार शमदमादिषट्कसम्पत्ति ग्रहण की जाती है।

पाठगत प्रश्न 17.4

1. नित्य अनित्य वस्तुविवेक क्या है?
2. विराग क्या है?
3. स्वर्ग का सुख भी अनित्य है कौन सी श्रुति इस बात में प्रमाणभूत है?
4. शम क्या है?
5. दम क्या है?
6. उपरति क्या है?
7. तितिक्षा क्या है?
8. समाधान क्या है?
9. श्रद्धा क्या है?

17.12 मुमुक्षुत्व

मुमुक्षुत्व का अर्थ है मोक्ष में इच्छा। आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही प्रधान साधन है। यदि पुरूष की मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं होती है तो वह मोक्ष के उपायों को नहीं ढूँढता है। इसलिए आत्मा का दर्शन नहीं करता है। आत्मदर्शन मोक्ष का मार्ग है तथा वेदान्त तत्त्व श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन आत्मदर्शन में कारण है यह भी जान नहीं सकता है। अतः वेदान्त में उसकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है। इसलिए वेदान्त द्वारा वेद्य आत्मा का ज्ञान भी उसे नहीं होता है। अतः अधिकारी की मोक्ष विषय में इच्छा अवश्य ही होनी चाहिए। विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य जी ने कहा है-

''अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥'' इति।

अर्थात् अहंकार से लेकर स्थूल देह तक अज्ञान से उत्पन्न बन्धसमूहों के स्वरूप को जानकर आत्मज्ञान द्वारा मुक्त होने की इच्छा ही मुमुक्षुता है।

इस प्रकार साधन चतुष्टय का निरूपण किया। जब तक नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विवेक नहीं होता है तब तक अनित्य वस्तुओं में वैराग्य की उत्पत्ति नहीं होती है। वैराग्य के बिना शमादि का आचरण सम्भव नहीं है। शमादि के अभाव में मोक्ष विषयक इच्छा भी सम्भव नहीं होती है। मोक्ष विषयक इच्छा के अभाव में ब्रह्म जिज्ञासा नहीं होती। इसलिए प्रथम नित्यानित्य वस्तुविवेक फिर इहामुत्रफलभोगविराग फिर शमादिषट्कसम्पत्ति फिर मुमुक्षत्व इनका क्रम से उल्लेख करना चाहिए।

इस प्रकार सभी गुणों से युक्त प्रमाता वेदान्त विद्या का अधिकारी होता है। यहाँ श्रुति का प्रमाण भी मिलता है- ''शान्तो दान्त उपरतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽत्मन्येवात्मानं पश्यति'' इति। अर्थात् जिसका मन शान्त है इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं है, जो संन्यासदीक्षा को प्राप्त कर चुका है, जो सुखदुःखादियों में समान रूप से बैठता है व समाहित होकर एकाग्रभाव को प्राप्त करके आत्मा में ही आत्मा का दर्शन करता है। उपदेशसहस्री का यह वाक्य इस श्रुति का समर्थन करता है-

''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणन्विताय अनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे॥'' (324, 16/12)

अर्थात् जिसका चित्त शान्त है उसे, जिसकी इन्द्रियाँ चंचल नहीं होती है जो दोष मुक्त होने के लिए त्याज्य कर्मों का त्याग करके नित्यादि कर्मों का अनुष्ठान करता है ऐसे, विवेक वैराग्य आदि गुणों से विशिष्ट तथा सर्वदा जो गुरू वचनों तथा शास्त्र वचनों का अनुपालन करते हैं तथा आचार्य के पीछे ही बैठते हैं ऐसे मुमुक्षु को ब्रह्मविद्या प्रदान करनी चाहिए।

ऐसा अधिकारी जन्म मरण रूप संसार अग्नि से सन्तप्त होकर दीप्तशिरा जलराशि के समान उपहार लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के समीप जाता है तथा उसका अनुसरण करता है। ''समित्पाणिः ब्रह्मनिष्ठम्'' इत्यादि श्रुतियाँ यहाँ प्रमाणभूत है।

पाठगत प्रश्न 17.5

1. मुमुक्षत्व क्या है?
2. विवेकचूड़ामणि का कर्ता कौन है?
3. शमादि के अभाव में क्या नहीं होता है?

इस प्रकार अधिकारी के स्वरूप का निरूपण करके अब विषय का प्रतिपादन करते हैं-

17.13 विषय

वेदान्त शास्त्र में विषय का निरूपण करते समय वेदान्तसार में कहा है- ''जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्, तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्'' इति। यह वेदान्त शास्त्र जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। जीव अल्पज्ञ है तथा ब्रह्म सर्वज्ञ है, उन दोनों जीव तथा ब्रह्म के शुद्धचैतन्य रूप ऐक्य का प्रतिपादन करता है। यहाँ प्रश्न होता है कि वेदान्तशास्त्र जीव और ब्रह्मा का ऐक्य ही प्रतिपादन क्यों करता है? ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि- ''तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्'' इति। अर्थात् सभी वेदान्त वाक्य उपनिषदों के वाक्य ''अयमात्मा ब्रह्म'', ''तत्त्वमसि'', ''अहं ब्रह्मास्मि'', ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' इत्यादि वाक्य जीव और ब्रह्म के ऐक्य का ही प्रतिपादन करते हैं। शुद्ध चैतन्य का प्रतिपादन ही इन सभी वाक्यों का लक्ष्य है। अतः यह शास्त्र भी उसी का प्रतिपादन करता है। फिर प्रश्न होता है कि वेदान्तवाक्यों से जीव तथा ब्रह्म का कैसा ऐक्य विवक्षित है? जलदुग्ध की तरह गौण अथवा घटाकाशपटाकाश की तरह मुख्य? जल तथा दुग्ध दोनों अलग-अलग है परन्तु दोनों को मिला लेने पर उनको अलग-अलग करना साधारणतया सम्भव नहीं है। उनका ऐक्य अनुभूत होता है। वेदान्त वाक्यों द्वारा ऐसा ही ऐक्य विवक्षित है क्या? इस प्रश्न के उठने पर कहते हैं- ''शुद्धचैतन्यम्' इति। अर्थात् जलदुग्ध के समान गौण ऐक्य विवक्षित नहीं है। यहाँ ऐक्य शब्द का अर्थ अभेद है। घट का मध्यवर्ती जो आकाश है वह महाकाश का ही अंश है, परन्तु घट रूप आवरण के कारण अलग प्रतीत होता है। जैसे घट का मध्यवर्ती आकाश घट के नाश हो जाने पर महाकाश के साथ मिल जाता है उसी प्रकार अज्ञान के नाश होने पर जीव चैतन्य का शुद्धचैतन्यरूप से ब्रह्मचैतन्य के साथ एकात्मभाव को प्राप्त करता है। ऐसा मुख्य ऐक्य ही वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है। आत्मोपनिषद् में कहा गया है -

''घटे नष्ट यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम्।
तथोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित् स्वयम्॥'' इति (1/22)

अर्थात् घट के नाश हो जाने पर घटाकाश स्वयमेव महाकाश बन जाता है, उसी प्रकार अज्ञान के नाश हो जाने पर ब्रह्मवित् जीवात्मा स्वयं पर ब्रह्म बन जाता है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म पृथक-पृथक नहीं है। उनमें पृथकता अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। ऐसा अज्ञान तभी तक रहता है जब तक स्वरूप ज्ञान के लिए यत्न नहीं होता है। अतः अज्ञान का नाश करने जीव तथा ब्रह्म के शुद्ध चैतन्य स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए ही ऐसा विषय स्वीकार किया है।

17.14 सम्बन्ध

अधिकारी का और विषय का प्रतिपादन करके अब तृतीय सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हैं- ''सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः'' इति। अर्थात् जीव तथा ब्रह्म का अभेद, जीव और ब्रह्म के ऐक्य प्रमेय का, ऐक्य ज्ञेय का, तत्प्रतिपादक उपनिषत्प्रमाण का तथा बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है। शास्त्र के साथ तथा ग्रन्थ के साथ विषय का सर्वदा बोध्यबोधक भाव सम्बन्ध ही होता है। शास्त्र अथवा ग्रन्थ बोधक है तथा ब्रह्म बोध्य विषय है। बोधक शब्द का अर्थ बोध का जनक है अर्थात् जो बोध बोध को उत्पन्न करता है। ग्रन्थ प्रतिपाद्य विषय शास्त्र अथवा ग्रन्थ से उत्पन्न बोध का विषय है अतः वह बोध्य कहा जाता है। शास्त्र तथा ग्रन्थ विषय बोध का जनक है अतः वह बोधक कहा जाता है। विषय के साथ शास्त्र अथवा ग्रन्थ का ऐसा ही बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध सम्भव है। ऐसे ही सम्बन्ध का ज्ञान होता है तो विषय के ज्ञान का इच्छुक उस बोधक शास्त्र अथवा ग्रन्थ में प्रवृत्त होता है।

17.15 प्रयोजनम्

अन्तिम अनुबन्ध प्रयोजन है। ''प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।'' अर्थात् प्रयोजन को जाने बिना मन्दबुद्धि व्यक्ति भी किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है, तो बुद्धिमानों के विषय में क्या कहें, वो तो अवश्य ही प्रवृत्त नहीं होते हैं। 'यम् अर्थम् अधिकृत्य प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्'' यह गौतमीय सूत्र भी कहता है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति किसी भी कार्य में प्रवृत्त होता है उसकी प्राप्ति ही उस कार्य का प्रयोजन है। कुमारिल भट्ट ने भी कहा है-

''सर्वस्यैव तु शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते॥'' इति।

अतः शास्त्रों या ग्रन्थों के प्रारम्भ में शास्त्र अथवा ग्रन्थ का प्रयोजन कहा जाता है। इसलिए अनुबन्ध चतुष्टय में प्रयोजन का अन्तर्भाव होता है। वेदान्त शास्त्र का क्या प्रयोजन है यहाँ कहते हैं-

''प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च।'' इति।

वहाँ प्रमाण दिखाते हैं- ''तरति शोकमात्मवित्'' इस श्रुतिवाक्य द्वारा तथा ''ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति'' इस स्मृति वाक्य द्वारा मनुष्य अनादिकाल से ही ब्रह्म के साथ आत्मा के ऐक्य के विषय में अज्ञानग्रस्त है। स्वरूपानन्द को भूलकर अन्य अनित्य वस्तुओं में आनन्द की खोज में लगा हुआ है। यदि किसी भी प्रकार यह जान ले कि वह सामान्य नहीं है, साक्षात् ब्रह्म ही है, आनन्द प्राप्ति के लिए अन्यत्र कहीं नहीं जाना है अपना स्वरूप ही आनन्ददायक है, किन्तु यह सब वेदान्त शास्त्र के अध्ययन से जान सकता है। तब

टिप्पणी

वह ब्रह्म के साथ अपनी अज्ञान से निवृत्ति के लिए तथा अपने स्वरूप के आनन्द के अनुभव लिए निर्बद्ध करता है। इसलिए वह वेदान्त शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त होता है। यही वेदान्त शास्त्र का प्रयोजन है जो ग्रन्थाकार ने कहा है- उस ऐक्य प्रमेयगत ज्ञान की निवृत्ति ब्रह्म के साथ आत्मा के ऐक्य विषयक ज्ञान की निवृत्ति तथा अपने स्वरूप के आनन्द की प्राप्ति स्वरूप ज्ञान में जो आनन्द है उसकी प्राप्ति। यह विचार करना चाहिए कि ऐक्यगत अज्ञान से निवृत्ति जब होगी तभी अपने स्वरूप में आनन्द की प्राप्ति होती है।

पाठगत प्रश्न 17.6

1. वेदान्त शास्त्र का विषय क्या है?
2. वेदान्तों का तात्पर्य कहाँ है?
3. जीव ब्रह्मैक्य यहाँ ऐक्य का शब्दार्थ क्या है?
4. शास्त्र के साथ विषय का क्या सम्बन्ध है?
5. बोधक शब्द का अर्थ क्या है?
6. वेदान्तशास्त्र का प्रयोजन क्या है?
7. स्वरूपानन्द की प्राप्ति कब होती है?

पाठसार

शास्त्र के ज्ञान से पहले शास्त्र विषयक अनुबन्धों का ज्ञान आवश्यक है। अनुबन्धचतुष्टय में प्रमाता ही अधिकारी होता है। प्रमाता वेदों का क्रम से अर्थ को जाने। त्याज्य कर्मों का त्याग करे। नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का आचरण करें। उससे मन शुद्ध होता है। मन के शुद्ध होने से साधनचतुष्टय के सम्पादन का अवकाश प्राप्त होता है। पहले नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विवेक करना चाहिए। उससे वैराग्य उत्पन्न होता है। उससे शमादि में रूचि बढ़ती है। उससे मोक्ष विषयक इच्छा होती है। जिसकी मोक्ष विषयक इच्छा है वही वेदान्त में अधिकारी है।

विषय तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। यहाँ नीर क्षीरवत् गोण ऐक्य नहीं कहा गया है, अपितु घटाकाश महाकाश के समान मुख्य ऐक्य बताया गया है।

सम्बन्ध बोध्यबोधकभावरूप है। यहाँ बोध्य ब्रह्म है, शास्त्र अथवा ग्रन्थ बोधक है। प्रयोजन तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्यगत ज्ञान की निवृत्ति तथा स्वरूपानन्द की प्राप्ति है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से हमारे जीव तथा ब्रह्म के विषय में भ्रम है उसका नाश होता है।

जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य अनुभूत होता है, उसके स्वस्वरूपानन्द ज्ञान से आनन्द प्राप्त होता है।

इस प्रकार इस पाठ में वेदान्तसार ग्रन्थ के अनुसार वेदान्त के अनुबन्धचतुष्टय का संक्षिप्त तथा विवरण प्रस्तुत किया।

योग्यता वर्धनम् -

अधिकारी का निरूपण करते समय वेदान्त का सार कहा। वेदान्त का यथायोग्य अधिकारी हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिए।

अन्य शास्त्रों के अनुबन्धों के अन्वेषण से इस पाठ की युक्तता बढ़ाए।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदान्त शास्त्र का अधिकारी कौन है?
2. त्याज्य कर्म कैसे हैं? विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. नित्यादियों का वर्णन कीजिए।
4. साधनचतुष्टय का वर्णन कीजिए।
5. शमादिषट्कसम्पत्ति किसलिए प्राप्त करनी चाहिए?
6. वेदान्त के विषय का प्रतिपादन कीजिए।
7. वेदान्त का प्रयोजन क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर - 17.1

1. अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन ये चार अनुबन्ध हैं।
2. ''अनु स्वज्ञानात्, अनन्तरं बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जयन्ति प्रवर्तयन्ति येते अनुबन्धा:'' यह अनुबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति है।
3. आस्तिक दर्शन छ: प्रकार के हैं - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा।
4. वेदान्त ही उत्तरमीमांसा का दूसरा नाम है।
5. ''वेदान्तसार'' यह वेदान्त शास्त्र का प्रकरण ग्रन्थ है।

उत्तर - 17.2

1. प्रमाता शब्द का अर्थ ''ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरूष'' है।
2. बालबोधिनी टीका कर्ता आपदेव हैं।
3. आपदेव के मत में प्रमातृ शब्द सदाचार प्रयुक्त ब्रह्मणादि पर है।
4. विद्वन्मनोरञ्जनीकार श्रीरामतीर्थयति है।
5. साधन चार प्रकार के हैं- नित्यानितयवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व।
6. व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, शिक्षा, कल्पसूत्र और छन्दशास्त्र ये छः वेदांग हैं।
7. पञ्चदशीग्रन्थ के रचयिता विद्यारण्य मुनि हैं।
8. त्रैवर्णिकों का (ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों का) उपनयन संस्कार होता है।
9. विशुद्ध मन त्याज्य कर्म में नियुक्त नहीं होता है।

उत्तर - 17.3

1. त्याज्य कर्म दो प्रकार के हैं- काम्यकर्म और निषिद्धकर्म।
2. फल प्राप्ति की इच्छा से किए जाने वाले कर्म काम्य हैं।
3. स्वर्ग प्राप्ति के लिए ज्योतिष्टोमयज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है।
4. नरकादि अनिष्टों के साधन ब्राह्मण हनन इत्यादि निषिद्ध कर्म हैं।
5. निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से बरकादि अनिष्टों का साधन होता है।
6. जिनके न करने से दोष लगता है ऐसे कर्म नित्य कर्म है। जैसे सन्ध्यावन्दन आदि।
7. पुत्रजन्मादि के लिए अनुबन्ध रूप जातेष्टि आदि निमित्त कर्म हैं।
8. पाप क्षय के कारक चान्द्राणादि प्रायश्चित कर्म है।
9. सगुण ब्रह्मविषयक मानस व्यापार रूप शाण्डिल्य विद्यादि उपासन कर्म हैं।
10. नित्यकर्मो का मुख्य फल बुद्धि शुद्धि है।
11. नित्यादि कर्मों का गौण फल पितृलोक की प्राप्ति है।

उत्तर - 17.4

1. ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सब कुछ अनित्य है यह विवेचन ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है।

2. इहलौकिक आभूषण, चन्दन, स्त्री, आदि विषय भोगों के अनित्यत्व के समान पारलौकिक अमृतादि विषयभोगों की अनित्यता द्वारा उनसे पूर्णतया वैराग्य का भाव इहामुत्रफलभोगविराग है।
3. स्वर्गसुख भी अनित्य है इस विषय में ''तद्यथेह कर्मनितो लोक क्षीयते एवम् एव अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते यह श्रुति प्रमाणभूत है।
4. श्रवणादि व्यतिरिक्त विषयों से मन का निग्रह ही शम है।
5. बाह्य इन्द्रियों का तद्व्यतिरिक्त विषयों से निवर्तन दम है।
6. निवर्तित किए गए अतीन्द्रिय मन तथा बहिरिन्द्रियों का उनसे व्यतिरिक्त विषयों से उपरमण उपरति है अथवा विहित कर्मो का विधि द्वारा परित्याग ही उपरति है।
7. सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्व को सहन करना ही तितिक्षा है।
8. निगृहीत मन का श्रवणादि में तथा तदनुगुण विषय में समाधि समाधान है।
9. गुरू द्वारा उपदिष्ट वेदान्त वाक्यों में विश्वास श्रद्धा है।

उत्तर - 17.5

1. मोक्ष विषयक इच्छा ही मुमुक्षुत्व है।
2. विवेकचूड़ामणि के कर्ता शंकराचार्य हैं।
3. शमादि के अभाव में मोक्ष विषयक इच्छा नहीं होती है।

उत्तर - 17.6

1. जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य ही वेदान्त शास्त्र का विषय है।
2. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य में ही वेदान्तों का तात्पर्य है।
3. जीव ब्रह्मैक्यम् यहाँ ऐक्य शब्द का अर्थ अभेद है।
4. शास्त्र के साथ विषय का बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध है।
5. यहाँ ग्रन्थ बोध का जनक बोधक है।
6. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य प्रमेय मत ज्ञान की निवृत्ति तथा स्वस्वरूपानन्द की प्राप्ति प्रयोजन है।
7. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्यगत ज्ञान की निवृत्ति होती है तभी स्वस्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है।

।।सत्रहवाँ पाठ समाप्त।।

18

निर्गुण ब्रह्म

प्रस्तावना

उपनिषद् ही वेदान्त है। सभी उपनिषदों का ब्रह्म ही तात्पर्य होता है। एक अद्वितीय ब्रह्म है। तथापि उपाधि भेद से द्विविद्या कल्पित, प्रतिपादित होता है। श्रुति स्मृति आदि से दो प्रकार का ब्रह्म जाना जाता है। निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म सर्वोपाधि रहित ही होता है। वह सभी भूतों में सूक्ष्मता से विद्यमान है। सभी कर्मों को कराने वाला है, परन्तु अकर्तृ स्वरूप है। साक्षी रूप में वह सर्वत्र विद्यमान है। इस पाठ में निर्गुण ब्रह्म आलोचित होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप जान पाने में;
- वेदान्त में कितने प्रमाण हैं, जान पाने में;
- सभी उपनिषदों का तात्पर्य जान पाने में;
- ब्रह्म के स्वरूप के विषय में उपनिषदों का सिद्धान्त जान पाने में;
- क्या ब्रह्म स्वयं प्रकाश है जान पाने में;
- षड्भाव विकारों को जान पाने में;
- ब्रह्म शब्द का अर्थ जान पाने में;
- अनादि विषयक ज्ञान जान पाने में;
- अभ्यास स्वरूप का ज्ञान कर पाने में।

18.1 ब्रह्म का अर्थ

वेदान्त में सर्वातिशयरहित व्यापक आत्मतत्व ही ब्रह्म कहा जाता है। अतिशायित्व धर्म प्रथित्यादि भूतों का है। जैसे- अग्नि स्व की अपेक्षा वायुतत्व सूक्ष्म है तथा वायुतत्व की अपेक्षा आकाशतत्व सूक्ष्म तथा नित्य है। अत: पंच महाभूतों में ही तादातम्य दिखता है। आत्मातिरिक्त पदापेक्षया कुछ भी सूक्ष्म व नित्य नहीं होता। अतएव ब्रह्म ही निरतिशय (सर्वातिशय) कहा जाता है। ''ब्रहत्वात् ब्रह्म'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार किसी महद वस्तु का नाम ब्रह्म है। यह प्रतीति स्वत: ही होता है। (तै. ब्रह्मानन्दवल्ली - शा.भा. 1/1) ''ब्रृह्-बृहि वृद्धौ'' इस धातु से ब्रह्म शब्द की सिद्धि होती है। अत: अतिशयरहित महद् ही ब्रह्म हैं महत्व क्या है? तो कहते हैं ''यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत्शृणोति स भूमा'' (छा. 3 (7/24/1) इत्यादि श्रुतियों में स्वणतया आम्नात है।

18.2 निर्गुण ब्रह्म का लक्षण

18.2.1 ब्रह्म का स्वरूप

वेदान्त में छ: प्रकार के प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि । इन सभी प्रमाणों का प्रामाण्य दो प्रकार का है। व्यावहारिक तत्व बोधकत्व तथा पारमार्थिक तत्व बोधकत्व। जिसका व्यवहारकाल में बोध नहीं होता अपितु तत्वज्ञान होने के अनन्तर बोध होता है, व्यवहारिक तत्व ज्ञान कहलाता है, जिसका तीनों कालों में भी बोध नहीं होता, वही पारमार्थिक तत्व है। इस तत्वद्वय के बोधक को प्रमाण कहते हैं।

अत: स्व प्रमाणों में द्विविध, प्रामाण्य होता है। ब्रह्मस्वरूप विषयक भिन्न प्रमाणों का व्यावहारिक तत्व बोधकत्वरूप प्रामाण्य होता है। इनके विषयों के व्यवहार में बोध नहीं होता। किन्तु ब्रह्म साक्षात्कार होने पर इनका बोध होता है। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (छान्दोग्योपनिषदि-''3-14-1''), ''आत्मैवेदं सर्व'' (छान्दोग्योपनिषदि-''8-25-2''), ''ब्रह्मवेदयमृतं'' (मुण्डकोपनिषदि-''2-2-11''), ''सदेव सोग्य इदमग्र आसीत्'' (छान्दोग्योपनिषदि-''3-2-1''), ''तत्त्वमसि'' (छान्दो. उप:-''6-7-8''), ''अयमात्मा ब्रह्म'' (बृहदारणयकोपनिषदि-''2-5-19'')

''ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताब्रह्म दक्षितश्चोत्तरेण।
अध्श्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रहमैवेदं विश्वमिदं तरिष्ठम्॥'' (2/2/12)

इत्यादि अखण्ड चेतन्य तात्पर्य बोधक वेदान्त वाक्यों का पारमार्थिक तत्व बोधकत्व रूप प्रमाण्य होता है। इन अखण्ड चैतन्य तात्पर्य बोधक वेदान्त वाक्यों का जीव ब्रह्मैक्य रूप जो विषय है उस विषय का तीनों कालों में भी बोध नहीं होता है। यह समग्र जगत् ब्रह्माद्धि है। लक्षणों तथा प्रमाणों से ही वस्तु सिद्धि होती है। अत: पहले लक्षण को बताते हैं। लक्षण दो प्रकार का होता हैं स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण। स्वरूप बोध

में स्वरूप लक्षण ही प्रमाण होता है और उपनिषदों में भी पहले ब्रह्म स्वरूप का कथन ही है। अतएव पहले स्वरूप लक्षण बताया जा रहा है। तैत्तरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली में कहा गया है ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''। तदेषाऽश्युक्ता। सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परे त्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह। ब्रह्मणा विपश्चितेति (2.1.1)।। आनन्द स्वरूप ब्रह्म से ही यह सब कुछ उत्पन्न होता है। तैत्तिरियोपनिषद् में कहा गया है। आनन्दो ब्रह्मेति व्यवज्ञानात्। आनन्दाह ह्येव खल्विमानि भूताति जायते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति। सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्यं इत्यादि ब्रह्म स्वरूप का लक्षण है। ब्रह्मज्ञ परस्य ब्रह्म को ही प्राप्त करता है। सत्यं ज्ञान्मनन्तं ब्रह्म इत्यादि परमात्मा के लक्षणार्थिक वाक्य है। जिस स्वरूप से जो वस्तु निश्चित होता है व्यभिचार नहीं करता है, वह वस्तु सत्य है। कूटस्थ है ब्रह्म। उसकी अपने स्वरूप से कदापि च्युति नहीं होती। विकारभूत समस्त पदार्थ मिथ्या है। अत: ब्रह्म मिथ्या नहीं है। भगवान् शंकराचार्य जी ने तैत्तिरियोपनिषद् के भाष्य में कहा है कि ''सत्यमिति'' यद्रुपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति चेत् तत् सत्यम्। यद्रूपेणमत् निश्चितं तद् व्यभिचरत् अनृतमुच्यते। अत: विकारोऽनृतम्'' वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। अत: सत् ही सत्य है। अत: सत्य ज्ञान अनन्त ये ब्रह्म के विश्लेषण हैं और ब्रह्म है विशेषज्ञ। ब्रह्म ही ज्ञेय है। ज्ञातव्य रूप में ब्रह्म ही विवक्षित है, अत: ब्रह्म ही विशेष्य है। यहाँ विशेषण विशेष्य भाव है। अत: ''सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' यह समानाधिकरण पद है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि एक जातीय अनेक द्रव्य युक्ति युक्त होता है, कारण कि विशेष्य का निश्चय करने के लिए ही विशेषणों की सार्थकता है। परन्तु यहाँ तो एक ही विशेष्य एक ही ब्रह्म हैं अत: विशेष्य ब्रह्म के अनेक विशेषण निष्प्रयोजन है? तो कहते है ऐसा नहीं है। यहाँ लक्षण का निर्देश ही विशेषण प्रयोग का उद्देश्य है। ये विशेषण लक्षणार्थक हैं न कि प्रधान। विशेषण में जातियों से ही व्यावर्तन करते है, किन्तु लक्षण सभी से व्यावर्तन करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मा जी के भाष्य में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि ''न लक्षणार्थत्वाद् विशेषणानाम्''। नाऽयंदोष:। कस्मात्? लक्षणार्थप्रधानानि विशेषणामि, न विशेषण प्रधानान्थेव। कं: पुनर्लक्षणलक्ष्ययो: विशेषणविशेष्ययो: वा विशेष:? उच्यते सज्ञातीमेश्च एवं निवर्तकानि विशेषणानि विशेष्यस्थ, लक्षणन् सर्वत एव, यथा अवकाशप्रदात्रकाशमिति। लक्षणार्थञ्च वाक्यमिति अवोचाम'' इति। यह जगत् ब्रह्म का ही विवर्तरूप है। जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। जैसे घट का कारण मिट्टी है, वह अचेतन स्वभाव है। उसी तरह जगत् का कारण भूत ब्रह्म भी मिट्टी की तरह अचेतन स्वभाव है। इस आशंका के होने पर कहते ज्ञान स्वरूप ही ब्रह्म है। भावार्थक है ज्ञान शब्द, न कि कर्त्तर्थक। तृतीय लक्षण प्रधानविशेषण है ''अनन्तम्''। आनन्त्य त्रिप्रकारक सम्यक है। देशकृत, कालकृत, वस्तुकृत। जैसे देश आकाश का देश अनन्त है। किन्तु कालकृत, वस्तुकृत आनन्त्य इसका नहीं होता। क्योंकि आकाश जन्य होता है एवं सभी जन्य पदार्थ काल तथा वस्तु से परिच्छिन्न होता है। ब्रह्म अकार्य वस्तु है। अत: कालापियों से परिच्छिन्न नहीं होता। क्योंकि सभी वस्तुओं से ब्रह्म अपृथक् है। जो वस्तु किसी वस्तु से भिन्न होता है, वही वस्तु अन्य वस्तुओं का निवर्तक हो सकता है। वस्तुओं

टिप्पणी

में भेद का कारण ही एक विषयक वस्तु अपर विषयक वस्तु का निवर्तक होता है। सभी वस्तु से अन्यथा होने के कारण ही ब्रह्म अनन्त है। तैत्तिरीयोनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में भगवान् शंकराचार्य जी ने कहा है कि ''तद्यथादेशतोऽनन्त आकाशः न हि देशतस्वस्य परिच्छेदोऽस्ति। न तु कालतश्चानन्त्थं वस्तुश्चाकाशस्य। कस्मात्? कार्यत्वात्। नैवं ब्रह्मणं: आकाशवत् कालतोऽपि अन्तवतवम्। अकार्यत्वात्। कार्य हि वस्तु कालेन परिच्छिद्यते, अकार्यञ्चब्रह्म। तस्मात् कालतोऽस्त्यानन्त्यम्। तथा वस्तुतः। कथं पुनर्वस्तुतः आनन्त्यम्? सर्वानन्यत्वात्।'' इति।।

फिर ब्रह्म स्वयं प्रकाश भी है। ब्रह्म के प्रकाश से ही सब कुछ प्रकाशित होती है। सूर्य-चन्द्रमा आदि भी उसके प्रकाश से ही प्रकाशित होते है। अत एव ''मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भिन्तो कुतोऽयमग्नि तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'' 2/2/11।। इति।।

भगवान चित्सुखी जी भी तत्व प्रदीपिका में स्वप्रकाश का लक्षण करते है। ''अवेद्यत्वेसति अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्वम्'' इति। यदि आचार्योक्त लक्षण को स्वीकार करें तो भावी, भूत धारादियों नित्यानुमेय धर्मादियों में अतिव्याप्ति चली जायेगी। यदि ऐसा कहते हैं तो उत्तर देते हैं, कि यह ठीक नहीं है। अनुमान तथा आगम से घट तथा तद्धर्म ज्ञात होते है। अतः घटादियों में भी वेघत्व है। अतः केवल अवेघत्व मात्र लक्षण किया जाये तो पर्याप्त होगा, ऐसा पूर्वपक्षी का कथन है। अब सिद्धान्ती कहता है कि यहाँ पर वेद्य का अर्थ है फलव्यापत्व। अवेद्यत्व फलत्याप्यरूपवेद्यत्व का अभाव है। विषयावच्छिन्न अभिव्यक्त चैतन्य फल है। धर्मादियों इन्द्रियसन्निकर्ष का अभाव होने से विषयावच्छिन्न रूप फल नहीं होता। अतः फलव्याप्यत्व का अभाव है इनमें। अतएव अवेद्यत्व स्वीकृत है।

अब यदि केवल ''अवेद्यत्वम्'' इतना अंश ही लक्षण में होता तो धर्मादियों में अतिव्याप्ति चली जाती, अतएव ''अवेघत्वे सति अपरोक्षव्यवहार योग्यत्वम्'' यह सम्पूर्ण लक्षण करना चाहिये। अन्तःकरण इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के प्रति जाकर जब विषयाकार रूप में परिणत हो जाता है, तब अन्तःकरण परिणामविशिष्ट रूप विषय वेद्य कहलाता है। धर्म वा अतीन्द्रिय है, अतः अन्तःकरण परिणाम विशेष का अभाव होने से वेघत्व का अभाव है उसमें, अब प्रश्न करते है कि धर्मादियों में फलव्याप्यत्व न होने पर भी योगीजन धर्म का प्रत्यक्षीकरण करते है? कहते हैं योगियों को भी धर्म प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। यदि धर्म प्रत्यक्षीकरण नहीं होता तो वे सर्वज्ञ कैसे हुये? इस प्रश्न का उत्तर देते है कि उनके सर्वज्ञत्व का प्रयोजक सर्वद्रष्ट्टत्व नहीं है, इन्द्रियों के द्वारा दर्शन-श्रवण-मनन योग्य पदार्थों के प्रत्यक्ष ज्ञान में ही योगी जनों का सामर्थ्य है, न कि अयोग्यों के। इन्द्रिय ग्राह्य विषयों के भी प्रत्यक्ष ज्ञान का सामर्थ्य होने के कारण उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है। कुमारिलभट्ट जी ने श्लोकवर्तिक में कहा है ''यत्रप्यतिशयो दृज़्टः स स्वार्थानतिलद्यनात्। दूर सूक्ष्माविदृष्टो स्यान्न रूपे श्रोत्रवृश्रिता।। इति।। प्रत्येक इन्द्रिय अपने ही विषय के प्रत्यक्ष अन्य इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। जैसे कि चक्षुरिन्द्रिय रूप को छोड़कर शब्द का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

अब पूर्वपक्षी कहता है कि- अज्ञानान्तः करणेच्छादियों में फलव्याप्यत्व (वेद्यत्व) का अभाव होने के कारण इस लक्षण से अज्ञानादियों में अतिव्याप्ति नहीं होगा। ''अहम् अज्ञः'' इस प्रकार का अपरोक्ष व्यवहार भी देखा जाता है? तो उत्तर देते हैं कि अज्ञानादियों में यद्यपि अवेद्यत्वं है, तथापि अपरोक्ष व्यवहारयोग्यत्व नहीं है। क्योंकि अज्ञानादि तो ब्रह्म में कल्पित ही है तथा ब्रह्म की अपरोक्ष प्रतीति होती है। ''यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म'' यह बृह्दारण्यको-पनिषद् की श्रुति ही इस बात में प्रमाण है। पूर्व पक्ष कहता है अज्ञानादियों में अपरोक्ष शब्द का प्रयोग सम्भव तो है ही। अतः व्यवहारवश अज्ञानादियों का कल्पित अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व भी हैं। तब सिद्धान्त कहता है कि जैसे शक्ति मय यद्यपि रजत का व्यवहार होता है पर रजत व्यवहार की योग्यता नहीं होती है। वैसे ही अज्ञानादि में अपरोक्ष व्यवहार होते हुए भी योग्यता नहीं होती है। अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व घटादियों में है, किन्तु इनमें अवेद्यत्व नहीं है। अतः घटादि की व्यावृत्ति के लिए ''अवेद्य'' पद देना आवश्यक है।

अब कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्म के अवेद्य होने से कैसे उसमें अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व है? तो कहते हैं कि ''अपरोक्ष व्यावहार विशेषत्वाभाव'' यह अनिष्ट प्रसक्ति कहना चाहते हैं। आप अथवा व्यवहार का विषय होने के कारण ब्रह्म के ''वेद्यत्व'' का अनुमान कर रहे है। पहले में अनिष्ट प्रसक्ति नहीं कह सकते क्योंकि नैयायिक के मत में आपाद्यु तथा आपादक की अप्रसिद्धि होने के कारण। यहाँ आपादक है। वेद्यत्वाभाव तथा आपाद्य है। ''अपरोक्षव्यवहारविषय- त्वाभाव''। नैयायिकों के अनुसार वेद्यत्व तथा अपरोक्ष व्यवहार विषयत्व ये केवलान्वयि के धर्म है। अतः उन दोनों का अभाव कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है। अतः ''अवेद्यत्वे अति अपरोक्षव्यवहारस्योग्यत्वम्'' यह लक्षण साधु ही है। सत्यज्ञानादि ब्रह्म के स्वरूप हैं यदि तो वे धर्म हो जायेंगे और धर्मो कदापि धर्म या लक्षण नहीं होते क्योंकि असाधारण धर्म ही लक्षण होता है। अतः सत्यज्ञानादि कैसे ब्रह्म के स्वरूप के लक्षण हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वेदान्त परिभाषाकार धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते है कि ''स्वस्यैव स्वापोक्षया धार्मेधर्मभावकल्पनया लक्ष्यलक्षणत्व सम्भवात्''। यदि वस्तु का स्वरूप उसकी अपेक्षा भिन्न हो, तो ही स्वरूप में धर्म-धर्मि भाव कल्पित होता है। जो ब्रह्म है, वही सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप है। परस्पर लेशमात्र भी उनमें भेद नहीं है। यदि सत्य से भिन्न होता तो वह मिथ्या हो जाता है। ब्रह्म के कहने पर सत्य ज्ञानादियों का भी ग्रहण होता है। यद्यपि सत्य ज्ञानादि में बिन्दु मात्र भी भेद नहीं है तथाऽपि चिदाकारान्तः करणवृत्ति में अचिद्व्यावृत्ताकार जब आरूढ़ होता है, तब सत्य ज्ञानादियों का भेद कल्पित होता है। अतएव पद्मपादाचार्य जी ने पञ्चपादिका में कहा है कि ''आनन्दो विषयोनुभावों नित्यत्वञ्चेति सन्ति धर्माः। अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथगिव अवभासन्ते।''

ब्रह्माणी प्रमाणानपेक्षत्वम्

सभी लौकिक-वैदिक प्रमाण प्रमेय-व्यवहार आत्मा तथा अनात्मा के इतरेतराध्यास को ही सामने रखकर होता है। अभ्यास स्मृति रूप है- दूसरे मे पूर्वदृष्ट का अवभास करना।

अध्याय दो प्रकार का है। अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास। अर्थाध्यासपक्ष में ''स्मृतिरूप'' इस का अर्थ है कि जो कुछ भी स्मरण किया जाता है वह स्मृति है। इस अर्थ में स्मृति इसमें पर मे कर्मार्थक क्तिन्-प्रत्यय से निष्पन्न है स्मृति शब्द।

अत: स्मृतिशब्द का अर्थ है ''स्मर्यमाण वस्तु''। ''परत्र'' शब्द का अर्थ है, अन्य अधिकरण में। अर्थात् जिस अधिकरण में जो नहीं रहता, उस अधिकरण में। अब उपसर्ग-पूर्वक भास्-धातु से कर्म अर्थ में अच् प्रत्यय करके अवभास शब्द निष्पन्न होता है। जो प्रकाशित होता है, वही अवभास है। पूर्व दर्शन से जो अवभास हो, उसे पूर्वदृष्टावभास कहते हैं। इस प्रकार के अर्थ के लिए यदि पंचमी तत्पुरूष समास किया जाये तो पूर्वजन्य संस्कार वश जो प्रकाशित हो उसे दो पूर्वदृष्टावभास कहते हैं। अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा अन्य अधिकरण (जैसे रज्जु) में, समर्थभाणत्यवहारिकसर्प पदार्थ की तरह पूर्व जन्य संस्कारवश जो प्रतिभासितक सर्पादि प्रकाशित होता है, वही अर्थाध्यास है। ज्ञानाध्यास पक्ष में स्मृतिरूपपद का ''स्मरणमेव स्मृति:'' यह व्युत्पत्ति होगी। इस अर्थ में भाववाच्य में क्तिन् प्रत्यय करके ''स्मृति:'' यह पद निष्पन्न है। स्मृतिरूपपद का स्मरणज्ञान के सादृश्य ज्ञान'' यह अर्थ होता है। ज्ञानाध्यासपक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा अन्य अधिकरण में स्मृति रूप ज्ञान के सादृश्य ज्ञान प्रथम दर्शन से उत्पन्न होता है। वही ज्ञानाध्याय है। ''परता'' यह पद अधिष्ठान सत्य है। यह सूचित करता है। आरोप्य वस्तु की सत्ता यह ''इष्ट'' पद के द्वारा सूचित होता है।

''परत्र पूर्व दृष्टावभास'' इतना ही लक्षण करेंगे तो ''सेयं गौ:, सोऽयं देवदत्त:'' इत्यादि प्रत्याभिज्ञा में भी अतिव्याप्ति चली जायेगी। इस अतिव्याप्ति के कारण हेतु ''स्मृति रूप'' यह पद दान आवश्यक है। स्मृति होने पर वस्तु असन्निहित होता है। किन्तु प्रत्यभिज्ञा में सन्निहित होता है। अध्यास मिथ्या ज्ञान में निमित्त होता है। मिथ्याज्ञान अध्यास के प्रति कारण है। अध्यास का फल लोकव्यवहार है। लोकव्यवहार के प्रति कारण अध्यास है।

अतएव भगवतपाद शंकराचार्य जी ने अध्यासभाष्य में कहा है ''एवम् अनादिरनन्त: सर्वलोकप्रत्यकत्वा। अध्यास अनाद्यविद्या होने के कारण अनादि है। ज्ञान के बिन अध्यास नष्ट नहीं होता। अतएव अध्यास का आनन्त्य कहा जाता है। इसी प्रकार के अध्यास को ज्ञानीजन अविद्या कहते हैं। अध्यस्त पदार्थ निषेध के द्वारा अधिष्ठान रूप वस्तु स्वरूप के अवधारण को ही विद्या कहते हैं। प्रत्याक्षादि समस्त प्रमाण अविद्याविषयक हैं। प्रमाण का अविद्याविषयत्व प्रत्यक्ष सिद्ध है। देहेन्द्रियादि में अहं मम अभिज्ञान रहित पुरुष का ज्ञातृत्व नहीं है। प्रमातृत्व की अनुपपति होने पर प्रमाणों की भी प्रवृत्यनुपपत्ति होगी। शुद्धात्मा में प्रमातृत्वप्रमेथत्वादि नहीं होते। अविद्या का ही आश्रय लेकर प्रमातृत्वप्रमेयत्वादि व्यवहार सम्भव है। अतएव निर्विशेष निराकार विशुद्ध ब्रह्म के विषय में प्रमाणों की अपेक्षा नहीं है। अतएव अध्यास भाष्य में शंकराचार्य जी कहते हैं कि ''कथं पुनरविद्याविषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानिशास्त्राणि च''।। कहते हैं देहोन्द्रियादि में अहं मम अभिमान रहित प्रमातृत्व की अनुपपत्ति में प्रमाणप्रवृत्ति की अनुपपत्ति होती हैं। इन्द्रियों के ग्रहण के बिन प्रत्यक्षादि ज्ञान संभव नहीं है।

अनध्यस्तात्मभाव देह के द्वारा कुछ भी व्याप्ति नहीं होती। इन सब के न रहने पर असन्न आत्मा का प्रमातृत्व उत्पन्न होता है। प्रमातृत्व के बिना प्रमाणवृत्ति नहीं होती है। अतएव अविधविषयक ही प्रत्यक्षादि प्रमाण शास्त्र होता है। यहाँ भगवत्पाद जी का आशय है कि वेदोन्द्रियादियों में अहं अभिमानरहित जो पुरुष है, उस पुरूष का ''अहं कर्ता'', ''अहं ज्ञाता'', ''अहं भोक्ता'' ऐसा प्रमातृत्व भी नहीं होता है। जिसमें प्रमात्त्व नहीं है, उस पुरूष की जो इन्द्रियाँ हैं। उनकी अपने विषय के ग्रहण में प्रवृत्ति भी नहीं होती। यदि इन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती तो प्रत्यक्षादि व्यवहार भी सम्भव नहीं है। अधिष्ठान भूत देह के बिना इन्द्रियों का व्यवहार भी सम्भव नहीं हैं। जिस देह में कर्तृत्वभोक्तातृत्वादि अध्यस्तात्मभाव है, उस देह की ही सभी व्यापारों में प्रवृत्ति होती है। जिसका नहीं है उसकी कदापि प्रवृत्ति नहीं होती। ज्ञान सम्पन्न आत्मा और अनात्मा विषयक भ्रम ज्ञान शून्य पारदर्शी का प्रमाण प्रमेयादित्य वहारशास्त्रादि में दृष्ट हैं। अतः प्रमाण-प्रमेय व्यवहार न केवल अविद्या युक्त पुरुष का ही सम्भव है। इस आकांक्षा के निवारणार्थ भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने अध्याभास भाष्य में कहा है ''पश्वादिभिश्च अविशेषात्'' शब्दादियों के साथ श्रोत्रदियों का सम्बन्ध होने पर शब्दादि विज्ञान यदि प्रतिकूल हो तो पशु आदि भाग जाते हैं तथा यदि अनुकूल हो तो उसमें प्रवृत्त होते हैं। जैसे दण्डे वाले पुरुष को सामने देखकर ''यह मुझे मारना चाहता है'' इस इच्छा से भाग जाते हैं। यथा हरिततृण पूर्णदाक्ष को देखकर उसकी ओर दौड़ जाते हैं। उसी प्रकार व्युत्पन्न चिन्तन वाले भी पुरुष को देखकर भाग खड़े होते हैं। तद्विपरीत पुरुष के प्रति प्रवृत्त होते हैं।

शास्त्रीय व्यवहार में अपने परलोक सम्बन्ध को जानकर ही उसमें प्रवृत्त होता है। कर्मानुष्ठान में आत्मज्ञान का उपयोग नहीं है। आत्मज्ञान प्राप्ति के अनन्तर कर्म में अधिकार ही नहीं होता। आत्मज्ञान से पूर्व प्रवर्तमान शास्त्र अविद्यायुक्त पुरुष का आश्रय करते हैं, न कि आत्मज्ञान के बाद। शास्त्रीय कर्माधिकार में वेदान्तवेद्य, क्षुधाविरहित, जातिभेदशून्य, असंसारी आत्मा तत्व की अपेक्षा नहीं करता वस्तुतः आत्मा षडभावविकार रहित है। जायते, अस्ति वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति ये षड्भाव विकार है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है ''न जायते म्रियते वा कदाचित्नायं भूत्वा भविता व न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/20।। इस श्लोक का अर्थ है कि आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता, कभी नहीं मरता अर्थात् आत्मा में विनाश लक्षण विक्रिय नहीं है। आत्मा भवन क्रिया (सत्ता) का अनुभव कर बाद में अभाव जो प्राप्त नहीं होता। अर्थात् जो पद के बाद में निर्धारित नहीं रहता है वह मरता है परन्तु आत्मा कभी मरता नहीं है। अतएव आत्मा नित्य है जो पहले न रहकर फिर पैदा होती है वह उत्पन्न होता है लेकिन आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि वह स्वरूपतः निरवयव, निर्गुण है। अतएव गुणों के क्षय से इसका अपक्षय नहीं होता।

अतएव आचार्य श्री शंकराचार्य जी कहते है कि ''शाश्वत इति अपक्षयलक्षणा क्रिया विप्रतिशिषेध्यते, शश्वद्भवः शाश्वतः। न अपक्षीयते स्वरूपेण, निखयवत्वात, निर्गुणत्वात् च नापि गुणक्षेयण अपक्षयः''। जो अवयव संयोग से उपचित होता हो वह बढ़ता है ऐसा

टिप्पणी

अभिनव कहते है। आत्मा-निरवयव होने के कारण कदापि नहीं बढ़ता। शरीर के विपरिणत होने पर भी आत्मा नहीं विपरीत होती अर्थात् आत्मा सर्वविध विक्रिया रहित है। श्रुत्यादियों में भी यह ही लिखा है कठोपनिषद् में लिखा है ''न जायते म्रियते वा विपाश्चित्, नायं कुतास्चिन्न बभूवकचित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे। 1/2/18।। और परब्रह्म के निगुर्णत्व के विषय में श्वेताश्वेतरीपनिषद् में कहा गया है ''स्को देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। 6/11।। इस श्रुति का आशय है कि परब्रह्म सभी भूतों में अनुस्भूततया विद्यमान है। सभी कर्मों का कारयिता है। वही साक्षीरूप में सर्वत्र विद्यमान है। अविद्या जन्यगुण उस आत्मा का स्पर्श नहीं करते क्योंकि वह निर्गुण है। सर्वाधिष्ठानभूत ब्रह्म ही है। वही परमात्मा सभी का चेतयिता हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि ''सर्वोन्द्रिय गुणः भासं, सर्वोन्द्रिय विवर्जितम्। असक्तं सर्वभच्चैव निर्गुणं गुणभक्ति च।। 13/14।। सभी जड़ों इन्द्रियों का गुणव्यापारों में सद्धकल्पाध्यव साध गुण वचनादियों से ज्ञेय ब्रह्म सर्वेन्द्रियविवर्जित है। यद्यपि सभी इन्द्रियों तथा तद्विषयक गुणों से अंसाश्लिष्ट् है ब्रह्म। सभी दृश्यों का आस्पद गुणों का भोक्ता है। गीता के 13वें अध्याय में लिखा ''अनदित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमत्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तैय न करोति न लिखते।। 13/39।। परमात्मा अनादि है अर्थात् इसका कोई आदि कारण नहीं है। परमात्मा के अनादित्व के विषय में पंचदशी के चित्रादीयप्रकरण में कहा गया है कि- ''जीवईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोभिदि। अविद्याताच्चितो र्योगः षड्स्माकम् अनादयः।। जिसका कारण आदि कारण है वह अनादि नहीं होता, परमात्मा अनादि तथा निरवयव है। जो अगुण होता है उसके गुणों के नाश होने से उसका नाश हो जाता है। निर्गुण होने से परमात्मा अनादि है। शरीर में परमात्मा की यद्यपि उपलब्धि होता है, परन्तु कार्य के करने से वह उनसे लिप्त नहीं होता। इस श्लोक भाष्य में शंकराचार्य जी कहते है कि ''तथा निर्गुणत्वात्। स गुणो हि गुणत्ययात्त्येति। अयं तु निर्गुणत्वात् न त्येति इति परमात्मा अयमव्ययो नास्य त्ययो विद्यत इत्यत्ययः। यत एवमतः ''शरीस्थोऽपि शरीरेषु आत्मन उपलब्धिर्भवति'' इत शरीरस्थ उच्यते, तथाऽपि न करोति। तदकरणादेव तत्फलेनन लिप्यते''।। ऐसे ज्ञानस्वरूप ब्रह्म के विषय में प्रमाणों की अपेक्षा नहीं होती। अतएव गीता भाष्य में भगवत्पाद जी कहते हैं ''सिद्धे हि आत्मनि प्रमातरि प्रमित्सोः प्रमाणान्वेषणा न भवति।। 2/18।। इस भाष्य वाक्य के अनुसार आत्मा के विषय में प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। किन्तु आत्मज्ञान होने पर सभी भूतों में खुद को देखता है। इस प्रश्न के उत्तर में ''सर्वमिदं ब्रह्म'' ''यह सब कुछ ब्रह्म हैं'' यह कहा जाता है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मतीत् अपना ही प्रत्यक्षीकरण करता है। अतः ऐसी अवस्था में तद्विषयक प्रत्यक्ष प्रमाण तो होता ही है। यत् साक्षादपरोक्षाद ब्रह्म 3/4/1 यह बृहदार्यण्यकोपनिषद् में निगदित श्रुति ही इसमें प्रमाण हैं।

पाठगत प्रश्न

1. ब्रह्म के स्वरूप लक्षण विषयक श्रुति कौन सी है?
2. ब्रह्म के आनन्द स्वरूप प्रतिपादी का श्रुति कौन है?
3. ब्रह्म के प्रमाणानपेक्षत्व के विषय में शंकराचार्य जी ने क्या कहा है?
4. शास्त्रज्ञों को भी स्वतन्त्र रूप से ब्रह्म ज्ञानान्वेषण नहीं करना चाहिये इस पर शंकराचार्य जी द्वारा उक्त वाक्य लिखिये?
5. अविद्या के त्रिगुणात्मिका होने में प्रमाणभूत श्रुतिवाक्य लिखिए।
6. ब्रह्म के स्वप्रकाशत्व में क्या प्रमाण है?
7. अनादियों के विषय में विद्यारण्यस्वामी जी ने क्या कहा है?
8. परमात्मा के निर्गुणत्व का प्रतिपादन करने वाली श्रुति कौन सी है?
9. परमात्मा के निर्गुत्व में कौन सा स्मृति वाक्य प्रमाण है?
10. लक्षण तथा विशेषण में क्या भेद है?
11. अध्यास क्या है?
12. अध्यासलक्षण में ''स्मृतिरूप'' यह पद न रखने पर कहाँ अतिव्याप्ति होती है?
13. सभी शास्त्र तथा प्रमाण किसका अतिक्रमण नहीं करते?
14. पण्डितों ने किसे विद्या कहा है?
15. अध्यास का आनन्त्य कैसे है?
16. अध्यास का फल क्या है?
17. ज्ञानाध्यास पक्ष में समग्र अध्यासलक्षण का अर्थ क्या होगा?
18. अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यासलक्षण का अर्थ क्या होगा?
19. आत्मा के धर्म के विषय मे पद्मपादाचार्य जी ने क्या कहा है?

पाठ का सार

यह सब कुछ आत्मा है परन्तु सर्वत्र हम आत्मा को देखने में असमर्थ है। क्योंकि हमें अज्ञान है वह अज्ञान त्रिगुणात्मक है। श्वेतश्वतरोपनिषद् में कहा है ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रज्ञाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां

टिप्पणी

भुक्तभोगामजोऽन्यः। 14/15।। उस अविद्या का हमें त्याग करना चाहिये। उसके त्याग के लिए ब्रह्म ज्ञान की आवश्यकता है। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरुसन्निधि में जाना चाहिये। क्योंकि गुरु अज्ञानं का नाशक होता है। शास्त्रपारदर्शी भी अपनी बुद्धि से आत्मज्ञान का अन्वेषण न करें। अतएव मुण्डकोपनिषद् में भगवान् शंकराचार्य ने कहा है कि शास्त्रज्ञोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्मज्ञानन्वेषणं न कुर्यात्। इत्येत्वद् गुरुमेव अवधारणफलम्।। 2/12।। इस देह में रहकर ही हमें जन्म को वश में करता है। इस देह में रहकर ही जिन्होंने जन्म जीत लिया उनका अन्तःकरण ब्रह्म में निश्चलीभूत है, अर्थात् वे ब्रह्म में ही स्थित रहते है। वे तब खुद में खुद का अनुभव करते है। उस स्वयं प्रकाश स्वरूप ब्रह्म से ही हम सभी प्रकाशित है। ''तत्र न सूर्या भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयअग्निः। तमेव आत्रमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभति।। 2/1/11।। यह मुण्डकोपनिषद् में स्थित श्रुति ही पूर्वोक्त कथन में प्रमाण है। फिर जीव तथा ब्रह्म में भेद अविद्याकल्पित है, वस्तुतः अभेद में ही सभी वेदान्तों का तात्पर्य है।

अधिगत विषय

1. सत्यं ज्ञानमनन्तं आन्दम् इत्यादि ब्रह्म के स्वरूप लक्षण है।
2. अवेद्यत्वे सति ''अपरोक्षत्यवहारयोगयत्वम्'' यह स्वप्रकाश का लक्षण है।
3. जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है।
4. जीवब्रह्म का भेद अविद्या के द्वारा कल्पित है।
5. ज्ञानस्वरूप आत्मा में प्रमाणों की अनपेक्षा है।
6. निष्कल, निष्क्रिया, शान्त, निरवद्य, निरंजन, यही निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप है।
7. सर्वत्र सर्वदा ही ब्रह्म विराजमान है।
8. सत्यं ज्ञानमन्तम् ये ब्रह्म के विशेषण लक्षार्णाधक है, न कि विश्लेषणप्रधान्।
9. ''स्मृति रूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः'' यही अभ्यास है।
10. सभी शास्त्र तथा प्रमाण अविद्यावान् विषय का अतिक्रमण नहीं करते है।

पाठान्त प्रश्न

1. कितने प्रमाणों की अपेक्षा की अपेक्षा है या नहीं, विचार कीजिए।
2. मुमुक्षुओं को कहाँ से गुरुसन्निधि में जाना चाहिये?
3. ब्रह्म का स्वप्रकाशत्व क्या है?

टिप्पणी

4. स्मृति क्या है?

5. प्रत्याभिज्ञा क्या है?

6. किसके बिना इन्द्रियों की प्रवृत्ति सम्भव नहीं है?

7. लक्षण तथा विशेषण में क्या भेद है?

8. निर्गुण ब्रह्म में प्रत्याक्षादि प्रमाणों की अनपेक्षा कैसे है? प्रदर्शित कीजिए।

9. शंकराचार्योक्तदिशा निर्गुणत्व का प्रतिपादन कीजिए।

10. ब्रह्म शब्द का अर्थ बताये?

11. वेद्यत्व क्या है?

12. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण वर्णित करें?

13. अध्यास स्वरूप का वर्णन करें?

14. अध्याय के प्रति क्या कारण है?

15. ब्रह्म के धर्म कौन है?

16. अध्याय का आनन्त्य कैसे हैं?

17. तत्त्वप्रदीपिका के अनुसार स्वप्रकाशत्वा की व्याख्या कीजिए?

18. अर्थाध्यास का वर्णन करें?

19. अध्यास का अनादित्व कैसे है?

20. पशु आदि तथा शास्त्रपारदर्शी इन दोनों का समान प्रमाण प्रमेय व्यवहार इस विषय को प्रतिपादिक करें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. तैत्तिरियोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में कहा है-

ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्यामन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह। ब्रह्मणाविपश्चितेति।। 2/1/1।।

टिप्पणी

2. तैत्तीरीयापनिषद् में कहा है आनन्दो ब्रह्ममेति व्यज्ञानात्। आनन्दाद ह्येव खल्लिवनानि भूतानि प्रयन्त्याभिविशन्तीति।

3. ''गीताभाष्य में शंकराचार्य जी ने कहा है ''सिद्धे हि आत्मनि प्रमातरि प्रमित्सो'' प्रमाणान्वेषणा न भवति।

4. मुण्डकोपनिषद् में भी शंकराचार्य जी ने कहा है ''शास्त्रनोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्मजानावेषण न कुर्थीत् इति एतदृगुरुमेवावधारण- फलमिति।। 1/2/12।।

5. श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा कि ''अजामेकां लोहित-शुक्लकृष्णां, बद्धी प्रज्ञा सृजमानां सरूपा:। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य:।

6. मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं ने मा विद्युतो भन्ति कुतोऽथमग्नि:। तमेव भान्तमनुभति सर्वं तस्य भासा सर्वामिद विभाति।। 2/2/11।। इति

7. पंचदशी के चित्रप्रदीपाधिकरण में कहा गया है ''जीव ईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योग: षऽस्मारूमनदय:।।

8. परब्रह्म के निर्गुणत्व के विषय में श्वेताश्वतरोपनिषद् में कथित है कि ''एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़:, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। इति।। 6/11।।

9. गीता के 13वें अध्याय में कहा गया है कि ''अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्माऽयमत्यय:। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिखते।। 3/39।। इति।।

10. विशेषण सजतियों से ही व्यावर्तन करते हैं, जबकि लक्षण सजातीय-विजातीय दोनों से ही त्यावर्तन करते हैं।

11. अध्यास है ''स्मृतिरूप: पत्र पूर्व दृष्टावभास:।''

12. अध्याय लक्षण में ''स्मृतिरूप:'' इस पद के ग्रहण के अभाव में ''सेयं गौ:'', ''सोऽयं देवात्व:'', इत्यादि स्थानों में अतिव्याप्ति हो जाती।

13. सभी शास्त्र तथा प्रमाण अविद्यावान् विषय का अतिक्रमक नहीं करते।

14. अध्यस्तपदार्थ निषेध द्वारा अधिष्ठान रूप वस्तु स्वरूप के अवधारण को ही पण्डित विद्या कहते है।

15. ज्ञान के बिना ध्वंसाभाव होने से ही अध्यास का आनत्य है।

16. लोकव्यवहार ही अध्यास का फल है।

टिप्पणी

17. ज्ञानाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा ''अन्य अधिकरण में स्मृतिरूप ज्ञान का सादृश्य जो ज्ञान पूर्ण दर्शन से उत्पन्न होता है, वही ज्ञानाध्यास है।

18. अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ अन्य अधिकरण जैसे रज्जु आदि में स्मर्यभाण व्यवहारिक सर्पादि पदार्थ की तरह पूर्व जन्यसंस्कारवश जो प्रातिभासिक सर्पादि प्रकाशित होता है, वही अर्थाध्यास है।

19. पद्मपादाचार्य जी ने पंचपादिका में कहा है कि

''आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वञ्चेति सन्ति धर्माः।
अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् प्रथागिषा अवभासन्ते॥ इति॥

॥अट्ठारहवाँ पाठ समाप्त॥

19

सगुण ब्रह्म

प्रस्तावना

सभी वेदान्त वाक्यों में नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वरूप को ब्रह्म कहा गया है। सभी वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य ब्रह्म से ही है। ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म एकमाबाह्यम्।'' फिर भी उपाधिकृत भेद की कल्पना की जाती है न कि यथार्थ की। वेदान्तवाक्यों के द्वारा दो प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान होता है। सगुण और निर्गुण भेद से। सगुण ब्रह्म नाम, रूप, उपाधि, भेद से विशिष्ट होता है। सगुण ब्रह्म ही सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। उस ब्रह्म के सत्यसंकल्पत्व एवं सत्यकामात्वादि गुण होते हैं ऐसा वेदादि में स्पष्टतया कहा गया है। पूर्वपाठ में निर्गुण ब्रह्म की विवेचना कर चुके हैं। इस पाठ में सगुण ब्रह्म विषयक चर्चा की जायेगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- ब्रह्म में कैसा कर्तृत्व है यह जान पाने में;
- सभी वेदान्तों का कहाँ तात्पर्य है यह जान पाने में;
- तटस्थ लक्षण क्या होता है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण के विषय में उपनिषदों में क्या कहा गया है यह जान पाने में;
- प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है यह जान पाने में;
- ब्रह्म का तटस्थ लक्षण क्या होता है, यह जान पाने में;

टिप्पणी

- अवच्छेदवाद के अनुसार ईश्वर का स्वरूप क्या होता है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण विषयक कौन सा वेद है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण विषयक कौन सी स्मृति है यह जान पाने में।

19.1 सगुण ब्रह्म का स्वरूप

19.1.1 ब्रह्म का तटस्थ लक्षण

जिसका लक्षण किया जाये वह लक्ष्य होता है। लक्ष्य का जो असाधारण धर्म है वही लक्षण होता है। लक्ष्य का जितनी स्थिति काल उतने समय तक लक्ष्य में न रहकर जो लक्ष्य का व्यावर्तक होता है वह तटस्थलक्षण कहलाता है। जैसे गन्धत्व पृथिवी का तटस्थ लक्षण है। यहाँ लक्ष्य पृथिवी है। पृथिवी का जो परमाणु होता है वह भी पृथिवी ही होता है। इसलिए परमाणु भी लक्ष्य होगा। पृथिवी का परमाणु नित्य एवं लम्बे समय तक रहता है। लेकिन गन्धत्व लम्बे समय तक नहीं रहता। जन्यभाव वस्तुरूप होता है और गन्ध जो है महाप्रलय काल में नहीं रहता। नैयायिकों के मत में उत्पत्तिकाल में (घटादि) गन्ध नहीं रहता। इसलिए गन्धत्व पृथिवी का तटस्थलक्षण है। इसी प्रकार जगत् जन्मदि के कारण ब्रह्म का तटस्थलक्षण है। जगत् की जन्म, स्थिति, लय का कारण ब्रह्म है, इसमें वेद प्रमाण है।

तैतिरीयोपनिषद् के भृगुवल्ली में कहा है ''भृगुर्वे वारूणिः वरणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति तस्मै एतत्प्रोवाच। अननं प्राणः चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचम् इति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ति येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिंसविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति' (3/1) इति। इस श्रुति का अर्थ इस प्रकार है- पुत्र भृगु पिता वरूण के पास आकर कहा कि मुझे ब्रह्म विद्या पढ़ाइए जनक वरूण ने विधिअनुसार ब्रह्मज्ञान का उपाय अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाक् का उपदेश दिया। फिर बोले जिसके कारण ब्रह्म आदि है, जिनसे स्थावरभूतों का जन्म होता है तथा स्थिति भी रहती है एवं जिनका (ध्वंस) विनाश भी होता है तथा जहाँ विलीन होते है उस जन्म, स्थिति, लय के कारण ब्रह्मपदार्थ को विशेषकर ज्ञान करो। इस को सुनकर भृगु ने ब्रह्म की प्राप्ति हेतु साधन रूप में तप किया।

''जगज्जनमादि-कारणम्'' यहाँ पर जगत इस पद के द्वारा माया में जगत्कारत्व की आशंका नहीं करनी चाहिए। यहाँ कारणत्व से कारण विवक्षित है अर्थात् कर्तृत्व। माया यह जड़ होती है। जड़ भूत माया में कर्तृत्व सम्भव नहीं है। वेदान्त परिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र के द्वारा कहा गया है ''प्रकृते ब्रह्माणि च जगज्जन्मादिकारणत्वम्।'' यहाँ पर जगत शब्द विवक्षित है। कारणत्वं और कर्तृत्व होने के कारण अविद्या में अतिव्याप्ति नहीं होगी। ''धर्मराजध्वरीन्द्र । 2010। वेदान्त परिभाषा । (श्री सीतारामशास्त्री मुसलगाँवकर चौखम्बा

टिप्पणी

विद्या भवन वाराणसी पृष्ठसंख्या-329)'' कार्य के लिए जितने भी उपादान करण है, उन कारणों का अपरोक्ष ज्ञान जिसमें है पुनः कार्य करने की इच्छा एवं कार्यकारणानुकूल प्रयत्न जिसमें होता है वह कर्ता होता है। यह तीनों ईश्वर में है।

वेदान्तपरिभाषा के कर्ता धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते हैं ''कर्तृत्वं च तत्तदुपादापदानगोचर। परोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वम्'' इति। ''यः सर्वज्ञः सर्व विद्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतत् ब्रह्म रूपमन्नं च जायते।। (1/1/9) इस मुण्डकोपनिषद का श्रुति वाक्य परमेश्वर की अपरोक्षज्ञानसद्भाव में प्रमाणित है। ईश्वर सब कुछ जानते हैं। इसलिए उनको सर्वज्ञ कहा गया है। वह विशेषण के द्वारा सब कुछ जानते हैं इसलिए सर्ववित् भी कहा जाता है। उस ईश्वर का संवज्ञातरूप एवं ज्ञान विकार तप होता है। इस कारण से ब्रह्म का हिरण्यगर्भ नामक, कार्यब्रह्म, रूप, नाम, और अन्न उत्पन्न होता है परमेश्वर के कार्यकारणानुकूलप्रयत्नसद्भाव में तैत्तिरियोपनिषद् के अन्तर्गत श्रुतिवाक्य की कामना की। ''बहु स्याम प्रजायप्तियति। सतपः अतप्यत। स तषलप्त्वा इदं सर्वम् असृजत्। यदिदं किञ्च। तत्सृष्टवा। तदवानुप्रविशत्।'' (2/6) उस परमात्मा की इच्छा हुई कि में प्रभूत हो जाऊँ। तदन्तर परमात्मा सृष्ट की उपयोगिता को संकल्प किया तथा उसी में प्रविष्ट हो गए। उसमें प्रवेश कर भूर्त आकृति विशिष्ट एवं आकृति से रहित अगूर्त रूप को धारण किया। ब्रह्म के जगत्जन्मारिकरण में ''जन्माद्यास्य यतः'' (1/1/2)

बादरायण द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र ही इसका प्रमाण है। यहाँ पर 'यतः' इस पद के द्वारा कारण रूपी ब्रह्म का निर्देश किया गया है। अस्य इस पद के द्वारा इत्यादि वाले जगत् की अभिव्यक्ति की गई है। नाम एवं रूप के द्वारा इस जगत् के दो अंश है। वाक्य सुधाकर द्वारा जैसा कि कहा भी गया है। ''अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेति अंशपञ्चकम्। आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो दृयम्।। जन्माद्यस्य यतः'' यह सूत्र ब्रह्मसूत्र के समन्वयाधि करणगत जन्माद्यधिकरण में पढ़ा जाता है। 'भृगूर्वेवारूणिः। वरूणं पितरं उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मै एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणः चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचम् इति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तदविजिज्ञासस्व तदब्रह्मेति'' (3/9) यह श्रुति वाक्य इस अधिकरण का विषय है।

''जन्म उत्पत्तिः आदि अस्य इति तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि'' समास है। बहुब्रीहि समास में अन्य पदार्थ की प्रधानता होती है। समास घटक पदार्थ और विशेषण होते है। जहाँ विशेषण के साथ विशेष्य रूप अन्य पदार्थ का भी ग्रहण होता है वहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि-समास जानना चाहिए। जैसे ''पीताम्बरम् पश्य'' यहाँ पर पीताम्बर विशेषणों के साथ विशेष्य रूप पुरूष का ग्रहण होता है। इसी प्रकार जन्म आदि जिसका यहाँ पर जन्म विशेषण होगा। इसलिए यहाँ पर तद्गुणसंविज्ञान बहुब्रीहिसमास है। यहाँ जन्म को आदित्व वेदों के अनुसार है। तैत्तिरीयोपनिषद् श्रुतिवाक्य को प्रदर्शित करते है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्तियत्प्रयत्त्याभिसंविशन्ति। तद्विजिस्वतद्ब्रह्मेति'' (3/9) तथा जन्म का आदित्व वस्तुवृत्तापेक्ष होने से किया गया है। जन्म के द्वारा सत्ता प्राप्ति होगी तभी उसको प्राप्त सत्ता का धर्मि का स्थिति और प्रलय सम्भव है। ''सत्ताप्राप्त धर्मी'' इस सूत्र के द्वारा 'क्या अभीष्ट है इसको भगवत्पाद शंकराचार्य कहते हैं।

''भृगुर्वै वारूणि:। वरूणं पितरम् उपसार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति।'' इसी को आधार बनाकर कहा है 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति (3/6) अन्यनि आदि एव जातियकानि वाक्यानि नित्यशुश्द्धबुद्धमुक्त स्वभाव सर्वज्ञ स्वरूप कारण विषयाणि उदाहर्त्तव्यानि''। यहाँ पर भगवत्पाद का आशय इस प्रकार है कि यह जो भी उत्पन्न है वह आनन्द रूप ब्रह्म ही है। अनेक कर्ताओं के द्वारा तथा अनेक भोक्ताओं द्वारा संयुक्त यह जगत् है। जिनके क्रियाओं का और फलों का व्यवस्थित देशकाल निमित्त है, उस क्रिया फलों का आधार संसार है। इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सर्वज्ञ परमेश्वर से ही होती है। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य ने ''जन्माद्यस्य यत:'' (1/2/2) इसे ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा है 'अस्य जगत् नामकपाभ्यो व्याकृतस्यअनेककर्तृ भोक्तसंयुक्तस्य प्रतिनियतदेशकालनिमित्तक्रिया फलाश्रयस्य मनसापि अबिन्त्यरचनाकपस्थ जन्मस्थितिभन्नम् यत: सर्वज्ञात् सर्वशक्ते: कारणात् भवति तत् ब्रह्म इति वाक्यशेष:।'' अन्तिम में ब्रह्म के नौ तटस्थलक्षण प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार से हैं –

1. जगज्जन्मानुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
2. जगात्स्थित्यनुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
3. जगल्लयानुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
4. जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षात्वम्
5. जगत्स्थित्यनुकूलचिकीर्षात्वम्
6. जगल्लयानुकूलचिकीर्षावत्वम्
7. जगज्जन्मानुकूलप्रयत्नवत्वम्
8. जगात्स्थित्यनुकूलप्रयत्नवत्वम्
9. जगल्लयानुकूलप्रयत्नवत्वम्

ब्रह्म के जगज्जन्मादिकारत्व प्रदर्शन के द्वारा सर्वज्ञत्व दर्शाया गया है। उस ब्रह्म का सर्वज्ञत्व ''शास्त्रयोनित्वात्'' (1/1/3) इस ब्रह्मसूत्र में निश्चित किया जा चुका है। इस शास्त्रयोनित्वाधिकरण का दो वर्णक है। सूत्र का एक प्रकार तात्पर्यार्थ के द्वारा। जिस भाष्य के अंश में वर्णन प्राप्त होता है वही वर्णक कहलाता है। पहले वर्णक में ''अस्य महतो भूतस्य नि:श्वास्तिमेव एतत् यत् ऋग्वेद' (2/8/10) यह बृहदारण्यकोपनिषद् के अन्तर्गत आर्य श्रुतिवाक्य का विषय है। शास्त्रस्यऋग्वेदादि: योनि:, कारणम्, तस्य भाव: तत्वं शास्त्रयोनित्वम् तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् अर्थात् वेदकृतकत्वात्, ब्रह्म सर्वज्ञम्। ''पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि शिक्षा कल्पत्याकरण निरूक्तच्छन्दोज्योतिषाणि पड्गानि'' यह दश विद्यास्थान वेदार्थ ज्ञान के कारण होता है। ये वेज्ञादार्थ ज्ञान के कारण तथा उपकारक है ऋग्वेदादि के कारण ब्रह्म है। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा कहा भी गया है ''महत: ऋग्वेदादे: शास्त्रस्य अनेकविद्या स्थानोपवृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थवद्योतिन:

सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारण ब्रह्म। जैसे दीपक रखे हुए वस्तुओं का ज्ञान करता है उसी प्रकार ऋग्वेदादि शास्त्र अर्थों का बोध कराते है।। यह शास्त्र सर्वज्ञ (ईश्वर) के समान होते है। इस प्रकार के शास्त्र का सर्वज्ञ से ही सम्भव है, न किसी अन्य से। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा कहा गया है ''नहि दृशस्व शास्त्रस्य ऋग्वेदापिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः सम्भोऽस्ति।'' जितने अनेकार्थ प्रतिपादक शास्त्र है जिस पुरूष विशेष से उत्पन्न वह पुरूष उन शास्त्र में है ऐसा लोक में प्रसिद्ध है।

पुरूष का नित्य प्रकार प्रयत्न के बिना ही निःश्वासादि कार्य चलते है उसी प्रकार बिना प्रयत्न के लीलान्याय के द्वारा सर्वज्ञानकार ऋग्वेदादि जिससे महत भूत से प्रभाव सम्भव है वह ब्रह्म है ऐसा जानना चाहिए। इसलिए ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है। द्वितीय वर्णक में 'तं तु औपानिषद पुरूषं पृच्छामि'' (3/7/26) बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त श्रुतिवाक्य विषय है। शास्त्रम् ऋग्वेदादियोनि प्रमाणं यस्य तत् शास्त्रयोनिः तत्वं शास्त्रयोनित्वम्, तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् अर्थात् वैदिकप्रमाणकत्वात् इति सूत्रस्य उपदेशः अर्थः।

भाष्य रत्न प्रभाकर द्वारा इस प्रश्न की विवेचना के समय कहा है कि 'यस्य निःश्वासतं वेदाः सर्वार्थज्ञानशक्रयः। श्रीरामं सर्ववेत्तारं वेदवेद्यमहं भजे।'' (वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या-116) ''एक वेद के प्रमाण के द्वारा ही ब्रह्म को जानना चाहिए।'' व्यापक, नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशाक्तिमान, न सर्वात्मक, समस्तजगत् कारण ब्रह्म के धर्म होते हैं। ''मनोमयः प्राणशरीरः आरूयः सत्यसच्यल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वामिदमभ्यातोऽवाक्यनादरः'' (3/14/2) ऐसी छान्दोग्योपनिषद् श्रुति में मनोत्मव आदि के गुणी शरीर के उपास्य द्वारा उपदेश दिया जाता है, अथवा परमात्मा ही उपदेश देते हैं ऐसा संशय होने पर कहा गया है कि परमात्मा ही उपदिष्ट करते है। कारण निश्चित सभी वेदान्त वाक्यों में जगत का कारण ब्रह्म ही कहा गया है।

जैसा छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है ''सर्व खाल्विदं ब्रह्म तज्जतान् इति शान्तः उपासति। अथ खलु क्रतुमयः पुरूषः यथाकृत रहिमन् लोके पुरूषः भवति तथा इतः प्रेत्य भवति, स क्रतुं कुर्वीत' (3/14/1) ''विवक्षितगुणोपयत्तेश्च (1/2/2) इस ब्रह्म सूत्र में ब्रह्म का सगुण स्पष्टया प्रतिपादित है। प्रकृत सूत्र का अर्थ - ''वक्तुं इष्टाः विवक्षताः विवक्षिताश्च ते गुणाश्च इति विवक्षितगुणाः'' ब्रह्म में दो वह गुण उत्पन्न होता है, न कि जीव में। सत्यसंकल्प और सत्यकमादि जो गुण है वह सगुण ब्रह्म में ही सम्भव है। सगुणब्रह्मविषयक वेद और स्मृतियाँ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है : ''त्वं प्रमानिस, त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः (4/3) श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है। ''सर्वतः पणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति (13/13)

भगवत्पाद शंकराचार्य के द्वारा समन्वय अध्याय के विराजमान में ''विवक्षिज्ञतगुणोपपत्तेश्य (1/2/2) इसके ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा गया है 'अप्राणः हिमानाः शुभ्रः'' मुण्डकोपनिषद् (3/14/2) इत्याविश्रुतिः शुद्ध ब्रह्मविषया इयं तु मनोमयः प्राणशरीरः इति सगुणब्रह्मविषया विविशेषः'' (उसी पुस्तक में, पृष्ठ संख्या : 416) अज्ञान सत् और असत् दोनों से

टिप्पणी

ही अनिर्वचनीय है। सत्व, रज तमात्मक ज्ञान विरोधी और भावरूप होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वी: प्रज्ञा: सृजमानां सरूपा:। अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य:।। (5/8) रज और सत्व गुणों के अंश से सम्पन्न होने के कारण तमोगुण का प्रधानता के कारण विक्षेप शक्ति से युक्त होने के कारण अज्ञानोप हितचैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पत्ति होती है। तैत्तिरियोपनिषद् में कहा गया है। तस्माद्वा एतस्मादात्मन: आकाश: सम्भूत: आकाश: वायु: इत्यादि। आकाशादि में स्वकारण गुणानुरूप उत्तरोत्तर सत्व, रज, और तमगुणों की उत्पत्ति होती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी यह पाँच सूक्ष्म भूत होते है। यह सूक्ष्म भूत तन्मात्राएँ कहलाती हैं अर्थात् क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूत होते है। सूक्ष्मभूत से सूक्ष्मशरीर की उत्पत्ति होती है।

वह सूक्ष्मशरीर सत्रह अवयवों से युक्त होते है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह ज्ञानेन्द्रियाँ है। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये कर्मेन्द्रियाँ है। प्राण, अपान, व्यान्, उदान, समान यह प्राण है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। संकल्प और विकल्पन जो इन्द्रिय है वह मन है। यह सत्रह अवयव है। आकाशादि सात्विक अंशों से पृथक पृथक कर्म से ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। आकाशादि का सम्मिलित अंश बुद्धि और मन को उत्पन्न करते हैं। रज अंश से पाँच प्राण उत्पन्न होते है। तमोगुण प्रधान से जो पञ्चीकृत भूत नहीं है उनसे भूत पञ्चीकृत होते है। अपञ्चीकृत सूक्ष्म भूतों के द्वारा लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। लिङ्गशरीर ऊपर कहे गये सत्तरह अवयवों से युक्त है। जैसा की मैत्रीयोपनिषद् में कहा गया है। ''पञ्च प्राणमनोबुद्धिदर्शन्द्रियसमान्वितम्। अपञ्चीकृतभूतोस्यं सूक्ष्मांगम् भोगसाधनम्।। पञ्चीकृतभूतों के द्वारा भू:, भुव:, स्वर, महा:, जप, तप, स्वत्य नामक ऊपर-ऊपर रहने वाले लोकों का अतल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, तलातल, पाताल नामक नीचे विद्यामान लोकों का, ब्रह्माण्ड के, जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज, नामक चार प्रकार के सूक्ष्म शरीरों का स्थूल शरीर भोग्य अन्न जल आदि की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न होती है। कारण, सूक्ष्म और स्थूल के भेद से शरीर तीन प्रकार के होते है। समष्टि, समष्टि कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से रहित एवं चैतन्य, सर्वज्ञ ईश्वर होता है। व्यष्टि कण शरीर और अज्ञान से उहित चैतन्य हिरण्यगर्भ है। व्यष्टि सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से उपहित चैतन्य तेजस है। समष्टि, स्थूलशरीर और अज्ञान से उदित चैतन्य विराट है। व्यष्टि सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से उदित चैतन्य विश्व है। स्थूल शरीर से उत्पन्न कार्य ब्रह्म ने उन हिरण्यगर्भ का साक्षात्कार किया है। इस से अशेष प्रपञ्च की उत्पत्ति हिरण्यगर्भादि देवों ने ईश्वर की परम्परा के द्वारा किया। इसलिए छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है। ''दन्तादमम् इमा: तिस्र: देवता: अनेन जीवोनात्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' (6/3/2) इति। हिरण्यगर्भ ही प्रथम जीव है। जैसा कि वेद में कहा गया है। ''स वे शरीरी प्रथम: स वै पुरूष: उच्यते। आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे

सरवर्तत'' (युजर्वेद-13/4) इति। जिस क्रम से सृष्टि होती है ठीक उसके विपरीत क्रम से प्रलय होता है। पृथिवी से जल, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश से जीवगत अहंकार में जीवगत अहंकार का कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ के अहंकार में जीन हो जाता है। प्रलयकसमद्भाव में विष्णुपुराण प्रमाणित है। विष्णु पुराण में कहा गया है 'जगत्प्रतिष्ठा देवर्षै। पृथिवी जल में समाहित हो जाती है। तेज का जल में विलय हो जाता है, तेज वायु में समाहित हो जाती है। वायु आकाश में लीन हो जाती है और वह आकाश अन्य अव्यक्त में विलीन हो जाता है ''अत्यवतं पुरूषे ब्रह्ममन्। निष्फलं सप्रलयिते।। यही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा गया है।

19.1.2 बिम्ब प्रतिबिम्ब वाद से ईश्वर निरूपण

ब्रह्म दो प्रकार का जाना जाता है। सगुण एवं निर्गुण। सगुण ब्रह्म नाम रूप विकार एवं भेद के उपाधि से विशिष्ट होता है। निर्गुण ब्रह्म सभी उपाधि से रहित होता है। इसीलिए शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में आनन्दमयाधिकरण में कहा गया है - अतः परस्य ग्रन्थस्य किमुत्थानमिति? उच्यते द्विरूपं हि ब्रह्म अधिगम्यते। नामरूपविकारभेदोपाधिविशिष्टम्, तद्विपरीतं च सर्वोपाधिविवर्जितम् इति। ब्रह्म के द्विरूपत्व में शतशः प्रमाण प्राप्त होते हैं यथा- यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरः इतरं पश्यति, यत्र तु अस्य सर्वम् आत्मैव अभूत्, तत् केन कं पश्येत् (बृ.उ. 4.5.15)

यत्र न अन्यत् पश्चति यत्र न अन्यत् शृणोति न अन्यत् विजानाति स भूमा, अथ यत्र अन्यत् पश्यति अन्यत् शृणोति अन्यत् विजानाति तदल्पम् वै भूमा तत् अमृतम्, अथ यदल्पम्, तन्मर्त्यम् (छा.उ. 7.24.1) निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। आमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्। (श्वेताश्वेतरोपनिषत्)

इत्यादि श्रुतियाँ विद्या एवं अविद्या के भेद से ब्रह्म को दो बताते हैं। एक ही अज्ञान जीव एवं ईश्वर में उपाधिरूप से प्रदर्शित किया गया है। जैसे विष्णु पुराण में कहा है यथा-

विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तः किं करिष्यति।। इति।

जीव प्रतिबिम्बस्थानीय होता है। सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर बिम्बस्थानीय होता है। बिम्बप्रतिबिम्बरूप से जीव एवं ईश्वर को स्वीकार करते हैं तो ईश्वर का स्वातन्त्र्य एवं जीव का परतन्त्रय युक्ति युक्त होता है। कौन पुरूष जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर प्रतिबिम्ब ही मैं हूँ ऐसा मानता है। उसी प्रकार ईश्वर भी अपने प्रतिबिम्ब रूपजीवनगतक्रिया को अपना मानता है। अत एव कल्पतरूकार ने कहा है-

प्रतिबिम्बगता पश्यन्नृजुवक्रादिविक्रियाः।
पुमान् क्रीडेत् यथा ब्रह्म तथा जीवस्थविक्रिया।।

टिप्पणी

इस प्रकार सूर्य सर्वत्र आलोक का प्रसारण करता है। आलोक का विशेष प्रकाश स्थान यथा दर्पण तथा अज्ञान प्रतिबिम्ब का विशेषाभिव्यक्ति स्थान ही अज्ञानपरिणामविशेष ही अन्त:करण है। केवल अन्त:करण से अज्ञानोपाधि का परित्याग करना सम्भव नहीं है। कारण तो केवल अन्त:करण के उपाधि से परिच्छिन्न चैतन्य जीव ऐसा स्वीकार किया जाता है योगियों कायव्यूहअधिष्ठान सम्भव नहीं हो पायेगा। माया में चैतन्य प्रतिबिम्ब ईश्वर है। वही माया अनादि होती है। जैसे पंचदशी के चित्र प्रकरण में कहा गया है-

जीवेशौ विशुद्धौ वितथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितो योग: षडस्माकम् अनादय:॥ इति।

वह माया सद् एव असद् के द्वारा अनिर्वाच्य होती है। ब्रह्म के ज्ञान होने पर वह माया नष्ट हो जाती है। अत वह माया सत्स्वरूपा नहीं है। माया का अपरोक्षप्रतिभासरूप संसार में दिखता है इसीलिए वह असद् भी नहीं है। सिद्धान्तलेशसंग्रह में कहा गया है- अथ क: ईश्वर को वा जीव:? अत्रोक्तं प्रकटार्थविवरण अनादिरनिर्वाच्या भूतप्रकृति: चिन्मात्रसम्बन्धि नी माया तस्यां चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर: इति। पञ्चद्शी के तत्त्वविवेकप्रकरण में माया आश्रित विद्या के भेद की परिकल्पना करके माया में चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर को कहा गया है। विशुद्धसत्वप्रधाना माया। मलिन एवं सत्वप्रधान अविद्या होती है। तादृशी अविद्या में चित्प्रतिबिम्ब ही जीव है। पंचदशी के तत्वविवेकप्रकरण में कहा गया है।

सत्त्वशुद्धविशुश्द्धभ्यां मायाविद्ये च ते मते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ: ईश्वर:॥

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।
सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥ (1.16.17) इति।

सिद्धान्तलेशसंग्रह में कहते हैं-

तत्वविवेके तु त्रिगुणात्किाया: मूलप्रकृते: जीवेशावभासेन करोति माया च अविद्या स्वयमेव भवति इति श्रुतिसिद्ध द्वौ रूपभेदो रजस्तमोऽनभिभूतशुद्धसत्त्वप्रधाना माया, तदभिभूतमलिनसत्वप्रधाना अथ इति मायाभेदं परिकल्प्य मायाप्रतिबिम्ब ईश्वरोऽविद्याप्रतिबिम्बो जीव: इत्युक्तम् इति। कार्योपाधिरयं जीव: कारणापाधिरीश्वर: इस श्रुति का आश्रय लेकर संक्षेपशारीरिककार ने सर्वज्ञात्ममुनि ने कहा है कि- अविद्यायां चित्प्रतिबिम्ब: ईश्वर:। पुन: अन्त:करणां चित्प्रतिबिम्बो जीव: इति। वस्तुत: जीव एवम् ईश्वर का तो अभेद ही है। जीव एवम् ईश्वर का भेद अविद्या से कल्पित एवम् उपाधिकृत् ही है। इसीलिए भगवत्पाद शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रगत समन्वयाध्याय के द्वितीयपादगत अन्तर्यामि-अधिकरण में शरीरश्चोभ्येऽपि हि भेदनैनमधीयते (1.2.20) और कहते हैं- अत्रोत्यते अविद्याप्रत्युपस्थापितकार्यकरणो- पाधिनिमित्तोऽयं शारीरान्तर्यामिणो: भेदव्यपदेश: न पारमार्थिक:। एको हि प्रत्यगात्मा भवति, न द्वौ प्रत्यगात्मानौ सम्भवत:। एकस्यैव तु भेदव्यवहार: उपाधि कृत: यथा घटाकाशो महाकाश इति।

अवच्छेदवाद के द्वारा ईश्वर का स्वरूप

दूसरे कुछ लोग कहते हैं कि, जो पदार्थ रूप के द्वारा उपहित नहीं है, उसका प्रतिबिम्ब सम्भव नहीं है। जैसे- नीरूप आकाश का प्रतिबिम्ब सम्भव नहीं है। वैसे ही सर्वोपाधि से विवर्जित निर्विशेष रूप ब्रह्म का भी प्रतिबिम्ब नहीं है। माया अविद्या है, ऐसा मानकर कुछ माया को एक ही है, ऐसा कहते हैं। माया के एकत्व होने में श्रुतियाँ पायी जाती हैं कि- मायां तु प्रकृतिंविद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वेताश्वतरोपनिषत् 4.10) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।। (4.5)। वहाँ पुनः स्मृति होती है कि- तरति अविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगी माययमेयास तस्मै विद्यात्मने नमः।। माया से उपहित चैतन्य ईश्वर साक्षी होता है। माया से अवच्छिन्न चैतन्य ही ईश्वर है। अत एव वेदान्त की परिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते हैं- ततश्च तदुपहितं चैतन्यम् ईश्वरसाक्षि। तच्चानादि, तदुपाधेर्मायायाः अनादित्वात्। मायावच्छिन्नं चैतन्यं परमेश्वरः। मायायाः विशेषणत्वे ईश्वरत्वम्, उपाधित्वे साक्षित्वमिति ईश्वरसाक्षित्वयोर्भेदः, न तु धर्मिणोरीश्वरसाक्षिणोर्भेदः इति। अतः माया से अवच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है। अन्तःकरण से अवच्छिन्न चैतन्य जीव है।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. माया और ब्रह्म में एकत्व प्रतिपादक श्रुतियाँ क्या हैं?
2. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण विषय वाली श्रुतियाँ कौन-कौन सी हैं?
3. जगत् प्रति जितने उपादानकारण हैं, ईश्वर के जगदोपादानकारण का अपरोक्ष होने में कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण हैं?
4. परमेश्वर का कार्यकारणानुकूलप्रयत्न होने में कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण है?
5. जन्म का आदि होने में कौन सी श्रुति प्रमाण हैं?
6. जगदुत्पत्ति के विषय में वाक्यसुधाकार ने क्या कहा है?
7. जन्माद्यस्य यतः इस व्यास विरचित ब्रह्मसूत्र में तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि का समास प्रदर्शन करिए।
8. जन्माद्यस्य यतः इस व्यास विरचित ब्रह्मसूत्र का निर्णय वाक्य क्या है?
9. शास्त्रयोनित्वाधिकरण का विषयवाक्यं क्या है?
10. वर्णक क्या है?
11. ब्रह्म का सगुणत्व प्रतिपादक एक श्रुति बताओ।
12. ब्रह्म के सगुणत्व का प्रतिपादिका स्मृति क्या है?
13. माया और विद्या में एकत्व प्रतिपादिका स्मृति क्या है?
14. माया और विद्या के भेद विषय में विद्यारण्यस्वामी ने क्या कहा?

टिप्पणी

15. षड् अङ्गादि क्या हैं?

16. प्रलय क्रम के सद्भाव में विष्णु पुराण में क्या कहा है?

17. ब्रह्म का द्विरूप होने में कौन-कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण हैं?

18. जीव और ईश्वर का अभेद विषय में भगवत्पाद शंकराचार्य ने क्या कहा?

19. दश विद्या स्थान क्या-क्या हैं?

पाठसार

परम आनन्द की प्राप्ति ही वेदान्तियों का मुख्य प्रयोजन है। जो मन्दमति वाले हैं उन का परमानन्द प्राप्ति के लिए सोपान सगुण ब्रह्मोपासना है। नामरूपविकारभेदोपाधि से विशिष्ट सगुण ब्रह्म होता है। निर्गुण ब्रह्मप्राप्ति के लिए आदि में सगुण ब्रह्म उपासनीय हैं। सगुण ब्रह्म ही जगत् का सृजन करता है। सगुण ब्रह्म जगत के जन्मादि का कारण है। सगुण ब्रह्मोपासन के द्वारा चित्तशुद्धि होती। चित्तशुद्धि का दूसरा नाम सत्त्वशुद्धिः। सत्त्वशुद्धि के द्वारा ही परमानन्द आत्मा की प्राप्ति होती है। हम सब आत्मस्वरूप ही हैं। किन्तु अज्ञानवश आत्मा को नहीं जान पा रहे हैं। अज्ञान के नाश के लिए हमको कर्म करना चाहिए। उपासना भी कर्म है। अन्तिम में शुभ और अशुभ कहना चाहिए। अत एव श्रीमद्भवद्गीता में कहा है-

सर्वधमान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यहाँ धर्म शब्द से अधर्म ग्रहण है। कारण यह है कि नैष्काम्य विवक्षित है। अर्थात् सब शुभाशुभ कर्म का परित्याग। निर्गतं कर्म यस्मात् तत् निष्कर्म, निष्कर्मणः भावः नैकर्म्यम्। शुद्धात्मा ही अज्ञानोत्थिसर्वकर्मरहित है। मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्ट परावरे।।

इस श्रुति का आशय है- शुद्धात्मा की प्राप्ति होने पर ही अविद्याग्रन्थी सर्वसंशय नाश को प्राप्त होते हैं। और सर्वकर्म का नाश होते हैं।

अधिगतविषय :-

1. जन्माद्यस्य यतः इस बादायण विरचित ब्रह्मसूत्र में सगुण ब्रह्म वाक्य है।
2. जगज्जन्मादिकारणत्व ब्रह्म का तटस्थलक्षण।
3. सगुण ब्रह्म नामरूप विकारभेदोपाधिविशिष्ट होता है।

4. अज्ञान सद् और असद् से अनिर्वचनीय सत्वरजस्तमोगुणात्मक ज्ञानविरोधि भावरूप है।
5. लक्ष्य का यावत्स्थितिकाल है उतना ही काल में न बैठकर जो लक्ष्य का व्यावर्तक होता है वही तटस्थलक्षण है।
6. कर्तृत्व हि तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिवाला है।
7. ब्रह्म के नौ तटस्थ लक्षण पाये जाते हैं।
8. ब्रह्म का सर्वज्ञत्व शास्त्रयोनित्वात् सूत्र में दृढीकृत है।
9. सत्यसंकल्पसत्यकामादि गुण सगुणब्रह्म में ही सम्भव होते हैं।
10. जो अनादि से अनिर्वाच्या भूतप्रकृति चिन्मात्रसम्बन्धिनी माया है उस में चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर है।
11. कार्योपाधि यह जीव एवं कारणोपाधि यह ईश्वर है। यही जीव और ईश्वर का भेद है।

पाठान्त प्रश्न

1. अवच्छेद के वाद दृष्टि से ईश्वर के रूप की आलोचना कीजिए।
2. जन्माद्यस्य यतः इस में कैसा समास प्रदर्शित किया है?
3. जीव एवं ईश्वर का भेद किस प्रकार का है?
4. माया क्या है?
5. गणु त्रय क्या है?
6. अनादि कितने हैं?
7. बिम्ब प्रतिबिम्बवाद दृष्टि के अनुसार परमेश्वर के स्वरूप की आलोचना कीजिए।
8. पृथिवी कहां लीन होती है?
9. तेज कहां लीन होता है?
10. श्रुत्यादि में कैसे ब्रह्म का सगुणत्व प्रतिपादन किया है?
11. अविद्या क्या है?
12. जीव क्या है?
13. विद्यास्थान कितने हैं, और वे क्या क्या हैं?

टिप्पणी

14. प्रलयक्रम का विष्णु पुराण के अनुसार आलोचना कीजिए।

15. ब्रह्म के तटस्थ लक्षण की आलोचना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. माया के एकत्व में श्रुतियाँ होती हैं कि- मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् (श्वेताश्वतरोपनिषत् 4.9)। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः। (4.5)

2. तैत्तिरीयायनिषद् के भृगुवल्ली में कहा गया है कि- भृगूवैं वारूणिः। वरूणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयत्न्यभिसंविशन्तीति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। (3) यह तटस्थलक्षणविषयिणी श्रुति है।

3. यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतत् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते (09) यह मुण्डकोपनिषद् गता श्रुति परमेश्वर का अपरोक्षज्ञान के सद्भाव में प्रमाण है।

4. परमेश्वर के कार्यकरणानुकूलप्रयत्न के सद्भाव में तैत्तिरीयोपनिषद् में पढ़ी गयी श्रुति है- सोऽकामयत। बहुस्याम् प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तद्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। (2.6)

5. भृगूवैं वारूणिः। वरूणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। (3)। यह तैत्तिरीयोपनिषत्गतश्रुति प्रमाण है।

6. वाक्यसुधाकार ने कहा है- अस्ति भान्ति प्रियं रूपं नाम चेति अंशपंचकम्। आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।

7. जन्मः उत्पत्तिः आदि अस्य यह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास है। जहाँ विशेषण के साथ विशेष्यरूपान्यपदार्थ का भी ग्रहण होता है, वहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास होता है। इसी सूत्र में विशेषण से जन्म के साथ का स्थिति लय का भी ग्रहण होता है।

8. इसी सूत्र का निर्णय वाक्य यह भी है कि- आनन्दात् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति। (3.6)

9. इस अधिकरण में वर्णकद्वय हैं। प्रथम वर्णक में- अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेव एतत् यत् ऋग्वेदः। (42.4.0) यह बृहदारण्यकोपनिषद् गत श्रुतिवाक्य ही विषय है। द्वितीय वर्णक में- तं तु औपनिषदं पुरूषं पृच्छामि। (3.9.26) यह बृहदारण्यकोपनिषद् गत श्रुतिवाक्य ही विषय है।

10. सूत्र के एक प्रकार तात्पर्यार्थं कि वर्णन जिस भाष्यांश में है, वह ही वर्णक है, ऐसा कहा जाता है।

11. श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहते हैं- त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवतिविश्वतो मुखः। (4.3)

12. श्रीमद्भवद्गीता में भी कहते है।- सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमखम्।

13. वहाँ स्मृति होती है कि- तरति अविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगी माययमेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः।

14. पञ्चदशी के तत्त्व विवेक प्रकरण में आख्यान विदित हैं कि- सत्तवशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते। मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञः ईश्वरः।। अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा। सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्।। (6.7)

15. पञ्चदशी के चित्र प्रदीप प्रकरण में कहा गया है कि- जीव ईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकम् अनादयः।।

16. विष्णुपुराण में भी कहा गया है कि- जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे! पृथिव्यप्सु प्रलीयते। तेजस्यापः प्रलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते।। वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते। अव्यक्तं पुरूषे ब्रह्मन् निष्कलं संप्रलीयते।।

17. यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितरः इतरं पश्यति, यत्र तु अस्य सर्वमात्मैव अभूत्, तत् केन कं पश्येत् (बृहराण्यकोपनिषत्-4/5/5), यत्र न अन्यत् पश्चति, न अन्यत् शश्णोति, न अन्यत् विजानाति, स भूमा, अथ यत्र अन्यत् पश्चति, अन्यत् शश्णोति, अन्यत् विजानाति, तदल्पम्, यः वै भूमा तत् अमृतम्, अथ यदल्पम् तन्मत्त्यम्। (छान्दोग्योपनिषत्-7/24) निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। अमतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।। (श्वेताश्वतरोपनिषत्) इत्यादि जो श्रुतियाँ हैं ये विद्या एवम् अविद्या के भेद से परब्रह्म परमेश्वर के द्विरूपत्व का कथन करते हैं।

18. भगवत्पाद भी कहते है। कि- अत्रोच्यते अविद्याप्रत्युपस्थातिपकार्य- करणोपाधिनिमित्त अयं शारीरान्तर्यामिणाः भेदव्यपदेशः, न पारमार्थिकः। एकः हि प्रत्यगात्मा भवति, न द्वौ प्रत्यगात्मानौ सम्भवतः। एकस्यैव तु भेदव्यवहारः उपाधिकृतः यथा घटाकाशः मठाकाश इति।।

19. पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राणि शिक्षाकल्पव्याकरणनिरूक्तछन्दो- ज्योतिषाणि षड्ङ्गानि ये दशविद्या स्थान है।

।।उन्नीसवाँ पाठ समाप्त।।

20

अज्ञान

प्रस्तावना

बृहदारण्यकोपनिषद् में ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः'' (1-5-6) ऐसा सुना जाता है, इस वाक्य का अर्थ ऐसा है कि, आत्मा का ही श्रवण, मनन एवं पुनः पुनः स्मरण करना चाहिए। श्रवण मनन व पुनः पुनः स्मरण (निरन्तर ध्यान) आत्मज्ञान हेतु साधन होते हैं। यह श्रवण इत्यादि आत्मज्ञान को उद्देश्य मानकर ही किया जाता है। इसी प्रकार से ''सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः'' (छा. उ. 8-7-1) इत्यादि वेदान्त वाक्यों में आत्मज्ञान को लक्षित करते ही श्रवणादि का उपदेश किया है, श्रवणादि साधनों के माध्यम से अज्ञान की निवृत्ति होती है। तथा फिर उससे स्वप्रकाश नित्य आत्मस्वरूप में भासित होता है। अतः आत्मज्ञान का अर्थ होता है कि- अज्ञान से निवृत्ति। जैसे बादलों से ढका सूर्य का प्रकाश बादलों के हटने पर प्रकाशित होता है वैसे ही स्वप्रकाश भी आत्मा के मेघसदृश अज्ञान के कारण हमारे द्वारा नहीं देखा जाता है, इसलिए आत्मस्वरूप के ज्ञान के लिए अज्ञान के आच्छादन को दूर करना चाहिए। इसलिए अज्ञान क्या है? उसका स्वरूप क्या है? इत्यादि विषय आत्मत्तत्वज्ञान के लिए अवश्य जानने चाहिए।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अज्ञान का स्वरूप व लक्षण जान पाने में;
- अज्ञान के लक्षण में प्रयुक्त पदों का अर्थ विवरण जान पाने में;
- अज्ञान के निरूपण में प्रमाणों का उपयोग कर पाने में;

टिप्पणी

- प्रत्यक्ष प्रमाण से अज्ञान का निरूपण कर पाने में;
- श्रुति प्रमाण से अज्ञान का निरूपण कर पाने में;
- अज्ञान की दो शक्तियों को जान पाने में।

20.1 अज्ञान का लक्षण

'अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' (गीता) गीता के इस वचन से ज्ञात होता है कि, ज्ञान अज्ञान से ढका है। न केवल इतना अपितु ज्ञान के ढ़के होने के कारण अज्ञानवश प्राणी मोहित होता है, विवेकहीन होता है, सही व गलत में भेद नहीं कर पाता है, इस कारण से निषिद्ध कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। फिर उससे उसके कर्मों का फल उदय होता है और फल भोगने के लिए उसे बार-बार संसार में जन्म लेकर आना पड़ता है इसीलिए उसे संसारी कहा जाता है। हमने पढ़ा कि अज्ञान आत्मा के शुद्ध ज्ञान स्वभाव को ढकता है। इससे ज्ञात होता है कि, वेदान्त दर्शन में अज्ञान ही बन्धन का कारण है इसलिए साधक मोक्ष के लिए अज्ञानरूपी बन्धन को दूर करे तथा उसको दूर करने के लिए अज्ञान को जानना आवश्यक है। नैयायिकों के समवाय में लक्षण प्रमाणों से ही वस्तु की सिद्धि होती है ऐसी प्रसिद्धि है इसलिए अज्ञान का लक्षण क्या है वह आत्मा को कैसे बाँधता है इत्यादि विषय जानने योग्य हैं।

वेदान्तसार सदानन्दयोगीन्द्र के अज्ञान का लक्षण कहा है कि, ''अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिवर्चनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति''। इस लक्षण में कहे गये सभी शब्दों का अर्थ विस्तार करते हैं-

20.1.1 अज्ञान की त्रिगुणात्मकता

जगत के उपादान का कारण ही अज्ञान है। वह त्रिगुणात्मक है ऐसा सांख्य योग व वेदान्ती मानते हैं। तीन गुणों का समाहार तीन गुण (त्रिगुणं), और तीन गुण वाली आत्मा ही स्वरूप है जिसका वह त्रिगुणात्मक यह विग्रह है। सत्व, रज व तम ये तीन गुण हैं। जगत का उपादान कारण अज्ञान त्रिगुणात्मक है इस विषय में स्वयं वेद ही प्रमाण हैं। इसीलिए श्वेताश्वेतर उपनिषद् में-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजामानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽश्नुते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥
(श्वे. उ. 4/5)

यहां पर लोहित शुक्ल व कृष्ण शब्द से सत्वादि तीन गुणों को ही जाना जाता है। माया के कार्यों की त्रिगुणात्मकता यहाँ पर सरूपाः इस पद से जानी जाती है और स्थानों पर भी जैसे- दैवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेन ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता 7/14)

और सत्त्व रज व तम गुण से युक्त यह अज्ञान सम्पूर्ण जगत को चलाता है। यह प्रकृति भी तीन गुण वाली है। इसलिए-

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ (गीता 4/5)

सत्त्व गुण का लक्षण -

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ (गीता 14/6)

उपाधि सहित वैषयिक सुख अथवा वृत्यात्मक अनित्य ज्ञान अथवा सत्त्व गुण का विषय। इच्छादि विषय धर्म सम्बन्धी चित् अपने में उत्पन्न करते हैं। विषय धर्म को विषय में आरोपित कर मैं सुखी हूँ ऐसा व्यवहार करते हैं। इस विषय में जैसे भाष्य में- मैं सुखी हूँ इस विषय भूत सुख का विषय आत्मा में संश्लेष का आपादान असत्य ही सुख का अनुभव है। वही अविद्या है। अविद्या ही स्वकीय धर्म के माध्यम से विषय व विषयी में अविवेक लक्षण से न अपने में होने वाले सुख से सुख में हूँ ऐसा अनुभव कराते हुए दुःखी को सुखी हूँ ऐसा प्रतिभान कराती हैं।

रजोगुण का लक्षण

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ (गीता 14/7)

तृष्णा अप्राप्त की अभिलाषा, प्राप्त विषय में मन की प्रीति का लक्षण संश्लेष है।

तमो गुण का लक्षण -

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥ (गीता 14/8)

20.1.2 अज्ञान की अनिर्वचनीयता

निर्वचन इसका अर्थ ही है कि, शब्द से प्रकाशन। जैसे- कम्बुग्रीवादि वाले जल निकालने वाले पात्र का निर्वचन क्या है, घट यह है, अर्थात् घट शब्द से वह पात्र जाना जाता है। घट यह पद है, उसके जैसा पात्र यह अर्थ है। अतः उस जैसे पात्र का निर्वचन है। अतः पात्र निर्वचनीय है, हमारे व्यवहार में जो पद आते हैं, शास्त्रों में शास्त्रकारों ने पारिभाषिक पदों से पुरस्कृत किये होंगे। उसी प्रकार से किसी शब्द से किसी भी अर्थ का प्रकाशन ही निर्वचन है, जब कभी कोई वस्तु या अर्थ अनिर्वचनीय होता है

ऐसा कहा जाता है तब उसका अर्थ है कि उसे प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। किसी भी प्रसिद्ध पद से अथवा प्रसिद्ध अर्थ में जो पद प्रयुक्त होते हैं उस प्रकार के पद से अभिधान नहीं होता है। जैसे मनुष्यों में किसी व्यक्ति को पुरूष किसी को स्त्री ऐसा कहा जा सकता है परन्तु जो स्त्री या पुरूष नहीं है उसका निर्वचन कैसे किया जाए। पुरूष पद से उसका निरूपण या निर्वचन सम्भव नहीं है स्त्री पद से भी उसका निरूपण सम्भव नहीं है अतः यह जानना चाहिए कि स्त्री व पुरूष इन दोनों पदों से वह व्यक्ति अनिर्वचनीय/अव्यपदिष्ट/अनामधेय है, वह व्यक्ति स्त्री पुरूष इन दोनों ही पदों से निर्वचनीय नहीं है। अर्थात् पुरूषत्व भी तथा स्त्रीत्व भी उसमें है क्या, यदि है तो, स्त्रीत्व पुरूषत्व उभय युक्त है वह व्यक्ति। यदि किसी वृक्ष में आम भी है और बेर भी है तो वह वृक्ष आमबेरात्मक है ऐसा कह सकते हैं। उसी प्रकार वह व्यक्ति स्त्रीत्व व पुरूषत्व दोनों ही प्रकार से युक्त है क्या? यदि नहीं तो उसका क्या स्वरूप है, अतः नपुंसक ऐसे तृतीय पद का निर्माण करके व्यवहार किया जाता है।

अज्ञान अनिर्वचनीय है यह वेदान्त का सिद्धान्त है। अनिर्वचनीय का सद्रूप अथवा असद् रूप से निरूपण असम्भव है। जैसे लोक में घट व पटादि वस्तु सद् रूप से अनुभूत होने से घटादि वस्तु सद् ऐसा निरूपण किया जाता है। किन्तु आकाश पुष्प असद् रूप से अनुभूत है। अतः वह असद् है ऐसा कहा जाता है। उसी प्रकार अज्ञान भी सद् रूप से अथवा असद् रूप से निरूपित नहीं हो सकता। इसलिए अज्ञान को अनिर्वचनीय कहा जाता है।

यहाँ पर विचार योग्य है कि- सद् क्या है? और असद् क्या है? जो तीनों कालों में किसी से बाधित नहीं होता है वह सद् है इसीलिए कहा गया है कि, कालत्रय से अबाधित सद् है यद्यपि अज्ञान भी किसी लौकिक उपाय से बाधित नहीं होता तथापि परम मंगल से ब्रह्म के साक्षात्कार से तो अवश्य ही दूर होता है अज्ञान सद् होता तो ब्रह्मज्ञान से बाधित नहीं होता। किन्तु अज्ञान ज्ञान से बाधित होता है अतः अज्ञान को सद् रूप ऐसा नहीं कह सकते। ब्रह्म रूप से बाधित होने के कारण सत्त्व रूप से व्याख्या नहीं की जा सकती।

असद् क्या है? जो तीनों कालों में प्रतीत न हो वह असत् या असत्त्व है, जैसे- आकाश पुष्प कभी भी किसी ने नहीं देखा है। जो तीनों कालों में ज्ञान का विषय नहीं होता वही असत् पदार्थ है। (शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः इति योगसूत्रदिशा।) अज्ञान असत् भी नहीं है। अज्ञान के असत्व में प्रत्यक्ष विषयत्व ही ना हो। परन्तु 'ब्रह्म न जानामि अहमज्ञः' इस प्रकार से प्रत्यक्ष से अज्ञान का अनुभव होता है। इस कारण प्रतीति का विषय होने से अज्ञान असत् भी नहीं है।

अज्ञान के असत्व में जगद् के उपादान कारण से अनुपपत्ति। अज्ञान के असत् तत्व में जगद् का उपादान कारणतव प्रतिपादित न हो।

नापि सदसदुभयात्मकम् अज्ञानम्- सत्त्व व असत्त्व का एकत्र विरोध होने से। सत्त्व से व असत्त्व से अनिर्वचनीय होने के कारण अज्ञान की अनिवर्चनीयता है।

वस्तुतः यह अज्ञान ब्रह्म से भिन्न नहीं है, ब्रह्म से भिन्न को मिथ्या मानने के कारण।

नाप्यभिन्ना चैतन्यजड़योरैक्यायोगात्।
भिन्नाभिन्ना-एकत्रैव विरूद्धधर्मयोरसम्भवात्।।

जैसा कि शंकराचार्य जी के द्वारा विवेकचूड़ामणि में-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनियरूपा।। इति

20.1.3 अज्ञान की भावरूपता

जगत के उपादानत्व से प्रतिपादित यह अज्ञान भावरूप है या अभावरूप यह विचारणीय है। न्याय दर्शन में अज्ञान शब्द से वह अविद्या शब्द से ज्ञान के अभाव को बतलाया जाता है। किन्तु वेदान्त में अज्ञान का स्वरूप भावात्मक ही है ऐसा प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है। अज्ञान के भावरूप में जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है वैसे ही वेद स्मृति आदि भी प्रमाण है।

अज्ञान के भावरूप में साक्षी के ज्ञान से प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। मैं अज्ञानी हूँ, मैं नहीं जानता यह प्रत्यक्षात्मक अनुभव अज्ञान के भाव स्वरूप को बतलाता है। वहाँ अहमज्ञः इसका अज्ञानवान् यह अर्थ है। और वह अनुभूत अज्ञान अभाव के अतिरिक्त भाव रूप ही है न कि अभाव रूप, अद्वैत वेदान्त के मत में अभाव अनुपलब्धि प्रमाण से जानने योग्य है न कि प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय है, अज्ञान के प्रत्यक्ष विषयत्व स्वीकार से अज्ञान अभाव रूप नहीं है।

नीहारेण प्रवृत्ताः, अनृतेन हि प्रत्यूढ़ा इत्यादि श्रुतिवाक्य अज्ञान के भावरूप में प्रमाण हैं।

यहाँ पर अनृत शब्द से अज्ञान जाना जाता है, अज्ञान से प्रत्युदाः विरोटिताः यह अर्थ है। भावात्मक रूप होने पर अज्ञान का आत्मस्वरूपतिरोधान योजित होता है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। (5/15)
नाहं प्रकाशं सर्वस्य योगमायासमावृतः। (7/25)

इत्यादि स्मृतियां भी आत्यस्वरूप अज्ञान से आच्छादित है ऐसा बतलाती हैं। अज्ञान के अभावरूपता में अभावात्मकज्ञान से ब्रह्मस्वरूपावरकत्व उपपादित नहीं होता है श्रुतिस्मृति के प्रमाण बल से ब्रह्मस्वरूपावरकत्व से भावरूप ही अज्ञान है ज्ञात होता है।

यद्यपि अज्ञान अविद्या है पद श्रवण होने के बाद ही ज्ञान का अभाव अज्ञान है,

विद्या का अभाव अविद्या प्रतीत होता है, तब भी 'नाभावात् भावोत्पत्तिरिहि'' न्याय से राग द्वेष स्मित इत्यादि अविद्या कार्यों की उत्पत्ति वेदान्ती अभाव से नहीं मानते हैं। सत्कारणवादी वेदान्तीयों के द्वारा किसी भी पदार्थ की अहेतु से उत्पत्ति स्वीकार्य नहीं है। सभी कार्य सकारण हैं इसलिए। कोई भी कार्य आकस्मिक नहीं है यह वेदान्त का सिद्धान्त है, इसी कारण अनुभूतमान राग द्वेष इत्यादियों का भावरूप अज्ञान का कारण है ऐसा कल्पित किया जाता है।

श्रीमान् सर्वज्ञात्ममुनि के द्वारा संक्षेपशारीरिक में कहा है कि-

'न अभावातास्य घटते वरणात्मकत्वात्, न अभावरणमाहुः
अभावशोण्डाः।
अज्ञानमावरणमाह च वासुदेवः, तद्भावरूपमिति तेन वयं प्रतीयः॥

और भी चैतन्य आवरकत्व से अज्ञान का भावरूप अपेक्षित होता है। वस्तुतः तो अद्वैतसिद्धिकार का मत यही प्रतिपादित करता है कि- भावरूप से ही अभाव विलक्षण है।

और जड़रूप अज्ञान का साक्षी के द्वारा ही भास होता है, साक्षी चैतन्य से ज्ञान स्वरूप से अज्ञान को प्रकाशित करता है। साक्षी का चैतन्य विषय से व अनुभव विषय से अज्ञान भावरूपी है यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

20.1.4 अज्ञान की ज्ञानविरोधिता

अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जगत के उपादान भूत अज्ञान का जन्म मरण के दुःख के निदान का ब्रह्म ज्ञान से नाश होता है। वहाँ अज्ञान की ज्ञानविरोधिता ही स्वभाव है। जैसे यह रजत है इस भ्रान्ति स्थल में अंशत्व से शुक्ति ज्ञान होने पर भ्रम का उपादान अज्ञान विनष्ट होता है। वैसे ही विशुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से अज्ञान अपने कार्य के साथ आत्यन्तिक रूप से दूर होता है। ज्ञान विरोधिता क्या है ऐसा कहने पर-

प्रमाणसहिष्णुता ही ज्ञान विरोधिता है।

सुरेश्वराचार्य ने कहा है-

अविद्याया अविध्यात्वे इदमेव तु लक्षणम्।
यत्प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्॥ (बृहदारण्यकवार्तिकम् 181)

प्रमाण के द्वारा परीक्ष्यमान वह अविद्या अपने कार्यों सहित बाधित होती है। सूर्योदय के समकाल में ही अन्धकार का नाश होता है वैसे ही ज्ञान के उदय के समकाल में ही अविद्या का नाश होता है। और वह भी किसी विचार अथवा प्रमाण परीक्षा को सहन नही करती यह सभी के अनुभव द्वारा सिद्ध ही है। इस प्रकार प्रमाण सहिष्णुता ही अज्ञान की ज्ञानविरोधिता है। अविद्या की ज्ञान निवृत्ति में श्रुतिस्मृतियां ही प्रमाण हैं। जैसे कि श्रुति में-

तमेव विहित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः
पन्था वियते अमनाय इति, तरति शोकमात्मवित्
(छात्र उ. 7/1/3) इति।

स्मृति भी-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ (गीता 5/16)

20.1.5 अज्ञान की अनादिता

जगत के परिणाम का उपादान अज्ञान की अनादिरूपता है ऐसा वेदान्ती मानते हैं, इसीलिए अनादि उपादान ज्ञाननिवृत्ति अज्ञान ऐसा कहते हैं। अज्ञान के अनादित्व में श्वेताश्वेतरोपनिषद् का मन्त्र उदाहरण रूप में प्रस्तुत करना उचित है- जैसे-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां ब्रह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणंऽनुशेते जहात्येनां मुक्तभोगामजोऽन्यः॥
(श्वे. उ. 4/5)

यहां पर अजा शब्द से नहीं होता है इस निर्वचन से अजा शब्द का अनादिरूपज्ञान में तात्पर्य है ऐसा शास्त्रविद् कहते हैं। और साम्प्रदायिक वचन भी यहाँ प्रमाण है-

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्मिदा।
अविद्या ताच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥

अनादि रूप वाले भी इस अज्ञान का ज्ञाननिवृत्तित्व ही स्वीकृत है न कि उसका नित्यत्व। ब्रह्मसाक्षात्कार के पर्यन्त वह माया अबाधित होकर अनुवर्तित होती है यह विवेक है।

20.2 अज्ञान के उपादान में प्रमाण

प्रमाण के बिना लोक में कोई भी वस्तु साध्य नहीं है, 'मानाधीना मेयसिद्धिः' यह शास्त्र मर्यादा है। प्रमा के प्रति असाधारण कारण प्रमाण होता है। अनादि भावरूप यह अज्ञान पूर्व ही लक्षित है। अब अज्ञान में प्रमाणों का विचार कर रहे हैं, वेदान्त शास्त्र में बहुत से प्रमाणों के माध्यम से अज्ञान को निरूपित किया जाता है। अज्ञान के उपादान में साक्षी का अनुभव ही परम प्रमाण है। मैं अज्ञानी हूँ, मैं नहीं जानता हूँ, यह अपरोक्ष अनुभूति भावरूपी अज्ञान को प्रमाणित करती है। अन्तःकरण उपाधि वाला चेतन साक्षी कहा जाता है, और जीव की साक्षी की अहमज्ञः यह अपरोक्ष अनुभूति ही प्रमाण होती है।

सोकर उठे पुरूष का 'न किञ्चिदवेविषम्' यह परामर्श भी अविद्या के उपपादन में प्रमाण है।

ऐसे ही कोई पुरूष गहरी निद्रा से उठकर/उठाने पर कहता है कि मुझे सुख की अनुभूति हुई परन्तु कैसे, यह नहीं पता। तो उसने सुसुत्ति अवस्था में अज्ञान का अनुभव किया, इसी कारण सुसुप्ति से उठे हुए का कुछ नहीं जानना यह परामर्श सम्भव होता है, 'न किञ्चित ज्ञातम्' यहाँ ज्ञान का अभाव विषय नहीं है। क्योंकि गहरी निद्रा में ज्ञान का अभाव नहीं अनुभूत होता।

कहा गया है पञ्चदशी में-

सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमो बोधो भवेत् स्मृतिः।
सा चावबुद्धविषया अवबुद्धा तत्तदा तमः॥ इति।

गहरी निद्रा में से उठे हुए का निद्रा विषय की जो स्मृति है वह अज्ञान के उपपादन में प्रमाण है यह अर्थ है।

20.2.1 अज्ञान कार्यानुमेम

माया (अज्ञान) परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की माया को आश्रित करके ही इस जगत् का सृजन होता है। जो शक्ति है, वह शक्ति कार्य से अनुमेय होती है। जैसे दण्डदीप (ट्यूबलाईट) में विद्युत है यह दीप प्रकाश से जाना जाता है, तथा सत्त्व रज तम गुणों से मुक्त माया कार्यमुख से जानी जाती है।

माया शक्ति का स्वरूप बताया है भगवान शंकराचार्य ने -

अव्यक्तनारी परमेशशक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सुधिमैव माया यमा जगत् सर्वमिदं प्रस्यूते॥

20.3 अज्ञान का जगत्कारणत्व विचार

अज्ञान ही जगत का कारण है। अज्ञान सम्बन्ध से ही ब्रह्म जगत के उपादान निमित्त व कारण होता है। जैसे श्रुति में-

यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च, यथा प्रथिव्यामोषधमः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात् कैशलोमनि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(मु. उ. 1/1/7) इति।

यह विषय प्रथम पाठ में जान लिया गया है। अब माया (अज्ञान) भी जगत का कारण होता है या नहीं यह विचारणीय है। अज्ञान प्रपञ्च के प्रति उपादान कारण है या निमित्त कारण है यह परीक्षणीय है। सभी कार्यों में स्वकार्य के गुणविशेष अनुभूत किए जाते

हैं। जैसे-मिट्टी के उत्पन्न घट में मिट्टी के गुण प्रतीत होते हैं। तन्तुओं द्वारा उत्पन्न (निर्मित) वस्त्र में तन्तु के कण प्रतीत होते हैं। वैसे ही यह जगत भी स्वकारण के अनुरूप होता है। कार्य व कारण का समान स्वभाव होता है। कभी भी कार्य अपने कारण से अति विरूद्ध स्वभाव का नहीं होता है। किन्तु यह जगत् जड़त्व से जाना जाता है। जगत में राग द्वेष मोहादि गुण अनुभूत होते हैं, इसमें अनित्यवाद आदि हेयगुण होते हैं। जगत् का कारण ब्रह्म चेतन व निर्गुण है। जगत में अनुभूत होने वाले जड़त्व अनित्यत्व आदि ब्रह्म के गुण नहीं है, इस कारण ब्रह्म से भिन्न जड़ वह त्रिगुणात्मक अज्ञान जगत का उपादान कारण है यह स्वीकार करना चाहिए। (ब्रह्म जगत का उपादान व निमित्त कारण होता है किन्तु अज्ञान भी उपादान कारण है यह विशेष है।)

वेदान्त सम्प्रदाय में भी कहा है-

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्मंशपंचक्म्।
आध्यत्रर्य ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्रमम्।। इति

''अस्ति भाति प्रियम्'' इन तीनों के द्वारा सत् चित् व आनन्द ब्रह्म का स्वभाव प्रदर्शित किया गया है। नाम व रूप ये जगत कारण अज्ञान के स्वभाव निरूपित हैं। जैसे कार्य जगत में सच्चिदानन्द ब्रह्म का धर्म अनुभूत होता है, वैसे ही नाम रूप, राग द्वैषादि, जड़त्व अनित्यवादी धर्म भी अनुभूत होते हैं। सर्वदा सत्व रज तम गुणों से अन्वित ही यह जगत कार्य अनुभूत होता है। कार्य में अनूभूतमान धर्मो की उपादान कारण अनुगति ही कहनी चाहिए। इसलिए ब्रह्म माया (अज्ञान) ये दोनों जगत के उपादान कारण है यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

माया के जगत उपादान में श्रुति प्रमाण हैं,

जैसे- इन्द्रो मायाभिः पुरूष इक्षते (ऋ. सं. 1/14/18) इति।

जैसे - अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः (श्वे. उ. 4/5) इति।

अज्ञान जगत की सृष्टि में परिणाम व उपादान कारण कहा जाता है। जैसे मिट्टी घट के आकार में परिणत होती है तथा अज्ञान स्थूल प्रपञ्चकार से परिणत होता है।

अज्ञानं च परिणम्युपादानम्। परिणामोहि उपादान समसत्ताककार्यापत्तिः। जैसे कार्य की सत्ता उपादानकारण के समान, वह कार्य उपादानसमसत्तातमकम् कहा जाता है। (वेदान्त दर्शन में तीन सत्ताएं बताई है जैसे- पारमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, प्रातिभाषिक सत्ता।)। कार्य की उपादान समसत्ता का अन्यथाभाव ही परिणाम है। माया की व्यवहारिक सत्ता होती है। और कार्य कारण की सम सत्ता में अन्यथाभाव होता है। प्रपञ्च के अज्ञान उपादानकारणसलक्षण अन्यथाभाव है। और अज्ञान जगत् की सृष्टि में परिणाम-उपादान कारण है यह वेदान्त का तात्पर्य है।

टिप्पणी

20.4 अज्ञानभेदविचार (एकजीववाद-नानाजीववाद के आश्रय से)

वेदान्त शास्त्र में अज्ञान के भेदविचार बहुत प्रकार से विहित हैं। जैसे -

20.4.1 समष्टि व व्यष्टि की बुद्धि से अज्ञान एक व अनेक

यह अज्ञान समष्टि व व्यष्टि की बुद्धि से एक व अनेक ऐसा जाना जाता है। समष्टि बुद्धि अर्थात् बहुत से अवयवों की समूह बुद्धि। जैसे बहुत से वृक्षों का समूह वन।

और उसी समूह के प्रत्येक अवयव की दृष्टि व्यष्टि बुद्धि कहलाती है जैसे- वन में व्यष्टि बुद्धि से वृक्ष यह व्यवहार होता है। अतः एकत्वबुद्धि से समूह व्यवहार होता है।

अतः जीवों में अज्ञान की समूह बुद्धि से अज्ञान एक ही है। इसमें 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' यह प्रमाण है। (जैसे - वृक्षों का समष्टि के अभिप्राय से वन यह एकत्व व्यपदेश है और जैसे जल का समष्टि अभिप्राय से जलाशय यह कहा जाता है, और नानात्व से अनुभूत होने वाले जीव गत अज्ञान का समष्टि अभिप्राय से एकत्व व्यपदेश (वेदान्तसार) इति।) यह अज्ञान उत्कृष्ण परब्रह्म की उपाधि से शुद्धसत्त्वप्रधान कहा जाता है। और समष्टि ज्ञान उपाधि वाला चैतन्य ही ईश्वर व अन्तर्यामी कहा जाता है। ''यः सर्वज्ञः सर्ववित्'' यह श्रुतिप्रमाण है।

हम सभी मनुष्य है यह एकत्व व्यवहार समष्टि अभिप्राय से होता है। किन्तु व्यष्टि अभिप्राय से हममें राम, कृष्ण यह भेद व्यवहार होता है।

अज्ञान अनेक हैं, यहाँ श्रुति प्रमाण जैसे- ''इन्द्रो मायाभिः पुरूष ईक्षते'' (ऋ.सं. 9/47/18) इति। इन्द्र परमेश्वर मायाओं के द्वारा बहु रूपों से प्रकाशित होता है। यह अज्ञान जीव उपाधि से मलिन सत्त्वप्रधान ऐसा व्यवहित होता है।

और समष्टि व व्यष्टि बुद्धि से अज्ञान एक व अनेक हैं। यह वेदान्त सिद्धान्त है। अज्ञान माया-अविद्या इस तरह दो प्रकार से निरूपित होता है।

जैसा कि, पञ्चदशी में कहा है-

तमोरजस्सत्त्वगुणा प्रकृतिः द्विविधा च सा।
सत्त्वशुद्धयविशुद्धिश्यां मायाविद्ये च ते यते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्मर्वइ ईश्वरः।
अविद्यमावशगस्त्वन्यः तध्वैचित्रयादनेकथा।।

टिप्पणी

20.4.2 जीव-ईश्वर की उपाधि की दृष्टि से

अज्ञान माया अविद्या के भेद से दो प्रकार का तीन गुणों के आधार पर विभाग-

शुद्धसत्त्वप्रधान अज्ञान को माया कहते हैं। मलिन सत्त्व प्रधान अज्ञान को अविद्या कहते हैं। यहाँ क्या शुद्ध सत्त्व है? रज व तम से तिरस्कृत नहीं किया गया सत्त्व शुद्धसत्त्व कहलाता है।

रज व तम से अभिभूत सत्त्व मलिनसत्त्व है।

यह भेद अज्ञान के विषय में श्रुति में प्रदर्शित है जैसे-

''जीवेशौ आभासेन करोतिमाया चाविद्या च स्वयमेव भवति। (नृ.उ. 9/3) इति।

शक्ति के भेद से अज्ञान -

अज्ञान -

ज्ञान शक्ति	क्रिया शक्ति
रज व तम से अनभिभूत सत्त्व ज्ञान है। ''सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्'' इस गीता वचन से भी।	सत्त्व से अनभिभूत रज व तम में क्रिया शक्ति।
आवरण शक्ति	**विशेष शक्ति**
रज व सत्त्व से अनभिभूत तम है, (कृष्णः तमः आवरणात्मकत्वात्) इस भाष्य वचन से। 'नास्ति न भासते' यह व्यवहार हेतु है।	तम व सत्त्व से अनभिभूत रज है। (रजसो लोभ एव च) इस गीता वचन से। आकाशादि प्रपञ्च की उत्पत्ति हेतु है। (विक्षेपशक्तिः लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्)
आवरण शक्ति अविद्या	ज्ञान शक्ति प्रधान, विवेक शक्ति प्रधान माया
अविद्या से उपहित जीव है वही प्राज्ञ अपद वाच्यार्थ है।	माया से उपहित चैतन्य ईश्वर है, अन्तर्यामी अपद वाच्यार्थ है।

भगवान् शंकराचार्य ने कहा है- ''अविद्यायाः सामसत्वात्। तामसो हि प्रत्ययः आवरणात्मकत्वाद् अविद्या, विपरीतग्राहकः संशयोपस्थापको वा अग्रहणात्मको वा। विवेकप्रकाशभावे तदभावात्।'' (गीता. 13/2)

जब यही सत्त्व निरतिशयसुख तथा ब्रह्मज्ञान विषय होता है तब बन्धनरूपी सत्त्वगुण मोक्षोपयोगी होता है। इसीलिए भगवती देवात्मशक्ति पुरूष के बन्धन व मोक्ष की प्रयोजिका है।

इसीलिए गीता में भगवान् -

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता 7/14)

माया का आत्मशक्तिस्वरूप दुर्गासप्तशती में भी कहा गया है-

''देव्या यथा ततमिदं जगदात्मशक्तया'' इति।

20.5 जीवाश्रित ब्रह्मविषयिणी माया

भामती पक्ष में भामतीकार के मत के अनुसार माया का आश्रय जीव है न कि ब्रह्म, जीवाश्रित माया ब्रह्म विषय करती है ऐसा मण्डनमिश्र वाचस्पतिमिश्र इत्यादि का मत है।

1) अहमज्ञः ब्रह्म न जानामि इस प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव के अज्ञान आश्रय की प्रतीति होती है। अहमज्ञः यहाँ पर साक्षाद् जीव का अज्ञानाश्रय ज्ञात होता है। यदि वहां पर शुद्धचैतन्य का ही अज्ञान आश्रय हो तो तब सभी को एक साथ यह अनुभव होना चाहिए, परन्तु ऐसा अनुभव नहीं होता है। अहमज्ञः यहाँ पर अहंकारोपहित प्रतीति से देहेन्द्रिय संघात उपाधि युक्त जीव ही प्रतीत होता है, उसी का अज्ञानाश्रम उचित है।

   शुद्ध ब्रह्म में अज्ञान का आश्रय अन्वित नहीं होता है- स्वप्रकाश में शुद्ध ब्रह्म में उसके विपरीत स्वभाव का अज्ञान का आश्रय ही नहीं होता है। अन्धेरा प्रकाश के विरूद्ध स्वभाव के कारण।

2) भगवान् भाष्यकार का वाक्य भी अविद्या जीवान्वित है इस विषय में प्रमाण है। भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक के भाष्य में कहा है- ''सा अविद्या कस्य? यस्य दृश्यते तस्मैव, दृश्यते चेद् अविद्या तद्वन्तमपि पश्यति। न च तद्वति उपलभ्यमाने सा कस्य इति प्रश्नो युक्तः। न हि गोमति उपलभ्यमाने गावः कस्य इति प्रश्नः अर्थवान् भवेत्।'' इति (गीता. 16/2)

ब्रह्मविषयक अविद्या जीवान्वित है न कि ब्रह्म आश्रित। जैसा कि ब्रह्मसिद्ध में कहा है-

''कस्यविद्येति जीवानामिति ब्रूमः।''

भामती में भी कहा है- ''ना विद्या ब्रह्माश्रया किन्तु जीवेसा तु अनिर्वचनीया''।

आक्षेप का समाधान

जीव के अविद्याश्रय में अन्योन्याश्रय दोष होता है यह विवरण अनुयायियों का आक्षेप है, क्योंकि अज्ञान का निमित्त ही जीव विभाग है और जीव विभाग में अज्ञान संज्ञा अन्योन्याश्रय दोष को उत्पन्न करती है। उसका समाधान किया कि, जैसे जीव का वैसे ही अज्ञान का दोनों के ही अनादित्व के कारण अन्योन्याश्रय नहीं है। भामती में कहा

हैं- ''कार्यकारण-अविद्याद् वयाधार: अहंकारास्पदं संसारी सर्वानर्थसंभारभाजनं जीवात्मा इतरेतराध्यासोपादान: तदुपादानश्चाध्यास: इत्यनादित्वात् बीजांकुरवद् नेतरेतराश्रयत्वम्''।

जहाँ पर माया ब्रह्माश्रित है ऐसा श्रुतियों में सुनते हैं ''मायिनं तु महेश्वरम्'' वहाँ पर निमित्त विषय से ब्रह्माश्रय होता है न कि आधार रूप से। जैसा भामती ने कहा है- जीवाधिकरणा अपि अविद्या निमित्ततया विषयतया चेश्वरमाश्रयते इति ईश्वराश्रया इति उच्यते न तु आधारतया''।

वह अविद्या जो जीवान्वित है नाना जीवों में बन्ध मोक्ष की व्यवस्था भी उत्पादित करती है। जिसका अविद्या का आश्रय है वह जीव बन्ध जिसकी अविद्या नष्ट उसको मोक्ष यह संक्षेप में कह सकते हैं।

इस प्रकार से यह भामती सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म विषयक जीवान्तित माया का सिद्धान्त है।

20.6 ब्रह्मविषयक शुद्धब्रह्माश्रित माया

विवरण पक्ष अविद्या जीव व ईश्वर विभाग से रहित शुद्ध ब्रह्म का ही आश्रय लेती है, शुद्ध ब्रह्म को ही विषय बनाती है।

''नन्वविद्या किं सम्बन्धिनी भेदनिमित्तम् ?.....इहापि चित्स्वरूपसम्बन्ध्यज्ञानं तत्र जीवब्रह्मव्यवहारभेदं प्रवर्तयति।
(विवरणवाक्यम्)

शुद्ध ब्रह्म ही यदि अज्ञान का आश्रय हो तो अहमज्ञ: यह अनुभव विरोध होगा, इस अनुभव में अहं पद का वाच्य (अर्थ) जीव ही आश्रय सम्बन्ध से जाना जाता है, यहाँ पर समाधान-

आश्रयत्व विषयत्व भगिनी निर्विभागचितिरेव केरला।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर:।।

अर्थ यह है कि- पूर्वसिद्ध अज्ञान का पश्चात् सिद्ध जीव आश्रय नहीं है, न ही विषय है, जीव विभाग का निमित्त ही अज्ञान है। जीव आत्मा से पूर्व अज्ञान का निराश्रयत्व प्रसंग है।

विवरण अनुयायी माया के ब्रह्म आश्रित विषय में- श्रुतिस्मृतिभाष्यमेव प्रमाणम् ऐसा कहते हैं।

1) मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।

2) मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्

मम माया दुरत्यया (गी. 7/14) इति।

3) अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिः अव्यतम शब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्वरूपप्रतिबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः (ब्र.भा. 1/4/3) इति।

आक्षेप का समाधान

माया के शुद्ध ब्रह्माश्रय के विषय में भास्कार रामानुज तथा अन्यों ने यह प्रश्न उपस्थापित किया–

वह ऐसे कि–ब्रह्मस्वरूप से विपरीत स्वभाव वाली माया स्वप्रकाश ब्रह्म में कैसे आश्रित हुई, अन्धेरे व प्रकाश के समान विरूद्ध स्वभाव वाले ब्रह्म व माया का सम्बन्ध कैसे? शुद्ध ब्रह्म अज्ञानाश्रय कैसे हो सकता है अपने स्वप्रकाश के कारण–

यहाँ पर समाधान जैसे- शुद्ध चैतन्य अज्ञान विरोधी नहीं है, न ही अज्ञान के तिरस्कार का उपयोगी है किन्तु वृत्तिप्रतिबिम्बित चैतन्य ही अज्ञान विरोधी है। वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य ज्ञान का आश्रय नहीं है। और जो अज्ञान का आश्रम शुद्ध ब्रह्म वह भी अज्ञान विरोधी नहीं है, जैसे शुद्ध स्वर्ण हार की उपयोगिता नहीं है वैसे ही शुद्ध निन्मात्र अविद्या की निवृत्ति में उपयोगी नहीं है। कहा भी है अद्वैतसिद्ध में- ''अज्ञानविरोधि ज्ञानं हि न चैतन्यमात्रं किन्तु वृत्तिप्रिबिम्बित तत्व ना विद्याश्रमः, यच्चाविद्याश्रयः तत्व नाज्ञानविरोधि।'' यहाँ पर सिद्धान्त का स्वास्थ्य वार्तिककार सुरेश्वराचार्य उपस्थापित करते हैं- जैसे-

तृणादेर्भासिकाप्येषा सूर्यदीप्तितृणं दहेत्।
सूर्यकान्तमुपारूह्य न्यायोऽमं योज्यतां धिया॥

जैसे-सूर्य का प्रकाश तृणादि का भासक/प्रकाशक तथा सूर्यकान्तमणि सम्बन्ध से तृणादि का नाशक भी है वैसे ही शुद्धचैतन्य अविद्या के कार्यों में स्वतः प्रकाशक, तथा शुद्धचैतन्य वृत्तिप्रतिबिम्बित होकर अविद्यादि का नाशक भी होता है।

शुद्धचैतन्यमात्रं अविद्यासाधकं, तत्प्रकाशकं च भवति
न तु तह बाधकम्।

काँटों से ही काँटों की मुक्ति के समान वेदान्तियों के द्वारा अविवेक पदार्थ ही अविद्या की निवृत्ति वाले माने जाते हैं। इस विषय में सम्प्रदाय प्रसिद्ध दृष्टान्त परशु दृष्टवन्त है–

जैसे वृक्ष को काटने के लिए उसी वृक्ष की लकड़ी को लेकर कुल्हाड़ी के साथ जोड़कर वही वृक्ष काटा जाता है वैसे ही समाधि में जो साक्षात्कारात्मक ब्रह्मविषयक अखण्डकारकवृत्ति है उससे अविद्यानिवृत्ति, उसका भी साक्षात्कारात्मकवृत्ति का अविद्यकत्व के कारण अविद्या के साथ निवृत्ति होती है। यह वेदान्त का मत है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. श्रवणादि का उपदेश किसको लक्षित करके किया जाता है?
2. अज्ञान का नाश किससे होता है?
3. आत्मा हमेशा कौन से स्वरूप वाली होती है?
4. परमात्मा किसकी सहायता से जगत का सृजन करता है?
5. अज्ञान के पर्यायवाची क्या है?
6. जगत के उपादान का कारण क्या है?
7. अज्ञान के तीन गुण क्या हैं?
8. सत् क्या है?
9. असत् क्या है?
10. अद्वैतवेदान्त की दिशा में अभाव का प्रत्यक्ष किससे सिद्ध होता है?
11. अद्वैतवेदान्त में अज्ञान का भावरूप या अभावरूप क्या स्वीकार किया जाता है?
12. ज्ञान विरोधिता क्या है?
13. परिणाम क्या है?
14. अज्ञान एक है या अनेक?
15. शुद्ध सत्त्व क्या है?
16. अज्ञान की दो शक्तियां कौन सी हैं?
17. जीव कौन है?
18. ईश्वर कौन है?
19. भामती के पक्ष में माया का आश्रय कौन है?
20. विवरण के अनुसार माया का आश्रय कौन है?

पाठ का सार

अभी तक यह सिद्ध होता है कि अज्ञान है। वह प्रकाशरूपी आत्मा को, सूर्य प्रदत्त प्रकाश को मेघ के समान आच्छादित करता है। उसके स्वरूप के विषय में

टिप्पणी

विद्वानों में यद्यपि विप्रतिपत्ति होती है तब भी विचार करने पर भावरूपता तथा अभावभिन्नता ही सिद्ध होती है। और उसका लक्षण है- द्वित्रिरूपम्।

अत: लक्षण के द्वारा सम्भावना वशात् वहाँ पर प्रमाणों की खोज होती है। और प्रमाण वहाँ प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम व अर्थावत्ति रूप से चार प्रकार की सद्व्यावृत्ति को सम्पादित करता है। जैसे लक्षण तो साक्षी के द्वारा ही सिद्ध होता है।

और इसका (अज्ञान) आश्रय चैतन्य ही है। और वह भी शुद्धरूप अथवा जीवरूप ऐसा विचार होता है तब भी सभी के मत में चैतन्य ही आश्रयी होता है यह अविवाद है। जीवाश्रित अविद्या इस पक्ष में भी अविद्या कल्पित जीव का आश्रय अविद्या का भी आश्रय नहीं अपितु चैतन्य का ही। अत: सभी का ही परीक्षणों का चैतन्य आश्रितत्व अविद्या का अविरूद्ध है। विषय भी इसका चैतन्य ही है। आवरणरूप विषय का उसके अतिरिक्त असम्भवता के कारण।

और न ही यह सद् से असद् से अथवा सद्सद् से निरूपित हो सकता है। अत: अनिर्वचनीय ऐसा व्यवहार होता है। इसकी अनिर्वचनीयता में चार प्रमाण-प्रत्यक्ष-अनुमान-अर्थापत्ति, आगम रूप हैं। अत: इसकी अनिर्वचनीयता प्रमाणसिद्ध है।

और यह सारे प्रपञ्च का परिणाम मान के द्वारा उपादान है। शुद्ध ईश्वर या चैतन्य की विवर्त उपादानत्व का सम्पादक है। और स्वयं दु:ख जनक होने से दु:ख रूप अनर्थ कहा जाता है। उसकी अनर्थरूप निवृत्ति सम्पादित करनी होती है। और वह निवृत्ति बहुतों के द्वारा बहुत प्रकार की प्रतिपादित की गई है, और उन सब की एकत्र सम्प्रतिपत्ति: है कि इसकी अनर्थ हेतु की निवृत्ति उपपादित होती है और वेदान्तवाक्य जनित तत्वज्ञान साक्षात्कारात्मक ही है।

और तत्वज्ञान से इसकी निवृत्ति होने पर नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव चैतन्य एक रस परिपूर्णानन्द स्वरूप स्वप्रकाश कण्ठगत विस्मृत ज्ञान प्राप्तचामीकर के समान होता है, और उससे मोक्ष सिद्ध होता है।

क्या जाना

1. इस पाठ में अज्ञान का परिचय दिया गया है, इस पाठ को पढ़कर अज्ञान का मुख्य स्वरूप जड़ता है यह ज्ञात हुआ। जड़ता ही अज्ञानता या अनित्यता है।
2. लक्षणों व प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि इस नियम से अज्ञान का लक्षण सद् व असद् से अनिर्वचनीय तीन गुण वाला ज्ञान का विरोधी भावरूप जो कुछ है वह अज्ञान है, यह जाना।
3. सत्त्व, रज व तम ये तीनों अज्ञान के गुण हैं, सत्त्व रज व तम के गुणों में विषमता ही सृष्टि का हेतु तथा जगत का उपादान कारण ही स्वयं अज्ञान होता है, यह जाना।

टिप्पणी

4. सद् रूप से या असद् रूप से अज्ञान क्या है ऐसा निरूपण करने में असमर्थ होने के कारण अज्ञान अनिर्वचनीय है यह छात्र जानता है।
5. अज्ञान के भाव रूप में साक्षी द्वारा जानने के कारण प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। अहमज्ञः यह प्रत्यक्षात्मक अनुभव भावरूप वाला अज्ञान है यह इस पाठ से जाना।
6. अज्ञान की ज्ञान विरोधिता व प्रमाण सहिष्णुता को जाना।
7. जगतः के परिणामी-उपादान का कारण अज्ञान होता है वेदान्त मार्ग में अनादि रूप है यह भी पाठ से जाना।
8. अज्ञान के उपपादन में साक्षी का अनुभव ही परम प्रमाण है यह जाना। सोकर उठे पुरूष का कुछ नहीं जानना यह परामर्श भी अविद्या के उपपादन में प्रमाण है।
9. अज्ञान सम्बन्ध में ब्रह्म जगत सृजन करता है यह ज्ञात हुआ।
10. एक जीव व नाना जीववाद के आश्रय से अज्ञान भेद जाना।
11. भामती मत में अज्ञान के आश्रय जीव विवरण मत में ब्रह्म और दोनों में प्रयुक्त युक्तियां कैसी है यह विचार दृष्टान्त सहित जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. अज्ञान के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. अज्ञान के लक्षण की व्याख्या कीजिए।
3. अज्ञान तीन गुणा वाला है व्याख्या कीजिए।
4. अज्ञान भाव रूप वाला है व्याख्या कीजिए।
5. अज्ञान की ज्ञान विरोधिता की व्याख्या कीजिए।
6. अज्ञान के जगत्कारणत्व की व्याख्या कीजिए।
7. अज्ञान के उपादान में प्रमाण कैसे उपादेय हैं व्याख्या कीजिए।
8. अज्ञान भेद विचार एक जीव बद्धजीव वाद आश्रय से व्याख्या कीजिए।
9. जीवाश्रित ब्रह्मविषयक माया-भामती पक्ष की व्याख्या कीजिए।
10. शुद्धब्रह्म आश्रित ब्रह्मविषयक माया-विवरण पक्ष की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. आत्मज्ञान का उद्देश्य करके श्रवणादि का उपदेश होता है।
2. आत्मज्ञान से अज्ञान का नाश होता है।
3. आत्मा सर्वदा शुद्ध ज्ञान स्वरूप होती है।
4. परमात्मा अविद्या की सहायता से जगत का सृजन करता है।
5. अविद्या, माया, प्रकृतिः, प्रधान स्वभाव, मूलप्रकृतिः, अजा इत्यादि अज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं।
6. अज्ञान जगत का उपादान कारण है।
7. सत्त्व रज तम ये तीन गुण हैं।
8. जो तीनों कालों में किसी से बाधित नहीं होता वह सत् है।
9. जो तीनों कालों में भी प्रतीत नहीं होता वह असत् है।
10. अनुपलब्धि प्रमाण से अभाव का प्रत्यक्ष सिद्ध होता है।
11. भाव रूप ही स्वीकृत है/लिया जाता है।
12. प्रमाणसहिष्णुता ही ज्ञानविरोधिता है।
13. उपादान समसत्ताकार्योत्पत्ति परिणाम है।
14. समष्टि व व्यष्टि भेद से अज्ञान एक व अनेक यह वेदान्त सिद्धान्त है।
15. रज व तम से अतिरस्कृत सत्त्व शुद्धसत्व कहलाता है।
16. आवरण शक्ति व विक्षेप शक्ति।
17. अविद्या उपहित चैतन्य जीव है वही प्राज्ञ है।
18. माया उपहित चैतन्य ईश्वर वही अन्तर्यामी है।
19. जीव।
20. ब्रह्म।

॥ बीसवाँ पाठ समाप्त॥

21

जीव

प्रस्तावना

जिस साधन के द्वारा तत्वों का ज्ञान प्राप्त हो उसे दर्शन कहते हैं। यहाँ तत्व ब्रह्म है। दर्शनशास्त्र में ''ब्रह्मसाक्षात्कार'' ही दर्शन है, ऐसा कहा गया है। जैसे-आत्मा व अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितत्य: ऐसा बृहादारण्यकोपनिषद् में कहा गया है। जिस शास्त्र में ब्रह्म ईश्वर जीव जगत् मोक्ष आदि विषयों का ही आलोचना हो वह दर्शनशास्त्र कहलाता है। इसलिए दर्शन का पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार देखा जाता है- जिससे यथार्थ रूप से अलौकिक अर्थों को जाना जाए वह दर्शन है न कि नेत्रों के द्वारा देखा गया ज्ञान। ब्रह्म ही जीव है दूसरा नहीं। जीव का तत्वनिरूपण के लिए तीन पक्ष बताए हैं। प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद, आभासवाद। प्रतिबिम्बवाद श्रीपद्म-से पादाचार्यनुयायियों का अवच्छेदवाद श्रीवाचस्पतिमिश्रानुयायियों का और आभासवाद सुरेश्वराचार्यानुयायियों का है। उससे अविद्या का कार्य अन्त:करण वहाँ प्रतिबिम्ब जीव का अन्त:करण अवाच्छिन्न और जीव को चैतन्य जीव का आभास कराता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- जीव और ब्रह्म एक कैसे हैं जान पाने में;
- जीव और ईश्वर की पृथक्ता यह जान पाने में;
- जीव के विश्व, तैजस, प्राज्ञ संज्ञा कैसे होती यह जान पाने में;
- जीव विभु और अणु को जान पाने में;

- जीव कर्ता भोक्ता और प्रमाता है यह जान पाने में;
- जीव का कर्तृत्वादि कैसा है यह जान पाने में;
- जीव का जन्म मरण मुख्य विषय है या गौण यह जान पाने में;
- जीव के विषय में प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद और आभासवाद ज्ञात कर पाने में;
- जीव, ईश्वर का क्या संबंध है यह जान पाने में।

21.1 पाठ विस्तार

जीव कौन है ऐसा विचार किया जाता है। यहाँ जीव के स्वरूप विचार में तीन पक्ष होते है, अवच्छेदवाद, आभासवाद और प्रतिबिम्बवाद। सबसे पहले प्रकटार्थकारों के मत में अनादि अनिर्वाच्य भावरूप मूलप्रकृति माया है। उसी ही माया के परिच्छिन्न अनन्त परिच्छेद आवरण विक्षेप शक्तिमान, अविद्या इस पद से बुलाते है, माया की दो शक्तियाँ हैं- विक्षेपशक्ति और आवरणशक्ति, रजस् और तम से अनभिभूत तम आवरण शक्ति है, जैसे अपने अज्ञान से आवृत रस्सी में साँप की सम्भवना, विक्षिप्त विविध सत्स्वरूप विपरीत को प्रपञ्चभाव में आपाद करना यह विपेक्षशक्ति है। जैसे अज्ञान के द्वारा आच्छादित चैतन्य विविध रूप से प्रदर्शन ही विपेक्ष है। माया की जो शक्ति ब्रह्म चैतन्य का आवरण करता है अर्थात् ब्रह्म नहीं है ब्रह्म प्रकाश स्वरूप नहीं है, जहाँ ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है वह आवरण शक्ति है। शुद्धब्रह्म जगत् का कर्ता सृष्टा ऐसी बुद्धि उत्पन्न करने वाली शक्ति विपेक्ष शक्ति है। माया और विद्या में भेद नहीं है। वहाँ माया का शुद्ध चैतन्य सम्बन्धी शुद्धचित्त प्रतिबिम्ब ईश्वर है। माया प्रदेशों में परिछिन्न आविद्यादि पद से प्रतिपादित शुद्ध चित्तप्रतिबिम्ब जीव है। माया आदिरूप से अनित्य है। अत: हम उसके बाह्य नहीं कर सकते हैं। उस माया की तो आवरणविक्षेपरूप से दो शक्तियां हैं, अनन्त है। उसकी शक्ति से समन्वित परिच्छिन्न विभाग प्रदेश है। मायाविद्या के विषय में किन्हीं का मत मायारूप और अविद्यारूपी मूलप्रकृति होती है।

सत्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण है। रजस्तमस् से अनभिभूत शुद्धसाधुत्वसत्व प्रधान माया तद अभिभूतसत्वप्रधान अविद्या है। आवरण शक्ति और विपेक्ष शक्ति तो दोनों तरफ समान हैं। वहाँ माया का चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर है, और अविद्या का चित्प्रतिबिम्ब जीव है, माया कहने पर कामधेनु-वत्स जीवेश्वर दोनों है। समष्टिविषयभेद से अज्ञान दो प्रकार का है। व्यष्टि रूप अज्ञान निकृष्टोपाधि से मलिन सत्व प्रधान होती है, ऐसा व्यष्टि रूप ज्ञान से उपहित चैतन्य जीव है। मलिनसत्व प्रधान से जीव को अल्पज्ञ, अनीश्वर प्राज्ञ कहा जाता है। व्यष्टि रूपी उपाधि मलिनसत्व प्रधान तथा एक अज्ञान के अवभासक जीव है अत: वह प्राज्ञपदवाच्य है। प्राय: वह अज्ञ प्राज्ञ और अल्पज्ञ है। प्रकर्ष रूप से अज्ञ नितान्त अज्ञ ईश्वर की उपेक्षा से ही यही प्राज्ञ है। विश्व तेज अपेक्षा से जो प्रकृष्ट जानता है वही प्राज्ञ प्रकृष्ट ज्ञाता है। अथवा आत्मस्वरूप प्राप्ति

प्रज्ञा है वह प्रज्ञा जिसकी है वह प्राज्ञ है। जीव प्राज्ञ आदि के भेद से तीन प्रकार का है, जाग्रतअवस्थाभिमानी जीव विश्व स्वप्नावस्थाभिमानी जीव तेजस और युषुच्यवस्थाभिमानी जीव प्राज्ञ है। जागृत अवस्था में स्थूल सूक्ष्म कारण तीन प्रकार के शरीर को जीव की उपाधि होती है। उप समीपवर्ती पदार्थ में अपना धर्म स्वीकार करता है यह उपाधि है। स्वप्नावस्था में स्थूल शरीर नहीं रहता, सूक्ष्म अपञ्चीकृत कारण शरीर उस दशा में रहता है। सोते हुए अविद्यारूप कारण शरीर विद्यमान रहता है। सुषुप्ति दशा ही जीव के परम विश्राम का स्थान है। सभी देहादि व्यापार से निवृत्त हुआ जीव स्वात्मप्राप्ति होता है। सुषुप्ति को छोड़कर अन्य जगत जागृतस्वपनावस्था में जीव की स्वात्मप्राप्ति होती है। आत्मा में विश्राम ब्रह्मविद्वानों के द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। साधारणतया पाँच भूतों से निर्मित और मनोबुद्धि से समन्वित स्थूलसूक्ष्म शरीर में आत्मबुद्धि ही जीवभाव है। आत्मा और जीव मान से शरीर में होता है। जैसे पशु रस्सी से बंधा हुआ होने पर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाये जाते हैं, वैसे ही जीव भी वासना से बंधा होने पर शरीर से शरीर को पाते हैं, पक्षी के समान देहरूपी पिञ्जरे में रहते हैं।

21.2 प्रतिबिम्बवाद

विवरणकारमतानुयायी तो जीव के विचार में प्रतिबिम्बवाद को स्वीकार करते हैं, यहाँ विवरणकार कहते हैं- स्वतन्त्रादि गुणस्वरूप ईश्वर चैतन्य को बिम्ब स्थानीय परतन्त्रादि गुणों से विशिष्ट अविद्या में चिदाभास जीव है। अर्थात् ईश्वर बिम्बरूप है और जीव प्रतिबिम्बरूप है, यही प्रतिबिम्बवाद है।

संक्षेप शरीर में तो कार्योपाधि जीव है और कारणोपाधि ईश्वर है ऐसा श्रुति में है, अविद्या में चित्तप्रतिबिम्ब ईश्वर है, अविद्या के कार्य अन्त:करण में चित्प्रतिबिम्ब जीव है। एक उपाधि में कार्यकारण को अपन्न में कारण में प्रतिबिम्ब ईश्वर कार्य में प्रतिबिम्ब जीव है, और इन्हीं पक्षों में बिम्ब स्थानीय शुद्धचैतन्य में त्रिविध चैतन्य को बोलते हैं शुद्ध ईश्वर और जीव।

पञ्चदशी चित्रदीप में श्रीविद्यारण्य स्वामी द्वारा विशेष कहा गया है, शुद्ध ईश्वर और जीव इन तीन को छोड़कर चार प्रकार के बताये हैं। चैतन्य का जैसे एक ही आकाश के घटाकाश जलाकाश मेघाकाश और महाकाश ये चार भेद हैं, उसी प्रकार एक ही शुद्धचैतन्य का कूटस्थ के जीव चैतन्य ईश्वर चैतन्य शुद्ध चैतन्य ये चार भेद हैं।

घट से अवच्छिन्न आकाश घटाकाश है, घटाश्रित जल में प्रतिबिम्बत साभ्र नक्षत्र जलाकाश है। अनवछिन्न आकाश जलाकाश है। महाकारावर्तित मेघमण्डल में स्थित जल में तुषार आकार में वृष्टि के कार्यानुमय जल में प्रतिबिम्बित आकाश मेघाकाश है। उसी प्रकार स्थूलसूक्ष्म देह से अवच्छिन्न चैतन्य घटाकाश स्थानीय कूटस्थ निर्विकार है। वहाँ स्थूलदेह के अधिष्ठान भूत देहद्वय अवच्छिन्न कूटस्थ कल्पित अन्त:करण में प्रतिबिम्बित चैतन्य जलाकाश स्थानीय संसारी जीव है। अनच्छिन्न चैतन्य शुद्ध महाकाश स्थानीय है। अवच्छिन्न

शुद्ध चैतन्य में स्थित माया है। वहाँ माया में स्थित जो सभी प्राणियों को धी वासना है, उनमें प्रतिबिम्बत चैतन्य मेघाकाशस्थनीय ईश्वर चैतन्य के चार प्रकार हैं। और जीव का प्रतिबिम्बित पक्ष दर्शित है।

21.3 अवच्छेदवाद

श्रीवाचस्पति मिश्र के अनुयायी प्रतिबिम्बवाद अपना अवच्छेदवाद को प्रतिपादित करते हैं, तथा अन्त:करण अवच्छिन्न जीव है। यह कार्योपाधि जीव कारणोपाधिईश्वर है। जिस पदार्थ का रूप नहीं होता उसका प्रतिबिम्ब कैसे सम्भव होगा। चैतन्य रूपरहित का प्रतिबिम्ब नहीं होता। रूपवत् रूपवती ही प्रतिबिम्ब दिखती है। लोक में रूपवत ही चंद्रादी के रूपवती जलादि में प्रतिबिम्ब दिखता है। रूप रहित वायु थोड़ी भी नहीं दिखती, जल अवयव का आकाश के जलादि में प्रतिबिम्बदर्शन भ्रम से ही होता है। वहाँ सूर्यादि प्रकाश का ही प्रतिबिम्ब से आकाश प्रतिबिम्ब तन्निमित्त भ्रम ही है।

जैसे बाहर नीला आकाश ग्रह नक्षत्र मुक्त विशाल नभ को आकाश कहते हैं, ऐसा ही सरोवरादिजल में समान अनुभव लोक में सम्प्रति दिखता है। अतएव जल में अगाधत्वप्रीति रूपवत् में नहीं होती ऐसा प्रतिबिम्ब का नियम देख जाता है। रूपरहित का भी प्रतिबिम्ब दर्शन से ही अनुभव हो सकता है।

द्रव्य रूपवत् नहीं होता ऐसा नियम है, अद्वैत सिद्धान्त में न्याय सम्मत गुणद्रव्यत्व परिभाषा का निष्प्रमाणत्व अङ्गीकार से सिद्ध नहीं है। शुद्धचैतन्य निर्गुण निष्क्रिय कदाचिदापि द्रव्य नहीं होता। अत: आकाश प्रतिबिम्ब में बाधकाभावात् तद्वद्चैतन्य का भी अन्त: करणादि प्रतिबिम्ब सम्भव मे बाधक नहीं है। रूपवती भी प्रतिबिम्ब ही नहीं है। जल रूप में घी में जलरूप के वर्ण का प्रतिबिम्ब दर्शन से चैतन्य का नोरूप के अन्त: करणादि में प्रतिबिम्ब पक्ष में थोड़ा भी बाधक नहीं होता। यहाँ कहा जाता है-कि अन्धकार में जलादि में साभ्र नक्षत्र आदि में आकाश के प्रकाश के बिना प्रतिबिम्ब नहीं मिलते वहाँ प्रकाशप्रतिबिम्ब से ही अभ्र नक्षत्रादि प्रतिबिम्ब की उपलब्धि के आकाश प्रतिबिम्ब की कल्पानुपत्ति से है। अत: जल में आकाश की अवच्छेदकता ही है नहीं तो और प्रतिबिम्ब प्रकाश का प्रतिबिम्ब अवच्छेदक ही मानना चाहिए। किञ्च आलोक प्रतिबिम्ब गमन में प्रतिबिम्ब है और जलादि में दो प्रतिबिम्ब की कल्पना गौरव ग्रस्त है।

जल में अगाधत्व की प्रतीति है यह गगनगत प्रतीयमान प्रतिबिम्ब से ही उत्पन्न होती है। न धर्मिप्रतिबिम्ब के बिना धर्मप्रतिबिम्ब नहीं होता है। ऐसा वक्तव्य स्फटिक में जपाकुसुमधर्मियों आरूण्य के प्रतिबिम्ब दर्शन से है। सूर्यमण्डलादि के प्रतिबिम्बाभाव में भी तद्गत प्रकाशादि धर्म का प्रतिबिम्ब दर्शन से होता है।

न ही ध्वनि में नोरूप में नौ रूप के वर्ण का प्रतिबिम्ब निदर्शन भी युक्त है। वर्ण व्यञ्जक ध्वनि के सन्निहित होने से तद्गत उदात्तदिधर्मो के आरोप से एक ही उपपत्ति

होती है। न ही ध्वनि में वर्णप्रतिबिम्ब भी तो व्यञ्जकता से सन्निहित का धर्मध्वनियों का वर्णों में समान आरोप सम्मत है।

न ही प्रतिध्वनि पूर्वशब्द प्रतिबिम्ब जैसे वर्णात्मक शब्द व्यक्त का भेरामृढङ्गादि शब्द अव्यक्त के यह आकाश भावनादि में कुएँ आदि की प्रतिध्वनि सुनी जाती है वह पूर्व की सञ्जात शब्द का प्रतिबिम्ब है। प्रतिध्वनि का प्रतिबिम्ब होता है यहाँ प्रमाण नहीं है तो यह प्रतिध्वनि कौन है? कहा जाता है–

पञ्चीकरण प्रक्रिया द्वारा वायुप्रभृतियों को भी शब्द प्रसिद्ध है। पटद्रपयोनिधि जलादिशब्द से पृथिवी जलादि के स्व शब्द है। तो कौन आकाश का शब्द है? प्रतिध्वनि ऐसा ही यहाँ उत्तर है। पृथिव्यादि जन्य शब्दों की यह प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द से प्रसिद्ध है। उसका प्रतिध्वनिरूप आकाश शब्द का अन्य शब्द प्रतिबिम्बत्व अप्रमाणिक है। यदि कोई अन्य शब्द आकाश का हो तब वह प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि होती है। अन्यगत शब्द की ही यह प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द है।

उस आकाश शब्द के प्रतिध्वनिरूप का और आकाश का उपादानत्व परद्रपयोनिधि शब्द का निमित्तत्व है। आकाश में प्रतिध्वनि के उत्पत्ति में थोड़ा भी बाधक नहीं है।

यदि आकाश शब्द की प्रतिध्वनि हो किन्तु उसके बिम्ब रूप में होने पर क्या क्षति? ध्वनि को प्रतिगत प्रतिध्वनि कहा जाता है। पहले ध्वनि को जानकर ही उसके प्रतिबिम्बरूप प्रतिबिम्ब आकाश में हो तो क्या क्षति? बिम्बप्रतिबिम्ब के भेद पक्ष में आकाश में प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न चन्द्रादि प्रतिबिम्बवत् प्रातिभासिक बोला जाता है। और आकाश के शब्द गुणत्व को न हो ना ही जल के चन्द्रादि प्रतिबिम्ब गुणों को कुछ ही मानते हैं। यदि बिम्बप्रतिबिम्ब के अभेदपक्ष को भी आकाश के शब्दगुणत्व की अनापत्ति है। प्रतिबिम्ब की प्रतिध्वनि से बिम्बाभिन्नतया और बिम्ब के पटदपयोनिधि गुण से है, न ही पटदादिगत शब्द आकाश के गुण होना चाहते है।

प्रतिध्वनि भिन्न कोई आकाश उपादानक शब्द है या नहीं ऐसा यहाँ उत्तर है। आकाश का यदि उपादान स्वीकार किया जाता है तो सहकारिकारण का अभाव होता है। यदि भेर्यादि हि सहकारिसाधन के द्वारा आकाश उपादानक कोई प्रतिध्वनि भिन्न शब्द होता है ऐसा माना जाता है। तब प्रतिध्वनि की विलापोत्पत्ति होती है। अतः यह पक्ष युक्त नहीं होता है।

प्रतिध्वनि से अतिरिक्त आकाश देशस्थ शब्द का अनुभव नहीं होता है। वह अनुसूयमान शब्द आकाश से ही र्निमित्तक नित्य होता है। उससे प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द युक्त है, वह प्रतिबिम्ब रूप नहीं है। वर्णात्मक प्रतिध्वनि के अवश्य ही प्रतिबिम्ब है ऐसा कहा जाता है। उस प्रतिध्वनि के आकाशादि में उत्पादक के अभाव से, तथा आकाशादियों के वर्णों के अभिव्यञ्जक कण्ठतालु आदि घात जन्य मूल ध्वनि ही है, न ही कण्ठतालादि। और मूलध्वनि का जैसे वर्णाभिव्यञजक उसी प्रकार से जययान प्रतिध्वनि ही वर्णप्रतिध्वनि अभिव्यञ्जक अभिमत है। आकाशादि में जो वर्ण प्रतिध्वनि उसके मूलध्वनि जन्यप्रतिध्वनि

टिप्पणी

ही अभिव्यञजक है, न ही पुन: उसके कण्ठताल्वादि अभिघात आवश्यकता है। न कभी भी अरूपवत अरूपवती प्रतिबिम्बसम्भव देखते हैं, अरूपवत् अरूपवती इनका अचाक्षुष का अचाक्षुष में है। अत: अन्त:करण से अविच्छन्न का चैतन्य का जीवत्व है।

जैसे जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब वैसे है कृत्सन के चैतन्य अन्त:करण में प्रतिबिम्ब सम्भव है, जैसे जल से बाहर स्थिति आकाश के जल में प्रतिबिम्ब उसी प्रकार जल में स्थित का भी इसी प्रकार अन्त:करण में प्रतिबिम्ब बिम्बभूत चैतन्य का अन्त:करण ही और बिम्बभूत का चैतन्य ईश्वर का अन्त:करण में प्रवेश के अभाव से होता है। ना ही अन्त:करण अवच्छेद के पक्ष में अन्त:करण का विभिन्न प्रदेश में शरीर के साथ जाते हुए उस अवच्छिन चैतन्य का भी भेद कहा है। जैसे घट का नथनों से तत् प्रदेश आकाश ही अवच्छेद् है। इसी प्रकार से कही अन्त:करणावच्छिन्न का कर्तृत्व और जगह थी उसके भोक्तृत्व आदि हानि का न किया गया अभ्यागम प्रसंग है। प्रतिबिम्ब पक्ष में यह दोष नहीं है, अन्त:करण के साथ उस प्रतिबिम्ब का भी गमनादि युक्त से घटगत जलगत प्रतिबिम्बिवत् है। प्रतिबिम्बपक्ष में भी कहे गये दोष का प्रसंग है। जल घट में नीयमान पूर्वप्रदेश का ही आकाश के प्रतिबिम्ब वहाँ भी यहाँ स्थित जल घट व उस प्रदेश का ही प्रतिबिम्ब है, और बिम्ब भेद से प्रतिबिम्ब का भी भेद उक्त है। उसी प्रकार से अन्त:करण प्रतिबिम्ब का नाना निम्न भेद से भेद जल में दिखता है। अन्त:करण प्रतिबिम्ब जीव इस पक्ष में नाम होना चाहिए, उक्त दोष की तुलना अविद्याप्रतिबिम्ब जीव इस जीव पक्ष में यह दोष नहीं है। अविद्या में चित्प्रतिबिम्ब जीव है, अन्त:करण तो उसके व्यापक जीव की विशेषाभिव्याप्ति हेतु है, जैसे जलाशय के ऊपर गमनशील लोक विशेष से अभिव्यक्ति के लिये उस प्रकार अविद्याप्रतिबिम्ब की विशेष अभिव्यक्ति हेतु अन्त:करण है। तथा एक का ही अविद्या प्रतिबिम्ब का जीव के वहाँ या अन्यत्र कर्तृत्वमोकृत्व आदि विशेष अभिव्यक्ति के लिए अन्त:करण है न ही कृतहानिकृत का अभ्यगमदोष, अवच्छेदवाद में भी हो सकता है।

21.4 आभासवाद

कुछ वेदान्तिक आभासवाद को स्वीकार करते है, इस मत में आत्मा सत्य है, आत्मा भिन्न नहीं होती है, बस थोड़ा अन्तर है। अत: आत्मा न अन्तर्यामी है न साक्षी और न जगत्कारण है। तथापि अज्ञान रूप के द्वारा उपाधि से युक्त है, युक्त होने पर आत्मा अज्ञान के साथ वादात्म्यापन्न होती है। और अज्ञान में सम्पृक्त चित् के आभासकारण से इसे अन्तर्यामी, साक्षी या ईश्वर कहा जाता है। बुद्धि उपहित होने पर बुद्धिगत अपना चित्त आभास को न जानकर जीव कर्ता भोक्ता और प्रगाता होता है।

21.5 जीव का कर्तृत्वादि जन्ममरण विचार

इस जीव में कर्म द्वारा कर्तृत्व दु:खसुख का भोगना सम्भव होता है। जागृत, स्वप्न और

सुषुप्ति इन तीनों अवस्था में जीव रहता है, स्थूल सूक्ष्मकारण शरीर में अभिमानी जीव क्रमशः विश्व, तैजस और प्रज्ञ संज्ञा प्राप्त करता है। अविद्या द्वारा वशीभूत जीव देहेन्द्रियों के साथ उनके अधिगम्य के साथ शारीरिक ऐन्द्रिय और मानसिक दुःखों का भोक्ता होता है। अविद्या के अपगम से ब्रह्मसाक्षात्कार होने से स्वस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। आनन्दात्मक ब्रह्मस्वरूप का अनुभव ही जीव का मोक्ष है। जीव के जन्ममरण में मृत्यु है इस सन्देह में जन्म एवं मरण यह अद्वैतवेदान्त का सिद्धान्त है, मेरा पुत्र हो तथा जातकर्मादि से ही जन्ममरण में आत्मा जीती है यह संशय होता है। सुषुप्ति मूर्च्छा समाधि में चैतन्य के अभाव से जीव चिद्रूप है। जागरण में आत्मा के संयोग से चैतन्यमुख्यगुण आत्मा में होता है, तो कैसे चैतन्य का सुषुप्ति आदि में लुप्त होता है, तब कहते हैं कि सुषुप्ति में शरीर नहीं लुप्त होता है। उस साक्षिरूप से होता है, अन्यथा 'मै सोता हूँ' ऐसा सुषुप्ति आदि परामर्श न हो, तो कैसे सुषुप्तादि में द्वैताप्रतीति होती है? वहाँ कहते हैं, द्वैत के लोप से द्वैतादृष्टि होती है, ना कि दृष्टि लोप, कैसे हम यह जानें? तब कहा जाता है कि अन्यथा लोपवादी भी निःसाक्षि के लोप में बोलने की शंका से। तो क्या प्रमाण है, कि द्रष्टु दृष्टिलोप अर्थात् ज्ञान लोप नहीं होता है, ''नाहि द्रष्टु'' ऐसा श्रुति में कहा गया है।

21.6 जीव का परिमाण विचार

''यह जीव न अणु है, न मध्यम परिमाण है किन्तु विभु है'' जीव अणु उपाधि के द्वारा होता है। इस समय जीव की क्या परिभाषा है ऐसा विचार होने पर अणु परिमाण से ऊपर मध्यम परिमाण और महा परिणाम, आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती है यह नित्य चैतन्य है। अतः आत्मा ही जीव पर आती या गिरती है। आगे कहाँ से जीव का परिमाण है यह चिन्ता अवतार, कहा जाता है जीव परिच्छेद को प्राप्त करता है। स्वशब्द से कही अणु परिमाण ग्रहण किया जाता है। ऊपर कहे बुद्धरूप जीव उपाधि संयोग का होना सम्भव है। जब तक यह संसारी होता है इसके सम्यक् अदर्शन से सांसारित नहीं होता है तब तक इसका बुद्धि से संयोग नहीं होता, जब तक यह बुद्धिरूप उपाधि सम्बन्ध है तब तक जीव संसारी जीव का जीवत्व होता है। बुद्धि कर्ता या जीव कर्ता इसे एक ही जानना चाहिये। उस गुणसार वचन से ब्रह्मसूत्र में तद्गुणसारत्वाधिकरण ही अपर भी जीवधर्म प्रपञ्चित होता है। कर्ता भी यह जीव होता है। यह सब शास्त्रार्थ वचन के संगत में होता है। और यही यज्ञ करें, खाए तथा दान करें इस प्रकार से विधि शास्त्र अर्थवत् होता है। अन्यथा यह अनर्थक होता है, इसलिये कर्ता सत्कार्य का उपदेश करता है, कर्ता के अभाव में यह उत्पन्न नहीं होता है। और जीव का यह कर्तभाव उपाधिनिमित्त होता है। कर्तृरूपी जीव धर्म जीव में आरोपित होता है, यह यथार्थ नहीं बल्कि असंग आत्मा है।

जैसे वृक्ष से वाष्पादि हाथ में स्वीकार कर कर्ता दु:खी होता है, और अपने गृह को प्राप्त वियुक्त वाष्पादि कारक स्वस्थ निवृत्त निर्धापार सुखी होता है, अत: जीव का कर्तृत्व अविद्या रूपी उपाधि से निवृत्त नहीं है। यह जीव का कर्तृत्व ईश्वर के अधीन है, जीव ईश्वर द्वारा चलाने पर शुभाशुभ कर्मों का पालन करता है, और जीव का अणुत्वविभुत्व कर्तृत्वादि संक्षेप से प्रतिपादित है।

21.7 जीव का एकत्व नानात्व विचार

21.7.1 एकजीववाद

जीव का नानात्व और एकत्व के दो पक्ष है। इसी का एकजीववाद ओर अनेक जीववाद कहा जाता है। आशय यह है कि जीव परमेश्वर का साधारण चैतन्यमात्र बिम्ब है। उसके ही बिम्ब का अविद्यात्मिका में माया का प्रतिबिम्ब है। अन्त:करणों में प्रतिबिम्ब जीव चैतन्य है, यह जीव कार्योपाधि है और ईश्वर कारणोपाधि है। कोई कहते हैं कुछ ही अवच्छेदपक्ष है और न प्रतिबिम्बपक्ष, अखण्ड के एक का नित्य जीव के अवच्छेद के असम्भवात् से यह अरूप का प्रतिबिम्ब है। ब्रह्म ही अपनी अविद्या से विद्या को संसारित्व मोचित करता है। ब्रह्म एक ही अद्वितीय है। अन्य तो इस पक्ष में बद्धयुक्त अवस्था जीवेसर को विभागादि व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं, वे स्वप्न दृष्टान्त को भी संगत नहीं मानते है। उनके मत में तो जगत् की तुल्यता कल्प से अकस्मात् ही जगत् स्वप्नवत् लुप्त होता है। विद्या का उपदेश भी अनर्थक माना जाता है।

जीव हिरण्यगर्भ ब्रह्म का मुख्य प्रतिबिम्ब है, अन्य जीव तो उस मुख्य जीव के कारण उपाधि के प्रतिबिम्बभूत हैं। इस मत में तो बिम्बभूत चैतन्य ईश्वर उसका हिरण्यगर्भ प्रतिबिम्बभूत एक जीव है, पूर्व मतानुसार तो एक जीव किस शरीर में है यह विनिगमन एकतरपक्षपातिनी युक्ति उसका अभाव है।

अन्य मतों में हिरण्यगर्भ के प्रतिकल्प भेद से किसका हिरण्यगर्भ मुख्य जीव है ऐसी विनिगमना है, सूत्रादि के द्वारा विरोध अन्यथा भी परिहार कर सकते हैं। अत: एक ही जीव अविशेष रूप से सभी शरीर में उपस्थित है, अज्ञान एक है अत: उसमें ब्रह्मपतिबिम्ब रूप एक जीव है। उन जीवों का मुख्य तथा अमुख्य ऐसा विभाग नहीं है, वहाँ परस्पर दु:खादि स्मरण तो नहीं होता है। जन्मान्तर में अनुभूत सुखादि का स्मरण वैसा नहीं होता है, जैसा यहां भी शरीर भेद से स्मृति नहीं होती है, शरीर भेद ही यहाँ प्रतिबन्धक है, यहाँ योगियों का काय व्यूहादि द्वारा सुखादि अनुभव कैसे हो ऐसा नहीं कहा है। यह अनुसन्धान योगप्रभाव से सम्भव होता है इस मत में भिन्न भिन्न शरीर है पर जीव एक ही है।

इस प्रकार एकजीव विवाद में तीन मत प्रदर्शित है।

टिप्पणी

21.7.2 अनेकजीववाद

जीव बहुत हैं। एकजीववादपक्ष में स्वीकृत दोष श्रुतिस्मृतिसूत्रों के विरोध से होता है, कारण है कि इससे बंधमुक्त अवस्था में अव्यवस्था होती है। श्रुतिसूत्र में या अन्यत्र बद्धमुक्त व्यवस्था स्वीकार की जाती है। अधिकरण में बंधमुक्त व्यवस्था भाष्कार शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित की गयी है। अत: अन्त: करण आदि का जीव की उपाधि रूप से ग्रहण करके अनेकजीववाद को आश्रय मानकर बद्धमुक्त व्यवस्था प्रतिपादित की जाती है।

सूत्र भाष्य में जीव ही चेतन का शरीराध्यक्ष प्राणों का धर्ता ऐसा प्रसिद्ध वचन शंकरभगवत्पाद के मत में हैं। जीव की न तो उत्पत्ति और न ही विलय है। जैसे मंत्रक कारिका में लिखा है–

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बंधों न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

जीव परमात्मा का अंश नहीं होता है। संसार के सभी भूत इसके पाद है, ऐसा छंदोग्योपनिषद् में बोला है। अंशत्व भी जीव की अभेदवादी ऐसा अन्य श्रुतियाँ प्रतिपादित करती हैं जैसे इस देह में यह जीवात्मा मेरा अंश है ऐसा भगवद्गीता में है। यहाँ थोड़ा संशय है जैसे जीव का ईश्वर का अंश होने से जीव द्वारा संसार में भोगा गया सुख दु:ख ईश्वर को भी होता है। यह एक समाधान है– सूर्य के प्रतिबिम्ब में कांपने से भी सूर्य नहीं काँपता है। उसी प्रकार से जीव के दु:ख से ईश्वर का कोई प्रसंग नहीं है। उसी प्रकार आत्मा के एकरूपता पक्ष में सर्व दोषभाव सिद्ध है। जीव का न ही अणु परिमाण है न ही मध्यम् परिणाम, जीव तो महापरिमाण विभु है। जैसे जीव का क्या परिमाण है ऐसा चिंतन किया जाता है कि अनुपरिमाण से ऊपर मध्यम परिमाण और क्या है महापरिमाण ऐसा प्रश्न होने पर परम् ही ब्रह्म जीव है उस तक परम ब्रह्म उन जैसे ही जीव होना चाहते हैं। परम ब्रह्म का विभुत्व सर्वत्र है वही विभु जीव है और जीव का प्रज्ञत्व, तैजसत्व, हिरण्यगर्भत्व–जैसे

प्राज्ञस्तत्राभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते।
हिरण्यगर्भतामीश स्तयोर्व्यष्टि समष्टिता॥

जीव स्वयं प्रकाश है। स्वप्नवस्था को अधिकृत्य यहाँ तक पुरूष स्वयं ज्योति है ऐसा बृहदारण्यक उपनिषद में कहा है। मैं भी बनूँगा ऐसा व्यवहार वृत्ती से प्रतिबिम्बत चैतन्य को लेकर उत्पन्न होता है। एकजीववाद में अविद्या प्रतिबिम्ब जीव अनेक जीववाद में अन्त:करण प्रतिबिम्ब जीव होता है। भामती का अनुसरण करते हुए अद्वैत अविद्या का आश्रय जीव और अविद्या का विषय ब्रह्म को ही मानते हैं।

जीवेश्वर का संबंध ऐसा विचार वेदान्त में देखा जाता है। जीवेश्वर न तो स्वामी–दास की तरह न ही आग–पानी की तरह संबंध स्थापित करते हैं। ईश्वर तो निरवयव है

इन दोनों मैं वस्तुतः अभेद संबंध है। दोनों का भेद उपादि के द्वारा ही परिलक्षित होता है। जीव और ब्रह्म का ऐक्य पारमार्थिक तत्व है। ईश्वर का अंश जीव है ऐसा संशय उत्पन्न होता है। यद्यपि स्वामी दास ही शीतऋषितव्यभाव काल में प्रसिद्ध है तथापि शास्त्र तो अंशत्व निश्चित है। निरतिशयोपाधि सम्पन्न ईश्वर निहिनोपाधि सम्पन्न से जीवों का प्रशस्ति है। थोड़ा प्रतिषेधित है, यहाँ निरवयव ब्रह्म का अंश जीव नहीं लगता ऐसा बहुत बार भाष्य में कहा है।

जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। ईश्वर तो जीव के किए प्रयत्न धर्माधर्मलक्षण आदि के लिए प्रेरित करता है। जिसे वैशमीनैरघन्यदि दोष ईश्वर में प्रसारित नहीं होते हैं। जैसे अविद्या अवस्था में उपाधि निमित्त कार्य यह जीव का अभिमत है।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. जीव कौन है?
2. प्रज्ञा कौन है?
3. तैजस कौन है?
4. जीव विभु है या अणु?
5. जीव नित्य है या अनित्य?
6. जीव ब्रह्म ऐक्य हैं या अनैक्य?
7. जीव की क्या उपाधि है?
8. किसका आभासवाद है?
9. प्रतिबिम्बवाद किसका है?
10. अवच्छेदवाद किसका है?
11. क्या जीव का कर्तृत्व स्वतंत्र है?
12. विश्व क्या है?
13. अविद्या की कितनी शक्तियां हैं? और वे कौन सी हैं?
14. भामती के मत में अविद्या का आश्रय कौन है?
15. विवरन्त के मत में अविद्या का आश्रय कौन है?
16. जीव और ईश्वर का क्या संबंध है?
17. जीव परमात्मा का कौन सा अंश है?

पाठसार

अविद्या का संसक्त अविद्या रूपी उपाधि के साथ ब्रह्म के विशुद्ध चैतन्य को ही जीव कहा जाता है। प्रत्येक जीव के अन्त:करण में एक उपाधि होती है। अत: जीव को परिच्छिन्न अल्पज्ञ माना जाता है। संस्कार से अवच्छिन्न अज्ञान प्रतिबिम्बत चैतन्य जीव है। अन्त: करण में ब्रह्म प्रतिबिम्ब ही जीव है। जीव के स्वरूप के विषय में अवच्छेदवादी तीन पक्ष हैं-

वाचस्पतरेवच्छिन्न आभासो वार्तिकस्य च।
संक्षेपशारीरककृत: प्रतिबिम्बं तथेष्यते।।

वर्तिककार सुरेश्वरचार्य, संक्षेप शरीरकार सर्वज्ञात्ममुनि। वहाँ अवच्छेद में अन्त: प्रवेश है। उनसे युक्त अवच्छिन्न है। जैसे जल में अन्त: प्रविष्ट आकाश को जलावच्छिन्न कहा जाता है। और आज्ञानाश्रयीभूत शुद्ध चैतन्य को जीव कहते हैं। जिनके मत में अविद्या के द्वारा संयुक्त चैतन्य जीव या अवच्छिन्न या उपहित या प्रतिबिम्बित है उनके मत में जीवस्था में जीव एक ही है। कारण है कि यहाँ अविद्या एक ही है उनके स्वीकार में। यह एक जीववाद भामाती के मत में है। बहुत प्रकार से अविद्या या अविद्यय कार्य बुद्धि द्वारा संयुक्त चैतन्य को जीव और वह जीव अवच्छिन्न या उपहित या प्रतिबिम्बित होता है ऐसा जाना जाता है उनके मत में जीव अनेक प्रकार के हैं। वर्तिककार सुरेश्वर पञ्चपदीविवरणका प्रकाशात्मा संक्षेपशरीरिककारसर्वज्ञात्मा प्रकटार्थ एवं विवरणकार भी जीव के अनेक प्रकार मानते हैं।

अद्वैतवेदान्त के मत में हमेशा नित्यचैतन्य स्वरूप है। स्वरूपत: जीव के ब्रह्मत्व में भी बद्धदशा में अविद्या द्वारा उठे हुए अन्त: करण के परिमाण गुण से अणुत्वादी परिमाण होता है। कर्ता भोक्ता इसी के द्वारा होता है। परमेश्वर के कल्पित अंश रूप के द्वारा जैसे कि अंगीकृत जीव अत: जीव का कर्तृत्व भोग सभी ईश्वर के अधीन है। जिसमें प्रतिबिम्ब के द्वारा ब्रह्म चैतन्य के जीवत्व को भांति है वह अविद्या जीव का करण शरीर है। पंचप्राणक, बुद्धि, मन और पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर सूक्ष्मशरीर सत्रह अवयव लिंग से जीव स्वरूपित है। जैसे पंचदशी में कहा है-

बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपंचकैर्मानसाधिया।
शरीरं सत्पदशभि: सुक्षं तल्लिङ्गमुच्यते।।

लिंग शरीर अंतर्गत अन्त:करण में प्रतिबिम्बित जीव चैतन्य को प्रमाता कहा जाता है। प्रमाण सहयोग से ज्ञानहारणकारी व्यवहार संपादक यह जीव होता है।

योग्यतावर्धन

ज्ञान के द्वारा जीव मुक्त होता है यह भारतीय दर्शन का परमतत्व है। वह ज्ञान जीव

और ब्राह्मण का ऐक्य अनुभव है। मैं ही परम् ब्रह्म स्वरूप हूँ ऐसी जीव का यह अनुभव उपलब्धि वही ज्ञान अद्वैतवेदान्त का चरम सिद्धान्त है। अतएव गीता में भी भगवान वासुदेव ने कहा है ''न हि ज्ञानेन सदृश्यम् पवित्रमहि विद्यते''। और जीव के स्वरूप ज्ञान के द्वारा हम में आदर भाव बढ़ता है यह कोई भी संश्लेष नहीं है। कौन हूँ मैं? इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त दर्शन में प्रतिपादित है। अत: पूरे विश्व में वेदान्त का महान आदर किया जाता है। ''मैं ब्रह्म हूँ'' यह तत्व सभी प्रकार के वेदान्तों में विशिष्टाद्वैत में प्रतिपादित है। अद्वैत वेदान्त का उन वेदान्तों में मूर्धन्य स्थान है।

अध्येता इस पाठ को पढ़कर अपनी चिंता शक्ति को बढ़ाने में दर्शन विचार को जानने उनका स्वरूप जानने तथा वास्तविक जीवन में उनका उपयोग करने के विषय में इसमें पटुता अर्जित करने के लिए अधोलिखित बिंदुओं को देखें-

- वेदान्त का हमारे जीवन में प्रयोग क्षेत्र है। वेदान्त विमूर्तत्व नहीं है। वेदान्त हमारे दैनिक जीवन में ओतप्रोत भाव से जुड़े हैं। अत: मैं ही जीव ब्रह्म हूँ ऐसा विचार सर्वदा करना चाहिए। जिससे दैनिक विचार में पटुता आती है।
- मैं नित्य शुद्ध चेतन आत्मा ब्रह्म हूँ इस ज्ञान से सर्वविध मानसिक पीड़ा का नाश होता है।
- मेरे दु:ख सुख इत्यादि क्लेशों का निवारण हो। भले ही वैसे सुख दु:ख नहीं है। अत: मैं विशुद्ध आत्मा हूँ ऐसा चिंतन से कायिक दु:खों का मानसिक क्लेशों का निवारण स्वत: ही होता है। जिससे मनुष्य जीवन आनंदपूर्ण होता है। मैं शुद्ध नित्य हूँ ऐसे ज्ञान से आत्म विश्वास बढ़ता है। अत: छात्र को उस प्रकार के शुद्ध विचारों से अपनी विचारधारा का मार्जन कारण चाहिए।
- अद्वैत वेदान्त में जो स्वरूप को जानकर भी अन्यत्र दर्शनों में जीवस्वरूप विचार कैसे स्थापित है यह जानना चाहिए वहा अच्छा क्या है उसका ज्ञान लेना चाहिए।
- प्रारम्भिक स्तर में छात्रों के लिए उपयोगी ग्रंथ वेदान्तसार सदानन्द योगी द्वारा कृत सुस्पष्ट है। एवं शंकरभगवत्पाद कृत विवेकचूड़ामणि बालकों के लिए अत्यन्त रमणीय ग्रन्थ है।
- अपनी मातृभाषा में लिखित ग्रन्थ है उन्हें ग्रहण कर पढ़ना चाहिए। देशी तथा विदेशी भाषाओं में वेदान्त के बहुत ग्रन्थ हैं। वहाँ जो सुलभ तथा जानने में सुकर ग्रन्थों से ज्ञान अर्जित करना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. जीव स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. अवच्छेदवाद का विवरण दीजिए।

टिप्पणी

3. प्रतिबिम्बिवाद का विवरण दीजिए।
4. आभासवाद क्या है?
5. जीव की कर्तृत्वभोक्तित्व की व्याख्या कीजिए?
6. जीव की जन्म मरण की कैसे व्याख्या है?
7. एकजीववाद की व्याख्या कीजिए।
8. अनेकजीववाद की व्याख्या कीजिए।
9. जीव के अणुत्वविभूत्वादी विचार का वर्णन कीजिए।
10. जीवेश्वर का क्या संबंध है? व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. जीव अन्त:करण में प्रतिबिम्बित उपहित अवच्छिन्न या चैतन्य।
2. सुषुप्त अवस्था अभिमानी जीव प्राज्ञ है।
3. स्वप्ना अवस्था अभिमानी जीव तैजस है।
4. जीव विभु है।
5. जीव नित्य है।
6. जीवब्रह्म का ऐक्य ही अद्वैतवेदान्त का सिद्धान्त है।
7. जीव की उपाधि मलीन सत्व प्रधान अज्ञान है।
8. आभासवाद वर्तिकाकर सुरेश्वरचार्य का है।
9. प्रतिबिम्बवाद पञ्चपदी कवि विवरणकार का है।
10. अवच्छेदवाद भामतीकार वाचस्पति मिश्र का है।
11. जीव की कर्तृत्व परतंत्र ईश्वराधीन है।
12. जाग्रत अवस्थाभिमानी जीव विश्व है।
13. अविद्या की दो शक्तियां हैं, विक्षेपशक्ति और आवरणशक्ति।
14. भामती के मत में अविद्या का आश्रय जीव है।
15. विवरण के मत में अविद्या का आश्रय ब्रह्म है।
16. जीवेश्वर का अभेद संबंध अद्वैत वेदान्त में स्वीकार किया जाता है।
17. नहीं, जीव परमात्मा स्वरूप ही है।

।।इक्कीसवाँ पाठ समाप्त।।

22

अध्यारोप-अपवाद

प्रस्तावना

अद्वैत वेदान्त में जीव-ब्रह्म का अभेद प्रतिपादित है। ब्रह्म नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव का है। जीव ही ब्रह्म है। जीव तो अपने नित्य-शुद्ध स्वरूप को न जानते हुए सुख-लाभ के लिये बाह्य भोग की वस्तुओं के ग्रहण-रक्षण का महान कष्ट अनुभव करता है। जब जीव अनुभव द्वारा शास्त्र से अथवा आप्त वाक्य के श्रवण से भोग्य-वस्तुओं की अनित्यता को जानता है और वैराग्यवान होता है, तब अपने स्वरूप ज्ञान के लिये ब्रह्मज्ञ गुरू के समीप आता है। और गुरू करूणा युक्त होकर उसको ब्रह्म उपदेश देता है। परन्तु यदि गुरू संसार के दु:ख के उपशमन के लिये आए जीव को कहे कि यह दृश्यमान जगत मिथ्या है, शुक्ति के रूप के समान और वह ब्रह्म निष्कल, निर्विशेष और अवाङमनसगोचरम् (इन्द्रिय, मन द्वारा अग्राह्य) रूप को जानने में अयोग्य हो तो ये तत्व अनुभव विरोधी होने से शिष्य के मन में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं ही होंगे। अत: जैसे कथा के छल द्वारा बालक को तत्व बोधित होते हैं वैसे ही सहस्र माताओं द्वारा भी अधिक हितैषी श्रुति अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा मुमुक्षु को ब्रह्म तत्व का उपदेश देती है। जगत् के विषय में शिष्य का वर्तमान बोध (ज्ञान) ही भित्ति रूप से स्वीकार करके दृश्यमान जगत के कारण रूप में गुरू ब्रह्म का निर्देश करते हैं। अत: शिष्य का तत्व बोध अनुभव के अनुसार होने से सम्यक् होता है। और उस श्रुति के ब्रह्म के मनन-निदिध्यासन रूप उपाय वर्णित होते हैं। और कहा गया है-

अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चयते।
शिष्याणां बोधसिद्धयर्थं तत्वज्ञै: कल्पित: क्रम:॥

तत्वविदों के द्वारा शिष्यों के सुख से तत्व-बोध के लिये यह उपदेश प्रकार कल्पित है। इस पाठ में हम उपदेशविधि में अध्यारोप-अपवाद न्याय का गुरूत्व क्या है, अथवा इसका क्या स्वरूप है, यह विस्तार से जानेंगे।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अध्यारोप-अपवाद न्याय की आवश्यकता को जान पाने में;
- अध्यारोप क्या है जान पाने में;
- अपवाद क्या है जान पाने में;
- अज्ञान का लक्षण जान पाने में;
- शरीरत्रय-कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर, स्थूल शरीर को जान पाने में;
- पञ्चकोश को जान पाने में;
- सामान्य अध्यारोप को जान पाने में;
- विशेष अध्यारोप को जान पाने में;
- विशेष अध्यारोप का निरास जान पाने में;
- तत्व पदार्थ-शोधन को जान पाने में।

22.1 अध्यारोप क्या है?

वेदान्तसार ग्रन्थ में सदानन्दयोगीन्द्र अध्यारोप का लक्षण कहते हैं- ''असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोप:''। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही वस्तु पद से कहा गया है। और अवस्तु अज्ञान है, उससे समुत्पन्न सकल कार्य और प्रपञ्च है। अत: वस्तु ब्रह्म पर अज्ञान अथवा उसके कार्यों का आरोप ही अध्यारोप है। यहाँ उदाहरण है- असर्पभूत रज्जु पर सर्प का आरोप। इसीलिए अल्प प्रकाशित मार्ग पर गिरी रस्सी में कोई साँप को देखता है और कहता है ''यह साँप है''। यह रस्सी और साँप परस्पर भिन्न हैं। रज्जु में रज्जुत्व है और सर्प में सर्पत्व। रज्जु सर्प नहीं होता और सर्प रज्जु नहीं होता है। तथापि अल्प आलोक (प्रकाश) में रज्जु पर अज्ञान के कारण पूर्ववर्ती सर्प के संस्कार के बोध से सर्प-भिन्न रज्जु में भी सर्प का आरोप होता है और रज्जु में सर्पज्ञान होता है। वैसे ही अज्ञान और उसके कार्य जड़ हैं और ब्रह्म उससे विपरीत चेतन है। ब्रह्म के स्वरूप का अज्ञान के कारण चेतन ब्रह्म में अचेतन अज्ञान अथवा उसके कार्यों का आरोप होता है। यही अध्यारोप कहलाता है।

22.2 अपवाद क्या है?

जिसमें आरोप होता है, वह अधिष्ठान है, और जिसका आरोप होता है वह आरोप्य कहलाता है। इसीलिए रज्जु अधिष्ठान है और सर्प आरोप्य है। अधिष्ठान के बिना आरोप नहीं होता है। ब्रह्म में प्रपञ्च के आरोप स्थल पर ब्रह्म ही अधिष्ठान है, और प्रपञ्च आरोप्य है। आरोप्य मिथ्या है। जो प्रतीत होता है और उत्तर ज्ञान द्वारा बाधित होता है, वह मिथ्या है। रज्जु में सर्प प्रतीत होता है, जब 'यह रज्जु है', ऐसा ज्ञान होता है, तब सर्प निवृत्त होता है, रज्जु मात्र अवशिष्ट रहता है। रज्जु ज्ञान होने पर पुनः सर्प की प्रतीति नहीं होती है। अतः रज्जु को देखकर सर्प मिथ्या है। अधिष्ठान के ज्ञान से ही आरोप्य के मिथ्या वस्तु की निवृत्ति होती है, अधिष्ठान मात्र अवशिष्ट रहता है। रज्जु में सर्प का आरोप होने पर रज्जु को सर्प के गुण अथवा दोष प्रवेश नहीं करते हैं। न ही रज्जु में सर्प का आरोप होने पर रज्जु विषययुक्त होता है, सर्प के मिथ्याभूत होने के कारण। इस प्रकार ब्रह्मरूप के अधिष्ठान के ज्ञान से आरोपितों के अज्ञान और उनके कार्यों की निवृत्ति होती है। अज्ञान और उनके कार्य मिथ्याभूत हैं।

कारण से कार्य उत्पन्न होता है। कारण ही कार्यरूप में प्रकाशित होता है। कारण का कार्यरूप अन्यथाभाव (अन्यरूपप्राप्ति) दो प्रकार का है- परिणाम और विवर्त। परिणाम ही विकार पद से कहा जाता है। कारण का अपने स्वरूप को त्यागकर अन्य रूप की प्राप्ति परिणाम अथवा विकार है। जैसे- दूध से दही उत्पन्न होता है। दूध कारण है और दही कार्य है। दूध अपने स्वरूप को त्यागकर दही रूप को प्राप्त करता है। अतः दूध का विकार अथवा परिणाम दही है। कारण के स्वरूप को परित्याग करके ही अन्यरूप की प्राप्ति विवर्त है। यथा रज्जु अपने स्वरूप को त्यागकर ही सर्प रूप में प्रतिभासित होती है। अतः सर्प रज्जु का विवर्त है। विकार और परिणाम का लक्षण वेदान्तसार में इस प्रकार उद्धृत है- ''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृतः। अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृतः।।'' इस प्रकार ब्रह्म अपने स्वरूप को त्यागकर ही प्रपञ्च रूप में प्रतिभासित होता है। अतः यह परिदृश्यमान मिथ्याभूत प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है। विवर्तस्थल पर मिथ्याभूत पदार्थ के उत्तर ज्ञान द्वारा बाध होने पर अधिष्ठान मात्र अवशेष रहता है।

इस प्रकार अविकृत रज्जु में सर्पाकार से भासमान रज्जु विवर्त का ''यह रज्जु है'', ऐसा अधिष्ठान ज्ञान होने पर यथा अधिष्ठान की रज्जु-रूप सी ही स्थिति होती है तथा ब्रह्म विवर्त अज्ञान आदि प्रपञ्च के ब्रह्म रूप अधिष्ठान का ज्ञान होने पर ब्रह्म-रूप-सी स्थिति अपवाद है। अतः कार्य का कारण मात्र सत्ताअन्वेषण और कारण-स्वरूप व्यतिरेक द्वारा कार्य की असत्ता-अवधारण ही अपवाद है। वेदान्तसार में सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा कहा गया है-

''अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्''। अतः जैसे रज्जुविवर्त सर्प का रज्जुमात्रत्व ही है वैसे हल अवस्तु ब्रह्मविवर्तभूतों और अज्ञान-उसके कार्यों की ब्रह्मरूप वस्तु मात्रता है, ऐसा प्रतिपादन ही अपवाद है।

टिप्पणी

22.3 अध्यारोप-अपवाद न्याय का प्रयोजन

जगत् का मिथ्यात्व प्रदर्शन और जगत् के कारण रूप से सत्य ब्रह्म का सूचन अध्यारोप-अपवाद प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है। आदि में अखिल जगत ब्रह्म से उद्भूत है, ऐसा प्रतिपादित है। और कार्य कारण में रहता है। अतः अखिल जगत् ब्रह्मनिष्ठ प्रतिपादित होता है। उससे ब्रह्म में श्रुति और युक्ति द्वारा जगत निषिद्ध है। ब्रह्म का जगत् का निषेध होने पर जगत् का सत्व ही व्याहत होता है। क्योंकि कारण ब्रह्म को छोड़कर अन्यत्र जगत की स्थिति नहीं ही होती है। अतः ब्रह्म में जगत का निषेध होने पर ब्रह्म को छोड़कर अन्यत्र जगत के अभाव से जगत का मिथ्यात्व हो जाता है। अध्यारोप-अपवाद न्याय का गौणफल तत्त्व पदार्थ शोधन है। यह विषय आगे स्फुटित होता है।

पाठगत प्रश्न 22.1

1. अध्यारोप का लक्षण क्या है?
2. अपवाद क्या है?
3. अधिष्ठान क्या है?
4. मिथ्याभूत आरोप्य की निवृत्ति कैसे होती है?
5. परिणाम क्या है?
6. विवर्त क्या है?
7. परिदृश्यमान इस प्रपञ्च का क्या अधिष्ठान है?
8. यह प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है अथवा परिणाम?
9. अध्यारोपापवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन क्या है?
10. अध्यारोपापवाद न्याय का गौण प्रयोजन क्या है?

22.4 सामान्य अध्यारोप वर्णन

परिदृश्यमान यह जगत ब्रह्म का विवर्त और अज्ञान का परिणाम है। अज्ञान जगत का परिणाम रूप उपादान हैं। और ब्रह्म जगत का विवर्त रूप उपादान है। अज्ञान ही जगत रूप में परिणत होता है, यथा दूध दही रूप में परिणत होता है। यथा अल्प अन्धकार में रज्जु का अज्ञान सर्पोत्पत्ति में कारण है, वैसे ही ब्रह्म स्वरूप का अज्ञान जगत् उत्पत्ति में कारण है। यह जगत् जड़, सुख, दुःख और मोह से अन्वित हैं। उससे इस जगत का परिणाम उपादान कारण भी कार्य के सदृश ही जड़, सुख-दुःख और

टिप्पणी

मोहान्वित हो। अतः जगत के परिणाम उपादान कारण रूप में जड़ के सुख, दुःख, मोहात्मक, सत्त्व-रज-तमोगुणत्रय से अन्वित अज्ञान का ग्रहण होता है। ब्रह्म विषयक अज्ञान का स्वरूप और उससे जगत-उत्पत्ति प्रक्रिया नीचे निर्दिष्ट है।

22.4.1 अज्ञान लक्षण विचार

सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा अज्ञान लक्षण के विषय में वेदान्तसार में निगदित है- ''अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधी भावरूपं यत्किञ्चित्'' सत् जो तीनों कालों में अबाधित है। अतीत-वर्तमान-भविष्यत् रूप कालत्रय में जो रहता है और जिसका इस कालत्रय में नाश नहीं होता है, वह सत् है। अज्ञान सत् नहीं है। यथा घट ज्ञान से परम घट विषयक अज्ञान नष्ट होता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान से परम ब्रह्मविषयक अज्ञान नष्ट होता है। और अज्ञान असत् नहीं है। असत् प्रतीक है, सींग आदि। परन्तु ''अहमज्ञः'' इत्यादि स्थानों पर अज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, अतः अज्ञान असत् नहीं है। अलीक का कभी भी अथवा कहीं भी ज्ञान नहीं होता है। ना ही कोई कहीं भी सींग का साक्षात्कार करता है। और अज्ञान के सत्-असत् दोनों रूप नहीं है, एक ही धर्मी में असत् और सत् दो विरूद्ध धर्म नहीं रहते है। अतः अज्ञान सत् नहीं, असत् भी नहीं, अथवा असत्-सत् उभयात्मक नहीं किन्तु सद्सदुभयात्मक अनिर्वचनीय है। और अनिर्वचनीय का लक्षण कहा गया है -

''प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं च यत्।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवादिनः॥

विवेकचूड़ामणि में भगवान शंकराचार्य द्वारा भी उक्त है-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भूतानिर्वचनीयरूपा॥
(विवेकचूडामणि, 111)

अज्ञान, माया, अविद्या, पर्यायवाची हैं। अज्ञान त्रिगुणात्मक है। और वे गुण लोहित, शुक्ल और कृष्ण श्रुतियों में प्रतिपादित हैं। अज्ञान कार्य तेज, जल, पृथिवी, इन त्रिवृत्त करण द्वारा समुत्पन्न स्थूलभूतों में ये तीन गुण होने से उनकी कारणभूत माया भी त्रिगुणात्मिका है, ऐसा सिद्ध होता है। और आम्नात है- ''यदङ्ग लोहित रूपं तेजसस्तद्रूपं यत्शुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य''।

गुणत्रय सत्त्व, रज और तम हैं। माया का त्रिगुणात्मकत्व श्रुति और भगवद्गीता में प्रतिपादित है। जैसे अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्, इस श्रुति में लोहित, शुक्ल, कृष्ण पदों द्वारा रज, सत्व और तम का निर्देश विहित है। और भगवद्गीता में- सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः, दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया, इत्यादि वचनों द्वारा माया निर्दिष्ट है। त्रिगुणात्मक अज्ञान से समुत्पन्न यह प्रपञ्च भी त्रिगुणात्मक होता है।

गुणत्रय से विशिष्ट होने से अज्ञान सत्य नहीं कहा जाता क्योंकि अज्ञान ज्ञान से बाधित होता है। ब्रह्मज्ञान से ही अज्ञान नष्ट होता है। अत: अज्ञान ज्ञान-विरोधी है। ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है, ऐसा चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अज्ञान अभाव रूप नहीं है। अज्ञान अभावरूप हो तो अज्ञान से भावरूप जगत की उत्पत्ति सम्भव नहीं होती। ना ही अभाव से भाव पदादि की उत्पत्ति होती है। अहम् अज्ञ: इत्यादि अनुभव में अज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात होता है। अज्ञान यदि अभावरूप हो तो उसका अनुपलब्धि प्रमाण से ज्ञान होता, प्रत्यक्ष से नहीं। अज्ञान सींग/शृंग न्याय से यह इस प्रकार है, ऐसा पिण्डीकृत करके प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अत: ''यत्किञ्चित्' अज्ञान का विशेषण दिया गया है।

22.4.2 कारण शरीर

अज्ञान समष्टि अभिप्राय से एक और व्यष्टि अभिप्राय से अनेक कहा जाता है। वृक्षों का समष्टि रूप वन होता है और जल बिन्दुओं का समष्टि रूप जलाशय। जब वक्ता समष्टि को कहने की इच्छा करता है तब वन और जलाशय कहता है और जब व्यष्टि को कहने की इच्छा करता है तब वृक्ष और जल कहता है। जल बहुत हैं, अत: जीवगत अज्ञान भी बहुत है। उस अज्ञान का समष्टि-अभिप्राय से समष्टि ज्ञान, यह व्यवहार है। इस समष्टिज्ञान में सत्त्व गुण का बहुत आधिक्य दिखता है, यहाँ सत्त्वगुण रजस् और तमस् से अभिभूत नहीं होता है। अत: अज्ञान की समष्टि विशुद्ध सत्त्व प्रधान है। सत्त्व गुण के आधिक्य के कारण समष्टि ज्ञान को उत्कृष्ट उपाधि कहा जाता है। अज्ञान के व्यष्टि अभिप्राय से व्यष्टि ज्ञान, ऐसा व्यवहार है। व्यष्टि ज्ञान में सत्त्व-गुण का प्राधान्य है, परन्तु वैसा नहीं जैसा समष्टि ज्ञान में। सत्त्व व्यष्टि ज्ञान में रजस् और तमस् के अभिभूत होता है। अत: व्यष्टि ज्ञान मलिन सत्त्व प्रधान और निकृष्ट उपाधि रूप। समष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ही ईश्वर है। ईश्वर ही सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, अव्यक्त, अन्तर्यामी और जगत का कारण है। ईश्वर ही सभी अज्ञान का अवभासक है। व्यष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ही प्रज्ञ कहलाता है। और प्रज्ञ एक अज्ञान का अवभासक है। और मलिन सत्त्व प्राधान्य के कारण व्यष्टि ज्ञान अस्पष्टोपाधि है और उसके कारण अनतिप्रकाशक होता है।

ईश्वर का उपाधिरूप समष्टि ज्ञान और प्रज्ञ का उपाधिरूप व्यष्टि ज्ञान कारण शरीर, आनन्दमयकोश और सुषुप्ति कहा जाता है। समष्टि ज्ञान सकल जगत का कारण है, ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाणत्व होने से शरीर है, अत: यह कारण शरीर कहा जाता है। और व्यष्टि ज्ञान अहंकार आदि का कारण और ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाणत्व होने से शरीर है, अत: व्यष्टि ज्ञान भी कारण शरीर कहा जाता है। इस कारण शरीर के कारण अज्ञान से ही स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च उत्पन्न होता है। कारण से कार्य उत्पन्न होता है और विनाश के अनन्तर कार्य कारण में लीन होता है, ऐसा नियम है। अत: सूक्ष्म स्थूल प्रपञ्च भी कारण शरीर अज्ञान में ही लीन होता है। अत: कारण शरीर का सुषुप्ति नाम है, उसमें समस्त प्रपञ्च लय दर्शन के कारण। कारणतव अवस्था, सुषुप्ति अथवा प्रलयकाल

में स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च के अभाव से जीव आनन्द बाहुल्य का अनुभव करता है और यह ज्ञान कोशवत् ब्रह्म को आच्छादित करता है। अतः कारण शरीर आनन्दमयकोश कहा जाता है।

वन वृक्ष का अभेद होता है, वृक्ष वन से भिन्न नहीं है। इस प्रकार वनाकाश और वृक्षाकाश का अभेद होता है, वृक्ष में विद्यमान आकाश वन में विद्यमान आकाश से भिन्न नहीं है, वन और वृक्ष के अभेद के कारण। एवं समष्टि-व्यष्टि ज्ञान रूप वन-वृक्ष के अभेद के समान, ईश्वर-प्रज्ञ के चैतन्य स्वरूप होने से वन-वृक्ष अवच्छिन्न आकाश का अभेदवत् अभेद बोध्य है। अज्ञान से अनुपहित जो चैतन्य है वह तुरीय चैतन्य कहलाता है। यथा वनाकाश और वृक्षाकाश का आधारभूत एक महाकाश होता है, इस प्रकार समष्टि ज्ञान से उपहित चैतन्य और व्यष्टि ज्ञान से उपहित चैतन्य का आधारभूत एक चैतन्य होता है, जो किसी उपाधि से संस्पृष्ट नहीं रहता है। वही आधारभूत चैतन्य तुरीय कहलाता है। और इस अज्ञान की दो शक्तियाँ होती है- आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। यथा अल्प मेघ अनेक योजन में विस्तृत सूर्य को आवृत कर लेता है, द्रष्टा के नेत्र बन्द कर लेने से। वैसे ही अज्ञान आवरणशक्ति द्वारा अपरिच्छन्न होकर भी आत्मा जीव की बुद्धि को आवृत करके आच्छादित करता है। यथा रज्जु विषयक अज्ञान आवृत रज्जु में स्व शक्ति से सर्प आदि को उद्भावित (उत्पन्न) करता है एवं अज्ञान भी आवरण शक्ति से आवृत आत्मा में विक्षेप शक्ति द्वारा आकाश आदि प्रपञ्च को उत्पन्न करता है।

आवरण और विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से उपहित चैतन्य (ईश्वर) जगत का निमित्त और उपादान होता है। ईश्वर ही चैतन्य प्रधानता से जगत का निमित्त होता है और जड़ उपाधि की प्रधानता से उपादान होता है। यथा लूताकीट (मकड़ी) अपने चैतन्य दृष्टि से तन्तुओं का निमित्त होता है और अपनी शरीर की प्रधानता से तन्तुओं का उपादान होता है। अतः ईश्वर ही जगत का अभिन्न निमित्त और उपादान कारण है। और मुण्डकोपनिषद् में विहति है-

''यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह नित्यम्'॥

पाठगत प्रश्न 22.2

1. जगत का परिणाम उपादान कारण क्या है?
2. जगत का विवर्त उपादान कारण क्या है?
3. अज्ञान का लक्षण क्या है?
4. त्रिगुणात्मक अज्ञान के गुणत्रय क्या हैं?

5. अज्ञान किस प्रमाण से गृहीत होता है?
6. कारण शरीर क्या है?
7 ईश्वर क्या है?
8. प्राज्ञ क्या है?
9. कारण शरीर को आनन्दमयकोश क्यों कहते हैं?
10. तुरीय चैतन्य क्या है?
11. अज्ञान की दो शक्तियाँ कौन-सी है?
12. ईश्वर जगत का निमित्त कारण और उपादान कारण कैसे होता है?

22.4.3 सूक्ष्म शरीर

तमः प्रधान विक्षेप शक्ति से विशिष्ट अज्ञान से उपहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। और इन भूतों में जड़ता के अधिक दर्शन से जड़ हेतु भूत तमस की प्रधानता कारण में स्वीकार की जाती है। और तैत्तिरीयोपनिषद् में आम्नात है- ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भयः पृथिवीः''। गुणत्रय विशिष्ट अज्ञान से उत्पन्न इन भूतों में भी गुणत्रय होते हैं। ये सूक्ष्मभूत तन्मात्रा कहलाते हैं। इन सूक्ष्म भूतों द्वारा जीव का व्यवहार सम्भव नहीं होता है। इन सूक्ष्मभूतों से सूक्ष्मभूत और स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं।

आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंश व्यष्टियों से पृथक्-पृथक् श्रोत्र-त्वक्-नेत्र (आक्षि)-रसना-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ क्रम से उत्पन्न होती हैं। इन पञ्चसूक्ष्मभूतों के सूक्ष्मांश से मिलकर अन्तः करण उत्पन्न होता है। निश्चयात्मिका अन्तः करण वृत्ति ही बुद्धि कहलाती है और संकल्पविकल्पात्मिका अन्तः करण वृत्ति मन कहलाती है। अन्तः करण वृत्ति भेद चित्त और अहंकार में इन बुद्धि और मन का अन्तर्भाव है। चित्र स्मरणात्मिका अन्तः करण वृत्ति है। और अहंकार अभिमानात्मिका अन्तः करण वृत्ति है। चित्त का बुद्धि में अन्तर्भाव होता है और अहंकार का मन में। आकाश आदि पाँच भूतों के रजो अंश व्यष्टियों से क्रम पूर्वक वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ नामक पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। आकाश आदि पञ्चभूतों के रजो अंश से मिलकर पञ्च प्राण उत्पन्न होते हैं। और पञ्च प्राण हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय पाँच प्राण हैं, ये भी कुछ कहते हैं। ऊर्ध्वगमनशील नासिका अग्रवर्ती वायु प्राण है, अधोगमनशील पायु आदि स्थायी वायु अपान है, सर्वनाड़ी गमनशील अखिलशरीरस्थ वायु व्यान है, ऊर्ध्व उत्क्रमणशील कण्ठस्थित वायुः उदान है, शरीर मध्यगत अन्य रस आदि का समीकरण कर वायु समान है। कुछ पुनः अन्य पाँच वायु नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त-

धनञ्जय नामक वायु को स्वीकार करते हैं। उसमें नाग नामक वायु उद्गिरणकर, कूर्म उन्मीलनकर, कृकर क्षुधाकर, देवदत्त जृम्भागकर, और धनञ्जय पोषणकर है। इन पाँच वायु का प्राण आदि में ही अन्तर्भाव है, ऐसा कुछ कहते हैं। सूक्ष्म शरीर सत्रह अवयवों से विशिष्ट है। सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर भी कहते हैं। प्रत्यगात्मा का अनुमापन करता है, इस कारण से सूक्ष्मशरीर का नाम लिङ्ग शरीर भी है। लिङ्ग शरीर के सत्रह (17) अवयव हैं- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच वायु।

इनमें पुनः ज्ञानेन्द्रियाँ पञ्चक सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश कहलाते हैं। यह विज्ञानमयकोश ही लोक-लोकान्तर और देह-देहान्तर में चलता है और कर्तृत्व-भाक्तृत्व-सुखित्व-दुःखित्व अभिमानयुक्त होता है। विज्ञानमय कोश ही जीवपद वाच्य है। ज्ञानेन्द्रियसहित मन मनोमय कोश होता है। प्राणादि पञ्चक और कर्मेन्द्रिय पञ्चक सहित प्राणमय कोश होता है। प्राणमय कोश क्रियात्मक है, अतः रजो अंश से समुत्पन्न है, ऐसा निर्धारित होता है। इन तीनों कोशों में विज्ञानमय-मनोमय-प्राणमय में विज्ञानमय ज्ञान शक्तिमान कर्तृरूप, मनोमय इच्छाशक्तिमान करणरूप और प्राणमय क्रियाशक्तिमान कार्यरूप होता है। और कार्यभेद से इन कोशों का विभाग है। ये तीन कोश मिलकर ही सूक्ष्म शरीर होते हैं।

सूक्ष्म शरीर स्थल पर भी समष्टि-व्यष्टि बुद्धि प्रवर्तित होती है। समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य ही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ अथवा प्राण कहलाता हैं व्यष्टि सूक्ष्मशरीर उपहित चैतन्य तैजस कहलाता है। तेजोमय अन्तः करण के उपाधि रूप में वर्तमान होने से इस प्रकार का अभिधान होता है। सूक्ष्म शरीर स्थूल प्रपञ्च की अपेक्षा सूक्ष्म होने से सूक्ष्म, और ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाण होने से शरीर है। यह स्वप्न जाग्रत, वासनायुक्त होने के कारण, स्थूल प्रपञ्च का इसमें ही लय होने से यह स्थूल प्रपञ्च 'लय स्थान' कहलाता है। हिरण्यगर्भ और तैजस स्वप्नकाल में मनोवासना निर्मित सूक्ष्म विषयों का अनुभव करता है।

पाठगत प्रश्न 22.3

1. आकाश आदि पाँच भूत किससे उत्पन्न होते हैं?
2. आकाश आदि पञ्च सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंशों से क्या उत्पन्न होता है?
3. मन क्या है?
4. बुद्धि क्या है?
5. चित्त-अहंकार का कहाँ अन्तर्भाव होता है?
6. कर्मेन्द्रियाँ कहाँ से उत्पन्न होती है?
7. पञ्च प्राण कहाँ से उत्पन्न होते हैं?

8. पञ्च प्राण क्या हैं?

9. सूक्ष्म शरीर में कितने अवयव हैं और वे क्या हैं?

10. विज्ञानमय कोश क्या है?

11. प्राणमय कोश क्या हैं?

12. मनोमय कोश क्या है?

13. हिरण्यगर्भ क्या है?

14. तैजस क्या है?

22.4.4 स्थूल शरीर

आकाश आदि पञ्चसूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण से स्थूलभूतों की समुत्पत्ति होती है। आकाश आदि पाँचों भूतों में प्रत्येक सम दो प्रकार का विभक्त होकर, प्रत्येक भूत के आद्य भागों को पुनः चार प्रकार से विभक्त करके, उन चारों के आद्य भागांशों की अपने-स्वेतर द्वितीयांशों के साथ योजना द्वारा पञ्चीकरण होता है। इसीलिए कहा जाता है-

''द्विधा विधाय चैकैंक चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते॥''

एवं पञ्चीकरण से पञ्च स्थूल भूत आविर्भाव होते हैं। पञ्चीकरण से अनन्तर प्रत्येक स्थूलभूत में पाँच भूतों के विद्यमान होने से उनका अभिधान हो तो कहते हैं जिस समुदाय में जिस भूत का भाग अधिक हो उसका उसके ही द्वारा नाम अभिधान होता है। जैसे जिस समुदाय में पृथिवी का भाग अधिक हो उस समुदाय का पृथिवी, इस प्रकार जल, तेज, वायु, आकाश, ये नाम बोध्य होते हैं। ब्रह्मसूत्र में बादरायण द्वारा यह अर्थ सूचित है- ''वैशेष्यात् तद्वादस्तद्वादः'' ऐसा सूत्र से है। पञ्चीकरण व्यापक श्रुति के अभाव का प्रामाण्य नहीं है, ऐसा अशंकनीय है। ''तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि'', इत्यादि त्रिवृत्करण श्रुति से पञ्चीकरण को भी उपलक्षित होने के कारण। आकाश से वायु, वायु से अग्नि इत्यादि वाक्यों से श्रुतार्थापत्ति द्वारा आकाश, वायु का भी पञ्चीकरण सिद्ध होता है।

स्थूलभूतों में आकाश में शब्द अभिव्यक्त होता है, वायु में शब्द-स्पर्श, अग्नि में शब्द-स्पर्श-रूप, जल में शब्द-स्पर्श-रूप-रस- और पृथिवी में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध। इन पञ्चीकृत स्थूलभूतों के द्वारा सात ऊर्ध्वलोक और सात अधोलोक उत्पन्न होते हैं। और स्थूलभूतों से ब्रह्माण्ड के अर्न्तगत स्थूलशरीररों की और स्थूलशरीर से भोग्य अन्न-पान आदि की समुत्पत्ति होती है। सात ऊर्ध्वलोक हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्यम् तथा सात अधोलोक हैं- अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। चार प्रकार के स्थूल शरीर हैं- जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज।

जरायुज शरीर जरायु से उत्पन्न हैं यथा मनुष्य, पशु आदि शरीर। अण्डज शरीर अण्डों से उत्पन्न हैं, पक्षी, सर्प आदि शरीर। स्वेजद शरीर स्वेद से उत्पन्न, यूक, मशक आदि शरीर। और उद्भिज भूमि से उत्पन्न होते हैं, लता, वृक्ष आदि।

प्रत्येक जीव से शरीर भिन्न होते हैं। और जब इन स्थूल शरीरों की समष्टि विवक्षा होती है तब समष्टि स्थूल शरीर व्यपदिष्ट है, और जब व्यष्टि विवक्षा होती है तब व्यष्टि स्थूल शरीर व्यपदिष्ट है। समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य वैश्वानर अथवा विराट् कहलाता है। सभी नरों के अभिमानित्व से समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य का वैश्वानर और विविध राजमानत्व से विराट नाम है। व्यष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य विश्व कहलाता है। सूक्ष्म शरीर अभिमान को त्यागकर ही स्थूल शरीर में प्रविष्ट होने से विश्वत्व है। और स्थूल शरीर अन्न रूप विकार है, इससे ही स्थूल शरीर की वृद्धि होती है। अतः इसका अन्नमयकोश अभिधान है। इस शरीर के द्वारा स्थूल विषयों के ही भोग सम्भव होते हैं, उसके कारण यह स्थूल शरीर कहलाता है। स्थूलभोगायतन होने से स्थूल शरीर का नाम जाग्रत है।

जाग्रत अवस्था में विश्व-वैश्वानर श्रोत्र-त्वग्-नेत्र-रसना और घ्राण द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध को, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ द्वारा वचन-आदान-गमन-विसर्ग-आनन्द को, मन-बुद्धि-अहंकार रूप चित्त द्वारा संकल्प निश्चय-अहंकार रूप चैत्त को अनुभव करते हैं। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ क्रम से दिग्-वातार्क-वरूण-अश्व द्वारा नियन्त्रित होती हैं। और मन-बुद्धि-अहंकार रूप चित्त चन्द्र-चतुर्मुख ब्रह्म-शंकर-अच्युत द्वारा नियन्त्रित होते हैं। पूर्ववत् समष्टि-व्यष्टि स्थूल शरीरों का वन, वृक्ष रूप भेदवत्, और वैश्वानर-विश्व के वनाकाश-वृक्षाकाश अभेदवत् अभेद बोध्य हैं।

एवं इन स्थूल-सूक्ष्म-कारण प्रपञ्चों की समष्टि एक महान् प्रपञ्च होती है। यथा बहुत से अवान्तर वन मिलकर एक महावन होते हैं, उसी प्रकार।

22.5 विशेषाध्यारोप

ब्रह्म में सामान्यतः महाप्रपञ्च अध्यारोप वर्णित है। अब प्रत्यगात्मा में विशेषध्यारोप प्रतिपादित है। पुत्रत्व आदि बाह्य धर्मों का आत्मभिन्न शरीर आदि का आत्मा में अध्यारोप से 'अहम् इदं', 'मम इदम्' इत्यादि व्यवहार होते हैं। यही विशेष-अध्यारोप है। जैसे-आत्मा वै जयते पुत्रः इत्यादि श्रुति को देखकर विप्रतिपन्न कुछ प्राकृत चार्वाक स्वयं के ही पुत्र में प्रेमदर्शन से पुत्र के पुष्ट और नष्ट होने पर 'अहमेव पुष्टो नष्टः' इत्यादि अनुभव से पुत्र ही आत्मा हैं, ऐसा कहते हैं। कुछ चार्वाक पुनः 'स वा एष पुरूषोऽन्नरसमय' इत्यादि श्रुति प्रमाण से जलते हुए घर से पुत्र का त्यागकर भी लोगों को बाहर जाता देखकर और कुछ मैं स्थूल हूँ, मैं कृश (पतला) हूँ इत्यादि व्यवहारों को देखकर आत्मा स्थूल शरीर है, ऐसा कहते हैं। अन्य चार्वाक ''ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुः' इत्यादि श्रुति को देखकर, इन्द्रियों के अभाव में शरीर के चलन का अभाव को देखकर और 'काणोऽहं

टिप्पणी

वधिरोऽहम्' इत्यादि अनुभव के कारण इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं, ऐसा कहते हैं। अन्य कुछ चार्वाक 'अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः' इत्यादि श्रुति के दर्शन से, मन में सुप्त प्राण आदि के अनुभव के अभाव से 'अहं संकल्पवान्' अहं विकल्पवान् इत्यादि अनुभव से मन ही आत्मा है, ऐसा कहते है। योगाचार बौद्ध कर्ता के अभाव में करणों के प्रवृत्त्यभाव के कारण और 'अहं कर्ता, अहं भोक्ता' इत्यादि अनुभव से बुद्धि ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। 'अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय' यह श्रुति भी उनके द्वारा प्रमाणरूप में प्रदर्शित है। प्रभाकर और तार्किक बुद्धि आदि के अज्ञान में लय दर्शन से और अहम् अज्ञः इत्यादि अनुभव से अज्ञान आत्मा है, ऐसा कहते हैं। इस मत को बल देने हेतु 'अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः' यह श्रुति को वे उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं। भाट्टमीमांसक अज्ञानोपहित चैतन्य को ही आत्मा कहते हैं। क्योंकि सुषुप्ति में ज्ञान-अज्ञान दोनों ही रहते हैं, अतः मुझे मैं नहीं जानता हूँ, ऐसा अनुभव होता है। यहाँ मत को बल देने हेतु श्रुति वाक्य है- 'प्रज्ञानधन एवानन्दमय आत्मा'। शून्यवादि बौद्धों के मत में शून्य ही आत्मा, 'अहं सुषुप्तौ न आसम्' ऐसा सोकर उठने वाले का अनुभव होने से और 'असदेवेदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुति से। इस प्रकार आत्मा में पुत्र-शरीर-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-अज्ञान उससे उपहित चैतन्य-शून्य-अनात्म वस्तुओं के अध्यारोप से विविध अभिमान भ्रमभूत उत्पन्न होते हैं।

22.5.1 विशेष अध्यारोप का निरास

पुत्र से आरम्भ होकर शून्य पर्यन्त विषय आत्मा से भिन्न ही है। पुत्र आदि का आत्मत्व प्रतिपादित करने के लिए जो श्रुति-युक्ति-अनुभव प्रदर्शित हैं वे श्रुति-युक्त-अनुभव आभास ही हैं, यथार्थ नहीं। और पूर्व-पूर्व युक्तियों का उत्तरोत्तर युक्तियों द्वारा खण्डन अध्यारोप प्रतिपादन काल में ही विहित है। पुत्र से आरम्भ होकर शून्य पर्यन्त ज्ञानविषय और जड़ होने से अनात्मत्व है और उसके करण मिथ्यात्व स्फुटित है। 'प्रत्यगस्थूलः अचक्षुः अप्राणः, अमनाः अकर्ताः चैत्न्यं चिन्मात्र सत्' इत्यादि प्रबल श्रुति विरोध से मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा विद्वानों के अनुभव के प्रामाण्य से पूर्वोक्त श्रुति-युक्ति-अनुभव आभासों का बाध है। प्रत्यगात्मा नितय, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव पूर्वोक्त विषयों का प्रकाशक है।

22.5.2 स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपञ्च अपवाद से कारणभूत ब्रह्म का निर्णय (सामान्याध्यारोप का निरास)

कार्य कारण में आश्रित रहता है ऐसा पूर्व में प्रतिपादित है। शास्त्र द्वारा अध्यारोप के प्रतिपादन का मुख्य उद्देश्य कार्यप्रपञ्च द्वारा कारणभूत ब्रह्म का निर्देश है। अब अपवाद द्वारा कार्यप्रपञ्च द्वारा कारणभूत ब्रह्म प्रतिपादित करते है। जैसे स्थूल भोगायतन चार प्रकार के स्थूल शरीर, भोग्य रूप अन्न-पान आदि, चौदह भुवन और उसका आश्रय ब्रह्माण्ड कारणरूप पञ्चीकृत भूतमात्र होते हैं। एवं शब्द आदि सहित पञ्चीकृत भूत सूक्ष्म शरीर

से उत्पन्न ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, प्राण और अन्तः करण अपञ्चीकृतभूतमात्र होते हैं। त्रिगुणात्मक और अपञ्चीकृतभूत कारणभूत अज्ञानोपहित चैतन्यमात्र होते हैं। कारण शरीर, अज्ञान, अज्ञानोपहित चैतन्य और ईश्वर आदि उपहित चैतन्याधारभूत अनुपहित चैतन्यरूप तुरीय ब्रह्ममात्र होता है।

22.6 अध्यारोपापवाद द्वारा तत्व-पदार्थ शोधन

'तत्त्वमसि' इस महावाक्य द्वारा जीव-ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित होता है। तत्-त्वम् पद में लक्षण द्वारा चैतन्य मात्र बोधित है। अध्यारोप के आलोचन द्वारा तत् त्वम् पदों का अभिहितार्थ और लक्ष्यार्थ का ज्ञान सुखपूर्वक होता है। जैसे वृक्ष पर जलसेक किया जाता है तो उसमें स्थित तृण भी सिक्त होते हैं, वैसे ही कारणभूत ब्रह्म की सूचना के लिए अध्यारोपापवाद न्याय में प्रयुक्त होने पर भी वह तत्-त्वम् पदार्थ शोधन भी विदीध होता है। अतः तत्-त्वम् पदार्थ शोधन अध्यारोप-अपवाद का गौण प्रयोजन है। इसीलिए समष्टि ज्ञान और उससे उपहित चैतन्य (ईश्वर) और उससे अनुपहित चैतन्य (तुरीय) - इस अभेद से प्रतीयमान यह उस पद के वाच्यार्थ होते हैं। यथा-तत्प अयस (लौह) में आस और अग्नि का भेद नहीं जाना जा सकता है। तब 'अयो दहति', ऐसा व्यवहार होता है। इस प्रकार समष्टि ज्ञान ईश्वर तुरीर और चैतन्य के अभेद से प्रतिभासित उस पद का वाच्यार्थ होता है। उस पद का लक्ष्यार्थ अज्ञान द्वारा अनुपहित सकल आधारभूत तुरीय चैतन्य है।

इस प्रकार व्यष्टि ज्ञान और उससे उपहित चैतन्य (प्राज्ञ) और उससे अनुपहित तुरीय चैतन्य है- यह तीन तत्पतायः पिण्डवत् अभेद द्वारा भासमान त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है। व्यष्टि ज्ञान से अनुपहित तुरीय और चैतन्य त्वम् पद का लक्ष्यार्थ होता है। एवं 'तत्' पद का भी लक्ष्यार्थ तुरीय चैतन्य, 'त्वम्' पद का भी लक्ष्यार्थ तुरीय चैतन्य है। और उससे तत्-त्वम् पद का तुरीय चैतन्य मात्र बोधकत्व समाहित होता है। और वही तात्पर्य तत्वमसि महावाक्य का है। अतः ब्रह्म-जीव का तत्वम् (तत् और त्वम्) पदवाच्य का भेद नहीं है, ऐसा समापन होता है।

पाठगत प्रश्न 22.4

1. स्थूलभूतों की उत्पत्ति कहाँ से और किससे होती है?
2. पञ्चीकरण क्या है?
3. सात ऊर्ध्वलोक क्या हैं?
4. स्थूल शरीर कितने प्रकार के हैं और वे क्या हैं?
5. सात अधोलोक क्या हैं?

6. स्वेजद शरीर क्या है?
7. वैश्वानर अथवा विराट् क्या है?
8. व्यष्टि स्थूल शरीरोपहित चैतन्य का क्या अभिधान है?
9. मन, बुद्धि अहंकार रूप चित्त किन देवों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं?
10. शून्य ही आत्मा है, ऐसा किनका मत है?
11. भाट्ट मीमांसकों के मत में आत्मा क्या है?
12. 'तत्' पद का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ क्या है?
13. 'त्वम्' पद का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ क्या है?

पाठसार

ब्रह्मतत्व का उपदेश देते हैं। अध्यारोप अपवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन सकल प्रपञ्च कारण ब्रह्म का निर्देश ही है और गौण प्रयोजन तत्वमपदार्थ शोधन है। वस्तु ब्रह्म में अवस्तु अज्ञान और उसके कार्य प्रपञ्च का आरोप अध्यारोप है। अपवाद ब्रह्मविवर्त और अज्ञान तथा उसके कार्य प्रपञ्च का ब्रह्ममात्र प्रतिपादन है। और अध्यारोप सामान्याध्यारोप और विशेषाध्यारोप, इन दो प्रकार का प्रदर्शित है। ब्रह्म में अज्ञान का तथा उससे उत्पन्न स्थूल-सूक्ष्म शरीरों का आरोप ही सामान्याध्यारोप है। विशेष-अध्यारोप तो पुत्र, शरीर आदि का तथा ब्रह्मधर्मों का आत्मा में अध्यारोप है।

सामान्याध्यारोप में आदि में गुणत्रयात्मक अज्ञान का प्रत्येक जीव में भिन्न होना, समष्टि विवक्षा तथा व्यष्टि विवक्षा द्वारा समष्टि ज्ञान और व्यष्टि ज्ञान रूप व्यवहार है। समष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ईश्वर कहलाता है, और व्यष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य प्राज्ञ है। यह अज्ञ ही कारण शरीर और आनन्दमयकोश को व्यपदिष्ट करता है। ईश्वर-प्राज्ञ रूप उपहित चैतन्यों का आधारभूत जो अनुपहित चैतन्य है वह तुरीय कहलाता है। और अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ होती है। अज्ञान आवरण शक्ति द्वारा ब्रह्म स्वरूप को ढ़क लेता है और विक्षेप शक्ति द्वारा आवृत ब्रह्म में जगत का सृजन करता है। जैसे तमः प्रधान विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी रूप पञ्च सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं। ये सूक्ष्मभूत भी तीनों गुणों से विशिष्ट हैं। इन भूतों के सात्विकांशों से श्रोत्र-त्वग्-अक्षि (नेत्र)-रसन-घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। सूक्ष्मभूतों के सात्विकांशों से मिलकर अन्तः करण उत्पन्न होता हैं संकल्प-विकल्पात्मिका अन्तः करण वृत्ति मन, और निश्ययात्मिका अन्तः करण वृत्ति बुद्धि है।

चित्त और अहंकार अन्तः करणवृत्ति भेदों में मन-बुद्धि का अन्तर्भाव होता है। आकाश आदि सूक्ष्मभूतों में रजो अंशों से वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ नामक पञ्च कर्मेन्द्रियाँ

और मिलने से पञ्च प्राण समुत्पन्न होते हैं। एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन और बुद्धि, ये सत्रह अवयवों द्वारा सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है। प्रति जीव सूक्ष्म शरीर भिन्न होते हैं। उन सूक्ष्म शरीरों का समष्टि विवक्षा से समष्टि सूक्ष्म शरीर और व्यष्टि विवक्षा से व्यष्टि सूक्ष्म शरीर, ऐसा व्यपदेश है। समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ, व्यष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य तैजस है। सूक्ष्म शरीर में ही तीन कोशों, विज्ञानमय-मनोमय-प्राणमय रूप का अन्तर्भाव होता है। जैसे बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर विज्ञानमयकोश, मन और ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर मनोमय कोश और पञ्चप्राण और कर्मेन्द्रियाँ सहित प्राणमय कोश होता है।

इन आकाश आदि पञ्चसूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण से स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं। और पञ्चीकरण प्रत्येक भूत का पञ्चात्मकत्व विधान है, सचरित्र भूतों का अनुपात मूलपाठ में दिया गया है। जिस भूत समुदाय में जिस भूत का आधिक्य है, उसका वही अभिधान है। पञ्चीकरण द्वारा समुत्पन्न स्थूलभूतों से सात ऊर्ध्वलोक, सात अधोलोक, उन लोकोचित चार प्रकार के शरीर, और उन लोकों में भोग्य अन्न, पान आदि समुत्पन्न होते हैं। प्रत्येक जीव का स्थूल शरीर भिन्न होता है। स्थूल शरीरों का समष्टि विवक्षा से समष्टि स्थूल शरीर और व्यष्टि विवक्षा से व्यष्टि स्थूल शरीर है, ऐसा व्यपदेश है। समष्टि स्थूल शरीरोपहित चैतन्य ही विराट अथवा वैश्वानर है, व्यष्टि-स्थूल शरीररोपहित चैतन्य विश्व कहलाता है। इस स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। ईश्वर-प्रज्ञ सुषुप्ति में आनन्द का अनुभव करते हैं, हिरण्यगर्भ-तैजस स्वप्न में वासना रूप सूक्ष्म विषयों का अनुभव करते हैं, और वैश्वानर-विश्व जाग्रत अवस्था में बाह्य इन्द्रियों द्वारा स्थूल विषयों का अनुभव करते हैं। समष्टि-व्यष्टि के ज्ञान में और उनसे उपहित चैतन्य का वन-वृक्ष तथा उनसे अवच्छिन्न चैतन्य के समान अभेद है।

श्रुति-युक्ति-अनुभव के आभास को आश्रित करके चार्वाकों ने आदि दार्शनिक पुत्र, शरीर आदि का आत्मा में अध्यास मानकर पुत्र, शरीर आदि का ही आत्मत्व प्रतिपादित किया है। पुत्र से आरम्भ करके शून्य पर्यन्त सभी विषयों का अनात्मत्व श्रुति और युक्ति द्वारा तथा अहं ब्रह्म इत्यादि विद्वानों का अनुभव विरोध होने के कारण।

विद्वानों द्वारा कार्य कारण से अव्यतिरिक्त कारणमात्र ही प्रतिपादित किया गया है। एवं सभी स्थूल शरीर ब्रह्माण्ड और स्थूल भोग्य वस्तु में स्थूलभूत पञ्चक मात्र होते हैं, सूक्ष्मभूत पञ्चक कारणभूत अज्ञानोपहित चैतन्यमात्र होते हैं। अज्ञान और उससे उपहित चैतन्य ईश्वर आदि और उपहित चैतन्य आधारभूत तुरीय ब्रह्ममात्र होता है। इस प्रकार अपवाद प्रदर्शित है। सृष्टि प्रक्रिया द्वारा जगत के कारण रूप में ब्रह्म निर्दिष्ट होता है।

अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा तत्-त्वम् पदों का वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थ प्रदर्शन सुकर होता है। जैसे समष्टि ज्ञान, ईश्वर, तुरीय और चैतन्य जब अभेद द्वारा प्रतिभासित होते हैं तब वह समुदाय उस पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही उस पद का लक्ष्यार्थ है। एवं व्यष्टि ज्ञान प्रज्ञ, तुरीय और चैतन्य अभेद से प्रतिभासमान त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है और अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही त्वम् पद का लक्ष्यार्थ होता है।

टिप्पणी

अतः 'तत् त्वमसि' इस वाक्य से ब्रह्म-जीव का तत्वम् पद वाच्य का लक्ष्यार्थ तुरीय ब्रह्म ऐक्य का बोध होता है।

पाठान्त प्रश्न

1. बुद्धि आत्मा है, ऐसा किनका मत है?
2. कारण शरीर का सुषुप्ति नाम कैसे है?
3. समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य का अभिधान वैश्वानर कैसे हैं?
4. जरायुज स्थूल शरीर कौन हैं?
5. पञ्चीकरण-त्रिवृत्करणों का परस्पर विरोधित्व है अथवा नहीं?
6. पृथिवी में कौन से गुण रहते हैं?
7. तेज में कौन से गुण होते हैं?
8. पञ्चीकरण के अनन्तर सभी भूतों का पञ्च-पञ्चात्मक होने से उसका अभिधान कैसे होगा?
9. प्राण क्या है?
10. व्यान क्या है?
11. देवदत्त नाम वायु कौन सी है?
12. समष्टि कारण शरीर का उत्कृष्ट उपाधित्व कहाँ से है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-22.1

1. असर्पभूत रज्जु में सर्पारोप के समान वस्तु में अवस्तु का आरोप अध्यारोप है।
2. रज्जु विवर्त सर्प का रज्जुमात्रत्व के समान वस्तु विवर्त अवस्तु का अज्ञान से प्रपञ्च का वस्तुमात्रत्व ही अपवाद है।
3. जिसमें आरोप होता है, वह अधिष्ठान है।
4. अधिष्ठान ज्ञान द्वारा आरोप्य की निवृत्ति होती है।
5. कारण के स्व स्वरूप को त्यागकर अन्यरूप प्राप्ति ही परिणाम है। और कहते हैं- 'सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृत''।

6. अपने स्वरूप को त्यागकर ही कारण की अन्यरूप प्राप्ति ही विवर्त है। और कहा जाता है- "अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृत"।

7. ब्रह्म ही आरोप्य प्रपञ्च का अधिष्ठान है।

8. यह प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है।

9. अध्यारोप-अपवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन जगत के कारणरूप से तुरीय ब्रह्ममात्र का सूचन और जगत का मिथ्या प्रदर्शन है।

10. तत्त्वपदार्थ शोधन ही अध्यारोप-अपवाद न्याय का गौण प्रयोजन है।

उत्तर-22.2

1. अज्ञान ही जगत का परिणाम उपादान है।

2. ब्रह्म ही जगत का विवर्त उपादान कारण है।

3. अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिवर्चनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित्।

4. लोहित-शुक्ल-कृष्ण अथवा सत्त्व, रजस् और तमस् गुणत्रय हैं।

5. अज्ञान अनुपलब्धि भिन्न द्वारा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण पञ्चक द्वारा गृहीत होता है।

6. अज्ञान ही कारण शरीर कहलाता है, अखिल जगत् का कारण होने और ब्रह्मज्ञान द्वारा शीर्यमाण होने से।

7. समष्टि कारण शरीर उपहित चैतन्य ईश्वर है।

8. व्यष्टि कारण शरीर उपहित चैतन्य प्रज्ञ है।

9. कारणत्व अवस्था में स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चों के अभाव के कारण जीव आनन्द बाहुल्य को अनुभव करता है, कारण शरीर और अज्ञान कोशवत् ब्रह्म की अच्छादित करता है। अत: कारण शरीर आनन्दमयकोश कहा जाता है।

10. ईश्वर-प्रज्ञ उपहित चैतन्य का आधारभूत जो अनुपहित चैतन्य है वह तुरीय चैतन्य कहा जाता है।

11. आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति।

12. ईश्वर अज्ञान रूप उपाधि प्राधान्य से जगत का उपादान कारण होता है। और स्व चैतन्य प्राधान्य से जगत् का निमित्त कारण होता है।

उत्तर-22.3

1. तम: प्रधान होने से विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से आकाश आदि पाँच सूक्ष्म भूत उत्पन्न होते हैं।

टिप्पणी

2. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के सात्त्विकांश व्यष्टि से श्रोत्र-त्वक्-नेत्र-रसना-घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और मिलने से अन्तः करण उत्पन्न होता है।

3. संकल्पविकल्पात्मिका अन्तः करणवृत्ति ही मन है।

4. निश्चयात्मिका अन्तः करणवृत्ति ही बुद्धि है।

5. चित्त का बुद्धि में और अहंकार का मन में अन्तर्भाव होता है।

6. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के रजो अंशों से, व्यष्टि से वाक्-पाद-पाणि-पायु-उपस्थ नाम पाँच कमेन्द्रिया उत्पन्न होती हैं।

7. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के रजो अंश के मिलने से पञ्च प्राण उत्पन्न होते हैं।

8. प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान पाँच प्राण हैं। किन्हीं के मत में नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त-धनञ्जय पाँच वायु हैं।

9. सूक्ष्मशरीर में सत्रह अवयव होते हैं। वे हैं- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि।

10. मन ज्ञानेन्द्रियों के सहित विज्ञानमय कोश होता है।

11. पञ्च प्राण और पञ्च कर्मेन्द्रियाँ मिलकर प्राणमय कोश होते हैं।

12. ज्ञानेन्द्रियाँ सहित मन ही मनोमयकोश है।

13. समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ है।

14. व्यष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य तैजस है।

उत्तर-22.4

1. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों की पञ्चीकरण द्वारा स्थूलभूतों की समुत्पत्ति होती है।

2. आकाश आदि पाँच भूतों में प्रत्येक भूत दो प्रकार से विभक्त होकर, प्रत्येक भूत के आदि भागों को पुनः समान रूप से चार प्रकार से विभक्त करके, उन चारों आद्य भागांशों का स्वयं तथा स्व इतर द्वितीय अंशों के साथ योजन से पञ्चीकरण होता है।

3. सात ऊर्ध्व लोक हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य।

4. स्थूल शरीर चार प्रकार के हैं- जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज के भेद से।

5. सात अधोलोक हैं- अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

6. स्वेद से उत्पन्न यूक, मशक आदि के शरीर ही स्वेदज हैं।

7. समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैत्न्य ही वैश्वानर, विराट कहलाता है।

8. विश्व।

9. मन, बुद्धि, अहंकार रूप चित्त चन्द्र-चतुर्मुख-शंकर-अच्युत द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

10. शून्यवादि बौद्धों का मत है।

11. अज्ञानोपहित चैत्न्य आत्मा है।

12. समष्टि ज्ञान, ईश्वर, तुरीय और चैतन्य जब अभेद से प्रतिभासित होते है तब वह समुदाय तत् पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही तत् पद का लक्ष्यार्थ है।

13. व्यष्टि ज्ञान प्रज्ञ, तुरीय और चैतन्य अभेद द्वारा प्रतिभासमान होकर त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही त्वम् पद का लक्ष्यार्थ है।

।।बाइसवाँ पाठ समाप्त।।

23

बहिरङ्ग साधन

प्रस्तावना

परम्परा साधनों को ही शास्त्रों में कुछ लोग बहिरङ्ग साधन ऐसा भी कहते हैं। अन्त: करण शुद्धि के जितने भी कारण है साधन है वे सभी इसके अन्तर्गत होते हैं। कर्म योगादि अनेक प्रकार के साधनों को अन्त:करण शुद्धि के कारणों को शास्त्रों में उपदिष्ट है। प्रसिद्ध परम्परा साधनों का इस पाठ में शास्त्रानुसार विवरण दिया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अद्वैतवेदान्त के अनुसार मोक्ष के परम्परा साधन कौन से हैं यह जान पाने में;
- कर्मों का और उपासनाओं का मोक्ष के उपाय रूप में अनुष्ठान कैसे करें यह जान पाने में;
- शास्त्रों में प्रसिद्ध कर्म-योगादि और परम्परा साधनों के विषय में विस्तार पूर्वक जान पाने में।

23.1 मोक्ष की परम्परा साधन

मोक्ष की परम्परा इसका अभिप्राय यह है कि मोक्ष के प्रति प्रत्यक्ष-साधनों का ब्रह्मज्ञान के उत्पत्ति में जितने परम्परा साधन होते हैं वही जानने चाहिए।

चित्त शुद्धि के कारण, साधन ही परम्परा साधन अथवा बहिरङ्ग साधन होता है यह

प्रसिद्ध है। परम्परा साधनों को अनेक प्रकार से शास्त्र में निर्दिष्ट है। ''आहार शुद्धोसत्वशुद्धि:'' यह छान्दोग्योपनिषद् में (7.26.2) सुना जाता है। यहाँ आहार शब्द की व्याख्या भाष्कार भगवत्पाद द्वारा इस प्रकार की गई है- ''आहित्रयत इति आहार: शब्दादि विषयज्ञानम् इति''। इन्द्रियों के द्वारा शुद्ध विषयों का संयमपूर्वक सेवन के द्वारा अन्त:करण शुद्ध होता है ऐसा भगवत् पूजयपाद का आशय है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्भगीता में कहा है- यज्ञ, दान, तप इन सबका कामना हित भाव से पालन करना चित्तशुद्धि के कारण होते हैं ऐसा हमें उपदेश देते हैं- ''यज्ञो दानं तपश्चैन पावनानि मनीषिणाम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता 18.5) में ''मनुमहर्षि: मनुस्मृतौ तप: चित्तशुद्धे: साधनम् भवति इति बोधपति तपसा कल्मषं हन्ति'' (मनुस्मृति 12.104) में। कर्मयोग के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है यह भी भगवान् ने गीता शास्त्र में उपदेश दिया है- ''योगिन: कर्म कृर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्मशुद्धये''।। (श्रीमद्भगवद्गीता 5.11)। ध्यान के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है यह भी भगवान ने गीताशास्त्र में कहा है- ''उपविश्यासने युत्रज्याद् योगम् आत्मविशुद्धये'' (श्रीमद्भगवद्गीता 6.12) में। योगदर्शन में प्रसिद्ध यम-नियमादि साधन से भी अन्त:करण की शुद्धि होती है ऐसा शंकरभगवत्पाद् ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्वीकार करते हैं। और भी अनेक प्रकार साधन है जो कि सत्व शुद्धि के कारण ऐसा शास्त्रों में देखा जाता है।

यहाँ पर हम सब कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, यम-नियमादि इन चार प्रकार के परम्परा साधनों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. परम्परा साधनों को और क्या कहा जाता है?
2. शास्त्र में निर्दिष्ट अनेक प्रकार के परम्परा साधन कौन से हैं?

23.2 कर्मों का और उपासनाओं का मोक्ष की प्राप्ति में उपाय रूप में पालन

ब्रह्मविद्या के द्वारा अविद्यामय संसार की निवृत्ति होती है, और नित्य, निरतिशय, आनन्द प्राप्ति महत्व प्रयोजन ब्रह्मविद्या के द्वारा सिद्ध होता है। ऐसा हमें ज्ञान हुआ। लेकिन सभी जीवों के स्वरूप ब्रह्म ही है ऐसा बार-बार सुनकर भी किस कारण से हमारे अन्त:करण में ब्रह्मविद्या उत्पन्न क्यों नहीं होती यह शंका है। वहाँ कारण हमारे अन्त:करण की मलिनता है। सत्व, रज, और तममय गुणों तथा अज्ञान से उत्पन्न अन्त:करण है सभी का। इसीलिए अन्त:करण तीन प्रकार का होता है। उन तीन गुणों में से जो सत्वगुण है वह प्रकाशक है। रजो गुण काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि को उत्पन्न करता है। और तमोगुण प्रमाद आलस्य, निद्रा, मोह आदि का जनक है। रज और तम के नष्ट हो जाने

से और सत्व गुण के आधिक्य से अन्त:करण का सभी यथार्थ वस्तुओं का बोध कराता है। रज और तम से युक्त अन्त:करण देखे गये का, हुए गये का, सुने गये का, सधे गये का, रसन क्रिया का उक्त विषयों का यथार्थ ज्ञान नहीं करा सकता। इन सभी ने ट्यूबलाईट देखी है। ट्यूबलाईट प्रकाशक द्रव्यों से परिपूर्ण है। लेकिन उसका बाह्य हिस्सा धूलादि के कारण मलिनता से युक्त है। वह अपने अन्दर निहित प्रकाशक, बाहर प्रकाश देने में असमर्थ हो जाता है। उसी प्रकार अन्त:करण बोध कराने में सक्षम सत्वगुण के रहने पर भी रज और तम से युक्त होने के कारण अशुद्ध है इसीलिए अपने अन्दर समाहित ब्रह्म को जानने में असमर्थ होता है। इसीलिए यदि हम ब्रह्मविद्या प्राप्त करना चाहते तो हमें पहले अन्त:करण की शुद्धि यत्न पूर्वक करनी चाहिए। अन्त:करण में विद्यमान सत्व गुण से रजोगुण और तमो गुण दूर करना चाहिए ऐसा अर्थ है। इसीलिए अन्त:करण की शुद्धि सत्वशुद्धि के नाम से भी जानी जाती है। जिसका सत्व शुद्धि है उसी का साधन चतुष्टय सिद्ध होता है। साधन चतुष्टय से सम्पन्न ही ब्रह्म का बोध कराने वाले वेदान्त वाक्यों को सुनकर ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं।

अन्त:करण की शुद्धि हम कैसे कर सकते हैं। योग बुद्धि के द्वारा (योगबुद्धि: निरहंकार नि:स्वार्था बुद्धि:।) यदि हम कर्मों का उपासनाओं का पालन करें तो हमारा अन्त:करण क्रम से शुद्ध होता जायेगा। प्राय: शारीरिक कर्म ही कर्म शब्द से कहाँ चला जाता है और मानसिक कर्म उपासना शब्द से व्यवहित होता है। शास्त्र में अनेक प्रकार के कर्मों को तथा उपासनाओं को बताया गया है। उन कर्मों का और उपासनाओं को विधि पूर्वक पालन करने से यदि हम सब इन कर्मों को और उपासना को केवल फल की इच्छा से ही करेंगे तो हम बार-बार कामनाओं के वशीभूत ही होते रहेंगे। कथन को स्पष्ट कर रहे हैं यदि फल की इच्छा को त्यागकर कर्म और उपासना में प्रवृत्त होने पर हमारा अन्त:करण शुद्ध और एकाग्र होगा। निर्मल और एकाग्र से युक्त अन्त:करण साधनचतुष्टय से परिपूर्ण हो जायेगा। वैसे अन्त:करण में वेदशास्त्र के श्रवण के द्वारा बह्मविद्या जागृत हो जायेगी। इसीलिए मुद्भि की कामना से निष्काम-भाव से कर्मों का तथा उपासना का पालन करना चाहिए।

काम्य, निषिद्ध, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, यह पाँच कर्म कहे गये हैं। जिन कर्मों के द्वारा अभीष्ट फल (स्वर्गादि) की प्राप्ति होती है वह कर्म काम्य कहलाता है। जिन कर्मों का नरकादि अनिष्ट फल वे जो शास्त्र के द्वारा प्रतिषेध कर्म निषिद्ध कर्म है। ब्राह्मणादि वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रम को उद्देश्य बनाकर नित्य कर्तव्य के रूप में शास्त्र द्वारा विहित जो कर्म है वह नित्य कर्म कहलाता है। पुत्र जन्मादि के जैसे कुछ विशिष्ट निमित्त को आधार बनाकर जितने भी कर्तव्य कर्म है वे सब नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं। कोई किया पाप हो तो उसके नाश के लिए जो कर्म है वह प्रायश्चित कहलाता है। इनमें से काम्य ओर निषिद्ध को छोड़कर शेष जो तीन कर्म है वह हमें करने चाहिए। इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, शास्त्र प्रसिद्ध कर्मों को श्रेष्ठ जनों के द्वारा उपदिष्ट कर्मों को मोक्ष साधन के रूप में हमें पालन करना चाहिए। इसी को वेदान्त शास्त्र में कर्मयोग कहा जाता है। कर्म योग के द्वारा चित्त के मलों का नाश होता है और उसके बाद

चित्त शुद्ध होता है। उपासना दो प्रकार की होती है- सगुण ब्रह्मविषयक और निर्गुण ब्रह्मविषयक के भेद से। सगुणब्रह्मविषयक उपासना को ही ब्रह्मविद्या का बहिरंग साधन अथवा परम्परा साधनों में गिना जाता है। निर्गुण ब्रह्मविषयक उपासना तो निदिध्यासन नाम के द्वारा प्रसिद्ध है। वह अन्तरङ्ग साधनों में अन्तर्भूत हो जाता है- ''श्रवणम् मननं निदिध्यासनञ्च ब्रह्मविद्योत्पत्तिम् प्रति अन्तरङ्ग साधनानि भवन्ति''। सगुण ब्रह्मविषयक उपासना उपनिषदों में मुख्यतया दो प्रकार के कहे गये हैं- अदृङ्ग्रहोपासना और प्रतीकोपासना के भेद से। इन दो प्रकार की उपासनाओं का अपना-अपना फल है। उन फलों में कामना को छोड़कर चित्तशुद्धि के लिए उपासना की जा सकती है। अन्त:करण की शुद्धि के द्वारा ब्रह्म विद्या को जागृति करने का उपायभूत अन्य और दो प्रकार की उपासनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। पहला ध्यानयोग और दूसरा भक्तियोग। ध्यान और भक्ति मन के द्वारा ही होती है इसलिए ध्यानयोग और भक्तियोग का मानसव्यापार रूप उपासना में अन्तर्भाव हो जाता है। ध्यान के द्वारा चित्त विक्षेपों के नाश से चित्त की एकाग्रता होती है। एकाग्रता चित्तशुद्धि को बढ़ाता हैं, और साधन चतुष्टय की उत्पत्ति में सहायता प्रदान करता है। भक्ति के द्वारा ईश्वर प्रसन्न होता है, और भगवान् की कृपा से चित्त की शुद्धि होती है, साधन चतुष्टय वेदान्त वाक्य के अर्थो का बोध कराता है, मोक्ष इत्यादि सब कुछ क्षणभर में प्राप्त हो जाता है।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. अन्त:करण कैसे शुद्ध होता है?
2. ट्यूबलाईट के दृष्टान्त के द्वारा अन्त:करण का शोधन कैसे होता, वर्णन कीजिए।
3. दो प्रकार की उपासना क्या है?
4. भक्तियोग और ध्यानयोग कैसे उपासनाओं में कैसे अन्तर्भूत होते हैं?

23.3 कर्मयोग

देह, इन्द्रिय और अन्त:करण में सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों के द्वारा अनेक प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं, इनका अध्यास वश के कारण आत्मा में प्राणि द्वारा आरोपित किया जाता है। गुणों के द्वारा होने वाले कर्म में अध्यास से संसक्त व्यक्ति कामादि के वशीभूत होकर मैं कर्म करता हूँ ऐसी कल्पना करता है। उसके बाद वह उन कर्मो के फल का भोग कर संसार का अनुभव करता है।

इस संसार से मुक्ति तो अध्यास के अत्यन्त निवृत्ति के द्वारा ही सम्भव है। देहेन्द्रियादि समूह का और आत्मन के मध्य में जो परस्पर अध्यास है वह अविद्या भी कही जाती है। अविद्या का ब्रह्मविद्या के द्वारा लम्बे समय के लिए निवर्तन करता है। ब्रह्मविद्या कामक्रोधादि का अशुद्ध मन में उत्पन्न नहीं होता। इसलिए साधन सर्वप्रथम अन्त:करण

की शुद्धि के लिए काम क्रोधादि को छोड़कर बिना संग कर्मों को करें।

बिना किसी के सङ्ग जो कुछ भी स्व इच्छानुसार करते हैं तो क्या वह कर्मयोग होता है। नहीं, अपने कर्तव्यों का कर्मों का सङ्ग के बिना पालन किया गया ही कर्मयोग कहलाता है। कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है, इसमें जब हमें संशय होता है तब शास्त्र और आचार्यों का वचन प्रमाणरूप में स्वीकार करना चाहिए। हमारे अपने कर्म, अथवा कर्तव्यकर्म अन्वय भेद के द्वारा पृथक् होते है। इसीलिए हमें शास्त्राचार्यों के वाक्यों को सुनकर विवेक-पूर्वक ही अपने धर्म का निश्चय करना चाहिए तथा वह स्वधर्म मोक्षार्थियों को योग बुद्धि के द्वारा आचरण करना चाहिए। इसीलिए भगवान गीता शास्त्र में कहते हैं-

''तस्माच्छास्त्रम् प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थिततौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकर्तृसिहा इति॥''
(श्रीमद्भगवद्गीता)

''स्वे स्वेकर्मव्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'' (श्रीमद्भगवद्गीता 18.45)
''स्वकर्मण तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः (श्रीमद्भगवद्गीता 18.46)

''श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भेयावहः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 18.47)

कर्मों का योगबुद्धि के द्वारा पालन ही कर्मयोग कहा गया है। मैं कर्ता हूँ इस प्रकार की कर्तृत्व-बुद्धि यह फल मेरा हो और फल की इच्छा के बिना वाली बुद्धि निस्वार्थता में रहती है वह योगबुद्धि कहलाती है। योगबुद्धि काम, क्रोधादि से कभी भी विचलित नहीं होती। योगबुद्धि से युक्त व्यक्ति सभी कर्मों को यत्नपूर्वक करता है। फिर भी कर्मफल की सिद्धि में उत्साहित नहीं होता, और उनके सिद्ध न होने पर रुष्ट भी नहीं होता। वह समत्वभाव से सब कुछ देखता है। इस प्रकार की बुद्धि के द्वारा यदि हम सब कर्म करें तो हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा, क्रम से साधनचतुष्टय सिद्ध होता है। इन सबको संकलितकर श्रीभगवान् ने कहा-

''योगस्थः करूकर्मणिसङ्गंत्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥''
(श्रीमद्भगवद्गीता 2.48)

कर्मयोग अभ्यसन का कोई कुकर उपाय है ईश्वरार्पण बुद्धि के द्वारा कर्मो का पालन। ईश्वर भक्त कर्मयोगी अपने कर्मों के आचरण के द्वारा भगवान् को पूजता है। वह कर्मों का फल नहीं चाहता भगवान मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे अन्तःकरण को निर्मल करे वह यही प्रार्थना करता है। इस प्रकार के कर्मयोगाभ्यास को श्री भगवान् ने गीताशास्त्र में उपदेश दिया है-

''सर्वकर्माण्यापि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पद्मव्ययम्॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
(श्रीमद्भगवद्गीता 18.56, 57)

23.3.1 कर्मयोग का फल

कर्मयोग का प्रत्यक्ष फल है चित्त शुद्धि। और परम्परा फल तो मुक्ति है। निष्काम कर्मयोग महान् पुण्यकर्म है। निष्काम कर्मयोग से जनित पुण्यों के द्वारा चित्त के पाप नष्ट होते हैं। रागद्वेषादि अथवा कामक्रोधादि चित्त के पाप हैं। यह पाप ही चित्त के मल हैं। मलिन चित्त वेदान्त वाक्यों द्वारा बताये गये आत्मस्वरूप का भलीभाँति जानने में समर्थ नहीं होता। जब साधक सङ्गरहित कर्माचारण में निष्ठा होने पर पापों का विनाश हो जाता है, और चित्त की शुद्धि होती है।

लेकिन आरम्भ में ही साधक निष्काम कर्मयोग में निष्ठावान् नहीं होता है। अभ्यास के द्वारा वह कर्मयोग में निष्ठा कर्मयोग में निष्ठावान् साधक योगारूढ़ कहा जाता है। यहाँ पर योग शब्द अर्थ कर्मयोग है। योगारूढ़ का लक्षण श्रीभगवान् ने गीताशास्त्र में बताया है-

''यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 6.4)

अन्वय यदा हिन इन्द्रियार्थेषु, अनुषज्जते, न कर्मसु (अनुसज्जते), सर्वसंकल्प सन्यासी, तदा योगारूढः उच्यते

तात्पर्य- जब सभी कर्तव्यों तथा कर्मों को करता हुआ कोई साधक सभी काम हेतुओं का त्याग करता है इन्द्रिय विषय और कर्म प्रवृत्त नहीं होता, तब वह कर्मयोगारूढ से जाना जाता है।

इस योगारूढ स्थिति को अथवा कर्मयोग निष्ठा को जब प्राप्त कर लेता है तब साधक का चित्त प्रायः शुद्ध रहता है। ''प्रायेण शुद्धम्-यद्यपि कर्मयोगेन चित्तशुद्धिः अनतिछतिउच्यते तथापि वान्तुतः कर्मयोगमात्रेण सम्पूर्ण तथा चित्तशुद्धिः न भवन्ति। ब्रह्मविद्या अथवा आत्मज्ञानेन एव चित्त सम्पूर्णतया शुद्धं भवति। चित्ते अवस्थितानि रागद्वेषादीनि मलनि आत्मज्ञानेनं एव नितान्तं विनश्यन्ति। तस्मात् कर्मयोगेन चित्तम् प्रायेण शुद्धम भवति इति उक्तम्''। चित्त शुद्धि ही इस कर्मयोगाभ्यास का प्रत्यक्ष फल है।

परम्परा के द्वारा तो कर्मयोगनिष्ठ साधक विवेक, वैराग्यादिरूप साधनचतुष्टय को प्राप्त कर वेदान्त वाक्यों का सारभूत जो आत्मस्वरूप ब्रह्म का प्रत्यक्ष करता है। ब्रह्म-प्रत्यक्ष

को ही ब्रह्मविद्या कहते है। आत्मस्वरूप विषयिनी इस विद्या के द्वारा आत्मस्वस्थविषयिणी अविद्या से निवृत्ति तथा संसार से मुक्ति होती है। यह गीताशास्त्र में श्रीभगवन् ने इस प्रकार उपदेश दिया है-

''येषांत्वन्तगतम् पापं जनानाम् पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिमुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 7.28)

अन्वय- येषाम् पुण्यकर्मणां जनानां तु पापम् अन्तगतं ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः दृढव्रताः माम् भजन्ते

तात्पर्य- कर्मयोग को ही यहाँ पर पुण्यकर्म कहा गया है रागद्वेषादि अथवा कामक्रोधादि ही पाप है। इच्छा, द्वेष आदि द्वन्द्व होते हैं। द्वन्द्वनिमित्तक मोह हमारे चित्त को वश में कर हमें पापकर्मों में प्रवृत्त कराता है। जो लोग कर्मयोग नामक पुण्यकर्म करते हैं वे द्वन्द्वमोह से मुक्त होते हैं। इसीलिए उनका पाप क्रमपूर्वक नष्ट होता है और चित्त शुद्धि होती है। कर्मयोग में दृढ़निश्चय भक्त रखने वाले वे साधक परमात्मा को ही सदा सर्वदा भजते हैं। ब्रह्मविद्या के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर उसमें ही रमते हैं।

23.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का उपदेश

''गीतासुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयम् पद्मना अस्य मुखपद्माद् निनिः सष्टताः॥''

इस प्रकार मुक्ति ही कर्मयोग के परम्परा के द्वारा प्राप्त होने वाला फल है ऐसा जानना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता को विद्वान जन कर्मयोग कहते हैं। आत्मस्वरूप बोध के लिए जो साधन मार्ग है वही योग कहलाता है। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीताशास्त्र में अनेक प्रकार के योगों के सार का उपदेश दिया है, फिर भी कर्मयोग के विषय में भगवान् के द्वारा दिया गया उपदेश अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसीलिए लोक में भी प्रसिद्ध है -भगवद्गीता हमें अपने कर्मों का शंका रहित पालन करना चाहिए ऐसा बोध कराती है। गीताशास्त्र में शुरू से लेकर अनत तक कर्मयोग से सम्बन्धित श्लोक हैं। जैसे -

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतु र्भूःमाते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (अध्याय 2, श्लोक 47)

अन्वय- कर्मणि एव अधिकारः। कदाचन फलेषु मा (ते अधिकारः स्यात्) कर्मफल हेतुः मा भूः। अकर्मणि ते सन्नः मा अस्तु॥

तात्पर्य- जिसका चित्त शुद्ध है वही कर्मो के परित्याग का अधिकारी है। कर्मों को त्यागकर शुद्ध चित्त साधन चतुष्टय में अन्तर्भूत शमादि को बढ़ाता है। इसीलिए जिसका

चित्त शुद्ध नहीं है वही आकांक्षा के द्वारा जो कर्म करता है उसका चित्त शुद्ध नहीं होता। इसलिए चित्त शुद्धि की कामना वाला जो व्यक्ति है केवल कर्म में ही अधिकार है न कि कर्मफलों में। वह कर्मफलों का स्वयं कारण न बनें, कर्मफल की इच्छा का त्याग करे यह अर्थ है। कर्म फल का परित्याग करना चाहिए। इसका आशय यह है कि कभी कोई भी कर्म को त्यागे इस का विचार कर भगवान् विशेषरूप से उपदेश देते हैं- तुम्हारे अकर्म सफल ना हो। कर्मों का त्याग कर आलस्य मत बनो। कर्म पालन के बिना चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती। इसलिए कर्मफल में जैसे सङ्ग नहीं होना चाहिए, वैसे ही कर्मों के पालन में भी सङ्ग ठीक नहीं है।

''योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गत्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं भोग उच्यते॥ (अध्याय 2, श्लोक 48)

अन्वय- (हे) धनञ्जय, योगस्थः (सन्) सन्नत्यक्त्वा सिद्धसिद्धयोः समः भूत्वा (च) कर्माणि करू। समत्वं योगः उच्यते।

तात्पर्य - कर्तृत्व बुद्धि और फल की अभिलाषा से रहित अन्तःकरण का जो समत्व है वही योग है। योग को आधार बनाकर के ही सभी प्रकार के सङ्ग का त्याग कर सकते हैं। योग में स्थित रहना और सङ्ग का त्याग जो चाहता है वह कर्ता कर्मफलों की सिद्धि और असिद्ध में सम होना चाहिए। वहा कारण यह है- समत्व ही योग कहलाता है।

23.4 यह अभ्यास के लिए है (परीक्षा हेतु नहीं है)

न हि काश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ (अध्याय 3, श्लोक 5)

कर्मेन्द्रियाणि संयम्यय आस्तेमनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 6)

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभवेऽर्जुन।
कमैन्द्रियैः कर्मयोगम् असक्तः स विशिष्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 7)
यज्ञार्थात् कर्मणोन्यत्र लोकेऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मूक्तसङ्गः समाचार॥ (अध्याय 3, श्लोक 9)
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरूषः। (अध्याय 3, श्लोक 19)
प्रकृतेः क्रियामाणनि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

टिप्पणी

अहङ्कारिविमूढात्मा कर्ताहमितिमन्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 27)
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभाग्योः।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ (अध्याय 3, श्लोक 28)
मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ (अध्याय 3, श्लोक 30)
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ (अध्याय 3, श्लोक 34)
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (अध्याय 3, श्लोक 35)

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितम् बुधाः॥ (अध्याय 4, श्लोक 19)

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्ग नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैवकिञ्चित्करोति सः॥ (अध्याय 4, श्लोक 20)

निराशीर्यताचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्॥ (अध्याय 4, श्लोक 21)

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ (अध्याय 4, श्लोक 22)

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (अध्याय 5, श्लोक 10)

कायेन मनसा बुद्धया केवलौरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये॥ (अध्याय 5, श्लोक 11)

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शन्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फलं सक्तो निबध्यते॥ (अध्याय 5, श्लोक 12)

आरूरूक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ (अध्याय 6, श्लोक 3)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (अध्याय 6, श्लोक 4)

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 5)

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितम् मतमुत्तमम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 6)

कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्ग त्यक्त्वा फलंचैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ (अध्याय 18, श्लोक 9)

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ (अध्याय 18, श्लोक 11)

यतः प्रवृतिभूतिनां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (अध्याय 18, श्लोक 46)

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्मिषम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 47)

23.4.1 कर्मयोग के महत्व के विषय में स्वामी विवेकानन्द द्वारा किया गया उद्‌बोधन

अपने कर्तव्य कर्मों की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए, किसी को भी अपने कर्तव्यों का त्याग नहीं करना चाहिए, योगबुद्धि के द्वारा उसका पालन करना चाहिए। यह स्वामी विवेकानन्द जी भी हमें बता रहे हैं। कर्मयोग को आधार बनाकर स्वामी जी ने पाश्चात्य देश मे अंग्रेजी भाषा में बोले गये भाषणों से कुछ अंश हिन्दी भाषा में परिवर्तन नीचे दिये जा रहे हैं।

उन्नति, लाभ का एक ही उपाय है- हमारे पास जो कर्तव्य है उसका पालन उसके द्वारा शक्ति एकत्र कर क्रमपूर्वक परमपरा की और जाना चाहिए। जो अध्यापक हमेशा अर्थहीन जो कुछ भी कहता हैं उससे भी ज्यादा जो मोची है कम समय में चप्पल बनाकर देता है वह श्रेष्ठ है।

कोई युवा संन्यासी वन में गया। उस संन्यासी ने बहुत समय तक ध्यान, भजन और योगाभ्यास किया। बहुत वर्षों तक कठोर तपस्या कर किसी दिन वह पेड़ के नीचे बैठा। उस समय उसके सिर पर सूखे पत्ते गिरें। ऊपर देखते हुए उसने काले कौआ और एक बगुला को देखा। कौआ और बगुला आपस में लड़ रहे थे। उन दोनों को देखकर उन बहुत क्रोध आय। उन्होंने कहा-क्या तुम दोनों ने मेरे सिर पर सूखे पत्ते गिराने का साहस किया। इस प्रकार कहकर जब वह क्रोध के द्वारा उन दोनों को देखा तब उनके मस्तक से कुछ अग्निरश्मि के द्वारा उन दो पक्षियों को भस्म किया। उनके द्वारा किए गये योगीयास का इतना तेज था। वह बहुत आनन्दित हुए। मेरे पास ऐसी शक्ति विकसित हुई कि केवल देखते मात्र से काक और बगुला भस्म हो जाते हैं ऐसा विचार कर वह अत्यन्त आनन्द में विह्वल हो गए।

कुछ समय बाद भिक्षाटन के लिए उन्हें नगर जाना पड़ा। किसी के घर के सामने बैठकर वह बोले- हे माता मुझे भिक्षा दो। अन्दर से उत्तर आया- वत्स कुछ समय प्रतीक्षा करें। उस युवक ने सोचा- ये अभागन। कितना दु:साहस के द्वारा मुझे प्रतीक्षा करने को कह रही है। तू अब भी मेरी शक्ति को नहीं जानती। जब वह इस प्रकार विचार कर रहा था तब वही कण्ठध्वनि फिर से सुना- हे वत्स तुम अपने विषय में ज्यादा मत सोचो। यहाँ कौआ या बगुला नहीं है। वह आश्चर्य चकित हो गया। फिर भी उसको प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह महिला अन्दर से बाहर आई। वह उस महिला के पाँवों में गिरकर पूछा- हे माता तुम कैसे वह जानती हो। उस महिला ने कहा- हे तात मैं तुम्हारे योग अथवा तप कुछ भी नहीं जानती। मैं कुछ अलग तरह ही औरत हूँ। (A common everyday woman : a simple lady) तुम्हें प्रतीक्षा करने के लिए कहा क्योंकि मेरे पति रोग से पीड़ित है। मैं उनकी सेवा में तत्पर थी। मैं अपने पूरे जीवन काल में मेरे कर्तव्यों का पालन करने में तत्पर रहती हूँ। विवाह से पहले माता पिता के प्रति जो कर्तव्य पुत्री का होता है वह मैंने किया। अब जिनसे मेरा विवाह हुआ है उनके प्रति जो मेरे कर्तव्य है वह कर रही हूँ। मेरा बस इतना ही योगाभ्यास है। किन्तु कर्तव्य कर्मो के पालन से मुझे ज्ञान चक्षु प्राप्त हुई है। इसलिए मैं तुम्हारे मनोभाव को तथा जंगल में तुम्हारे द्वारा किया गया कृत्य सब कुछ जानती हूँ। इससे भी अधिक कुछ जानना चाहते हो तो पास ही के दूसरे नगर के बाजार में जाओ। वहाँ तुम किसी बहेलिया को देखोगे। वह तुमको उपदेश देगा, जिसको पाकर तुम आनन्दित हो जाओगे।

उस संन्यासी ने सोचा- उस नगर में किसी बहेलिया के पास क्यों जाऊँगा। लेकिन गृहिणी के साथ जो घटना घटी उससे उसमें कुछ ज्ञान का उदय हुआ था। इसलिए वह बहेलिया को देखने गया। उसके नगर के निकट आकर व्यापारी को देखा। दूर से ही संन्यासी ने वहाँ देखा-कोई हहा+कहा बहेलिया अच्छे से बैठकर मांस के टुकड़े कर रहा है। वह बहुत से लोगों से तेज आवाज में मूल्यादि विषय में कहता हुआ माँस बेच रहा था। युवा संन्यासी ने सोचा- हे भगवान मेरी रक्षा करो। क्या मुझे इसके पास से मुझे विद्या ग्रहण करना होगा। ये तो किसी पिशाच का अवतार प्रतीत होता है। इसी बीच उस बहेलिया ने मुख इधर-उधर करते हुए संन्यासी को देखकर बोला-हे स्वामी, क्या उस महिला ने आपको यहाँ भेजा है। जब तक मैं विक्रय नहीं कर लेता तब तक आप बैठे। यहाँ मेरा क्या होगा यह विचार कर सन्यासी बैठ गया। बहेलिया अपने कर्म में व्यस्त हो गया। माँस बेचकर तथा धन संग्रहकर के वह सन्यासी से बोला-आइए श्रीमान् मेरे घर पधारे। घर में पहुँचकर उस बहेलिया ने उन्हें आसन प्रदान कर बोला-यहाँ प्रतीक्षा करे। उसके बाद उस व्याध ने घर में प्रवेश कर अपने माता और पिता को स्नान करवाया। उसने माता और पिता को भोजन करवाया, उन दोनों को तृप्त करने के लिए हर प्रकार की व्यवस्था की। उसके बाद उस संन्यासी के पास आकर पूछा-आप यहाँ मुझे देखने आए हैं। कहिए मैं आपके लिए क्या सेवा कर सकता हूँ। उस संन्यासी ने आत्मा और परमात्मा विषयक कुछ प्रश्न किए। उसके उत्तर रूप में जो कुछ उस व्याध ने कहा वह अंशरूप में महाभारत के व्याध्र गीता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह

व्याध गीता बहुत अच्छी वेदान्त विद्या है, तथ दर्शन की पराकाष्ठा है। तुम सबने श्रीमद्भगद्गीता सुनी है वह श्रीकृष्ण का उपदेश है। भगवद्गीता को पढ़कर तुम सबको इस व्याध गीता को पढ़ना चाहिए। यह वेदान्त दर्शन का चूडामणि है।

व्याध का उपदेश समाप्त होने पर वह संन्यासी बहुत विस्मित हो गया। उसने व्याध से पूछा-तुम्हारे पास इतना अच्छा ज्ञान है, फिर भी इस व्याध शरीर को अपनाकर इस प्रकार कुप्सित कार्य को क्यों करते हो। तब व्याध ने उत्तर दिया-वत्स कोई भी कार्य कुत्सित नहीं है। कोई भी कर्म अपवित्र नहीं है। यह कार्य मेरे वंश परम्परा का है, यह मुझे प्रारब्ध से प्राप्त है। बाल्य अवस्था से ही मैंने यह कार्य का अभ्यास किया है। अनासक्त होकर मैं अपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर रहता हूँ। मैं योग नहीं जानता, संन्यास दीक्षा भी नहीं ली है। मैं कभी भी सांसारिक जीवन का परित्याग कर वन में भी नहीं गया। फिर भी मैंने सामाजिक स्थिति को आधार बनाकर मेरे जो कर्तव्य है उसको अनासक्त भाव से पालन करता है, मैंने यह ज्ञान प्राप्त किया है।

इस कहानी में बहेतिया और महिला आनन्द तथा आत्मसमर्पणपूर्वक अपने कर्तव्य कर्म को करते है। फलस्वरूप उन दोनों का आत्मज्ञान होता है। इस से यह स्पष्ट है कि जिस किसी आश्रम का (आश्रम चार होते हैं- ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के भेद से) कर्म करो, बिना सङ्ग के अपने कर्तव्य-कर्म का पालन से हम सबको आत्मस्वरूप विषयणी उस परम तत्व की अनुभूति हो। (आत्मस्वविषयी परमतत्व की अनुभूति ही ब्रह्म विद्या कही जाती है) प्राप्त करेंगे।

हमारे कर्तव्य प्रधानरूप से हमारे आस-पास की स्थिति के अनुरूप निर्धारित होते हैं। कर्तव्य कर्म का स्वभाव से ही लाघव या गौरव नहीं होता। सकाम कर्ता अपने भाग्य में जो कर्तव्य कर्म करना पड़े तो उससे असन्तुष्ट रहता है। लेकिन अनासक्त कर्ता सभी कर्तव्य समान तथा अच्छे होते हैं। वे अमोध अस्त्र होकर स्वार्थी और इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण नष्ट होते हैं, उसके बाद वह साधक मुक्ति के मार्ग में आगे बढ़ता है।

पाठगत प्रश्न 23.3

1. कर्मयोग क्या है?
2. योगबुद्धि क्या है तथा उसके द्वारा क्या सिद्ध होता है?
3. कर्मयोग का क्या फल है, तथा वह कैसे प्राप्त होती है?

23.5 ध्यान योग

ध्यान योग को कुछ लोग उपासना भी कहते हैं बहिरङ्गसाधन रूप ध्यानयोग में सगुणब्रह्मविषयक उपासना हम सब ग्रहण करते हैं।

वेदान्तसार नामक ग्रन्थ में सदानन्द योगीन्द्र कहते हैं- ''उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापार रूपाणि शाण्डिल्या विद्या दीनि इति।'' सभी प्राणियों में आत्मस्वरूप ब्रह्म निर्गुण है। तथापि शास्त्र अथवा आचार्य के द्वारा उपासना के सौकार्य ब्रह्म में नाम और रूप की कल्पना करते हैं। इस प्रकार उपासना के सौकर्यार्थ कल्पित नाम और रूप वाला जो ब्रह्म है वह सगुण होता है यह बात शास्त्रों में प्रसिद्ध है। विष्णु, शिव, दुर्गा इत्यादि देवता सगुणब्रह्म के भिन्न-भिन्न रूप हैं हमारे ईष्ट सगुणब्रह्म रूप को आधार बनाकर हम सब गुरू के उपदेशों का अनुसरण करते हुए उपासना कर सकते हैं। यह उपासना मन से ही की जाती है। इसलिए उपासना मन का व्यापार है।

''शाण्डिल्यविद्या नाम से विख्यात एक उपासना छान्दोग्योपनिषद् में दिखाई देती है। शाण्डिल्यविद्या यहाँ पर विद्या इस शब्द का अर्थ उपासना है।''

23.5.1 ध्यान योग का अभ्यास करना चाहिए

चित्त शुद्धि अथवा अन्त:करण शुद्धि क्रम से अभ्यास के द्वारा सम्पादन करना चाहिए। पहले कर्मयोग का अभ्यास करना चाहिए, उसके बाद ध्यानयोगाभ्यास करना चाहिए। तो केवल कर्मयोग के द्वारा ही चित्त शुद्ध होता है, क्यों ध्यानयोग का भी अभ्यास करना चाहिए ऐसी शंका होती है। तो कहते हैं- अत्यन्त एकाग्रचित्त तथा केवल कर्मयोग के माध्यम से अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्यों को तो ध्यान योगाभ्यास भी विशेष रूप से करना चाहिए। चित्त की शुद्धि चित्त के मलों का और चित्त विक्षेपणों के नाश के द्वारा ही सम्भव है। चित्तमल का नाश प्राय: कर्मयोगाभ्यास के द्वारा होता है। चित्तविक्षेपणों का नाश तो ध्यानयोग से होता है।

पूर्व पूर्व जन्म के सुकृत् और दुष्कृत जो चित्त में रहते है वह चित्तमल कहे जाते हैं। बिना किसी सङ्ग के कर्मयोग का पालन करने से यह नष्ट होते है। इस प्रकार चित्त क्रम से शुद्ध होता है। लेकिन जब तक चित्तविक्षेपों का नाश नहीं हो जाता तब तक चित्त शुद्धि नहीं होती ऐसा जानना चाहिए। निर्मल और एकाग्रचित्त शुद्ध कहाँ जाता है। विक्षेपयुक्त चित्त एकाग्र नहीं होता। एकाग्र रहित चित्त पूर्णरूप से शुद्ध नहीं होता। इसलिए चित्त शुद्धि के लिए चित्त विक्षेपों को रोकना चाहिए। चित्त के विक्षेप है- काम, क्रोध आदि (कामक्रोधद्य: मनोविक्षेपा: क्वचित् रागद्वेषादिशब्दै: अपि उच्यन्ते।) उन विक्षेपों के संस्कार कारण होते है। संस्कारों के द्वारा विक्षेप नामक चित्तवृत्ति बार-बार उत्पन्न होते है। चित्त का वर्तन ही वृत्ति है। कभी-कभी चित्त कामरूप के द्वारा होता है। कभी क्रोधरूप में रहता है। फिर कभी लोभ रूप में। जब चक्षुरादि इन्द्रियाँ बाहर के साथ सम्बन्ध बनता है। तब चित्त अथवा अन्त:करण में काम, आदि वृत्तियां उत्पन्न होती है। ईप्सित किसी वस्तु को देखने पर मन कामरूप में है। जो ईप्सित नहीं है उसको देखने पर मन क्रोधरूप में रहता है। इसी प्रकार प्रतिक्षण जो है अन्त:करण में काम, क्रोध आदि रूप रहते है। इन्हीं कामादि वृत्तियों के कारण अन्त:करण विक्षिप्त होता है। इसलिए

टिप्पणी

यह वृत्तियाँ ही चित्त के विक्षेप होते है। विक्षेपों का जब संस्कारों के साथ क्षीण होता है तब अन्त:कारण एकाग्र होता है। एकाग्र अन्त:करण ही विशुद्ध होता है। चित्त की एकाग्रता के लिए ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिए। ध्यानभ्यास के द्वारा चित्त में रहने वाले विक्षेपकारणों का तथा संस्कारों का तब जाकर विक्षेपों का नाश सम्भव होता है।

23.5.2 श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यानयोग का उपदेश

आरूकक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 3)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्प संन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 4)

योगी युञ्जीत सततं आत्मानं रहसिस्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 10)

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिर गासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 11)

तत्रैकाग्रमनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 12)

पाठगत प्रश्न 23.4

1. उपासन का वेदान्त सार में प्रोक्त लक्षण क्या है?
2. चित्तवृत्ति क्या है?
3. चित्तविक्षेप क्या है?
4. चित्तविक्षेप किससे निरोदृव्य हैं?
5. ध्यान योगाभ्यास किसलिये होता है?

23.6 भक्ति योग

विषय वस्तुओं में विराग और ईश्वर में अनुराग भक्ति कहलाती है। भगवान में परम प्रेम ही भक्ति है, ऐसा नारद भक्ति सूत्र में प्रोक्त है। नारद् प्रह्लाद इत्यादि बहुत पुराण प्रसिद्ध भगवत्भक्तों की कथाएँ सुनी जाती है। पुरा अल्वर प्रसिद्ध विष्णुभक्त थे, न्यनार नामक शिवभक्त और द्रविड़ में भक्तिमार्ग के प्रवर्तक थे। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, कनकदास, पुरन्दरदास, अक्कमहादेवी, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, चैतन्य महाप्रभु इत्यादि गणनीय भगवत्भक्तों ने भारतवर्ष के भिन्न प्रान्तों में भक्तिवेदान्त को प्रचारित किया।

23.6.1 बहुधा भक्ति

लोक में कुछ भक्त होते हैं जो रोग आदि दु:खों की निवृत्ति अथवा धन आदि विषय की प्राप्ति की इच्छा करते हुए ईश्वर को भजते हैं।

कुछ तो स्वाभीष्ट रूप में ईश्वर को देखकर उनका निरन्तर ध्यान करते हैं। कुछ पुन: केवल आत्मज्ञान की ही इच्छा करते हुए भगवान में भक्ति करते हैं। अन्य में कुछ अल्पल्प ''भगवान मेरी और अन्य भूतों की अन्तरात्मा हैं?'', ऐसा ज्ञान व्याप्त करें सर्वात्मस्वरूप शुद्ध उस ब्रह्म में भक्तियुक्त होकर निवास करते हैं। श्रीकृष्ण भगवान चार प्रकार के भक्तों का निर्देश करके उनमें यह जो ज्ञानी है, वही श्रेष्ठ भक्त है, ऐसा कहते हैं-

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासरर्थार्थी ज्ञानी च भतर्षभ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिरूयते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम् अहं स च मम प्रिय:॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7, श्लोक 16-17)

अन्वय- हे भरतर्षभ, (हे) अर्जुन, आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के सृकृति युक्त लोग मुझे भजते हैं। उनकी नित्य युक्त एक भक्ति वाला (पवित्र कर्म करने वाले) ज्ञानी विशिष्ट (श्रेष्ठ) होता है। क्योंकि ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे प्रिय है।

शब्दार्थ- भरतर्षभ = भरतकुलीनों में श्रेष्ठ, आर्त: = दु:खिता, जिज्ञासु: = ज्ञानेच्छुक, अर्थार्थी = धन का इच्छुक, सुकृतिन: = पुण्यवान, नित्ययुक्त = जो नित्य है, उसके साथ परमात्मा युक्त है, एकभक्ति = एकनिष्ठा भक्ति के साथ, विशिष्यते = श्रेष्ठ है।

23.6.2 निर्गुण ब्रह्मविषयी भक्ति

मोक्ष कारणसामग्र्याम् भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानम् भक्तिरित्यभिधीयते॥ (विवेकचूड़ामतिण : 32)

अन्वय- मोक्षकारण सामग्री में भक्ति ही श्रेष्ठ है। अपने स्वरूप के अनुसन्धान को भक्ति कहा जाता है।

शब्दार्थ - कारणसामग्री = साधनसमूह, गरीयसी = श्रेष्ठ, स्वस्वरूपानुसन्धानम् = स्वयं को जो स्वरूप है, उसका अनुसन्धान, आत्म = स्वरूप ब्रह्म का अनुसन्धान, अनुसन्धानम् = विचार, अभिधीयते = कहा जाता है।

तात्पर्य- मोक्ष के जो साधन होते हैं उनमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। वह भक्ति क्या है? आत्मस्वरूप ब्रह्म का स्वरूप-अनुसन्धान ही भक्ति है। शंकरभगवत्पाद के द्वारा यह यहाँ निर्गुण ब्रह्म-विषयक भक्ति कही गई है।

आत्म स्वरूप के अनुसन्धान रूप भक्ति क्रमशः आत्मस्वरूप के ज्ञान रूप में परिणत होती है। निर्गुण ब्रह्म में पूर्व यत्न से की गई यह भक्ति अभ्यास द्वारा साधक के अन्तःकरण में दृढ़ होती है। सुदृढ़ यह निर्गुण ब्रह्म विषयक भक्ति (निर्गुण ब्रह्म विद्या) संसार हेतुभूत निर्गुण ब्रह्म विषयक अविद्या को नष्ट करती है। और उससे मुक्ति होती है।

भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18, श्लोक 55)

सभी प्राणियों के आत्मरूप में अवस्थित जो निर्गुण ब्रह्म है वही श्रीभगवान् का वास्तविक स्वरूप है। यह जगदीश्वर के वास्तविक स्वरूप को हम ब्रह्मविद्या द्वारा ही जानते हैं। इस प्रकार भक्ति के द्वारा मुझे जानते हैं, ऐसी यहाँ श्रीभगवान् द्वारा उक्त जो भक्ति है वही ब्रह्मविद्या है।

ब्रह्मविद्या रूप यह निर्गुण ब्रह्म विषयक भक्ति चतुर्थ प्रकार की भक्ति है, ऐसा भी कहा जाता है। आर्त की भक्ति प्रथम, जिज्ञासु की भक्ति द्वितीय, अर्थार्थी की भक्ति तृतीय और ज्ञानियों की भक्ति चतुर्थ प्रकार की होती है। इस भक्ति के द्वारा साधक मुक्त होता है।

निर्गुण ब्रह्म में भक्तिमत का लक्षण है-

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करूण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

टिप्पणी

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी योमद्भक्तः स मे प्रियः॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

समः शत्रै च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुः खेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मोनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 12, श्लोक 13-19)

23.6.3 सगुण ब्रह्मविषयक भक्ति

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् इत्यादि श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् द्वारा गीताशास्त्र में वर्णित जो निर्गुण ब्रह्मभक्त है वह आत्मज्ञानी ही है। अत्यन्त शुद्धचित्तों तथा उसके समान महात्माओं के द्वारा ही सर्वात्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्म में यथायथम् ज्ञानरूप भक्ति की जा सकती है। अन्यों के द्वारा निर्गुण ब्रह्मभक्ति लाभ के लिये तथा ब्रह्मविद्या की कामनाओं के लिये आदि में सगुण ब्रह्म में भक्ति अभ्यसनीय है।

सर्वात्मभूत परम ब्रह्म में उपासना के सुकरता के लिये शास्त्र अथवा आचार्य के द्वारा, नाम, रूप आदि कल्पित होते हैं। वह ही उपास्य ब्रह्म और सगुण ब्रह्म वेदान्त शास्त्र में प्रसिद्ध है। शास्त्र को अवलम्बित करके जीवों के द्वारा किये अन्तःकरण में होने वाली भावनाओं के द्वारा सभी के आत्मस्वरूप जो ब्रह्म है वह निर्गुण भी सगुण होता है। सगुण ब्रह्म में क्रियामाण प्रेम (किया जाने वाला प्रेम) सगुण भक्ति कहलाता है।

शुद्ध ब्रह्म का ही भक्तों की भावना के अनुरूप रामरूप में, कृष्ण रूप में, शिवरूप में और दुर्गा के रूप में आविर्भाव होता है। और इस प्रकार विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश, सरस्वती इत्यादि देवता सगुण ब्रह्म के भिन्न रूप होते हैं। इन देवताओं की भजन, उपासना विधि का विवरण पुराण आदि शास्त्रग्रन्थों में दिखता है। उपासकों की भक्ति की वृद्धि के लिये इन देवताओं की अवतारकथाएँ, लीलावर्णन इत्यादि उन ग्रन्थों में विस्तृत हैं।

सगुणब्रह्म में फल कामना से जो भक्ति करते हैं, वे उस फल को प्राप्त करते हैं। किन्तु उनकी चित्तशुद्धि नहीं होती है। अतएव श्रीभगवान् ने गीताशास्त्र में कहा-

"यो यो यां यां तनूम् भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हितान्॥'' (7/21,22)

नारदभक्ति सूत्र में भक्ति इस प्रकार निरूपित है- सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। इस ईश्वर में परम प्रेम ही भक्ति का रूप है, ऐसा नारद महर्षि हमें बोध कराते हैं। भगवान को जो परम प्रेम से भजते हैं वे भगवान कृपा से शुद्धचित्त वाले होकर ब्रह्मविद्या को व्याप्त करके संसार से मुक्त होत हैं। यह श्रीभगवान् स्वयं गीताशास्त्र में प्रतिज्ञा करते हैं-

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

तेषां सततयुक्तानाम् भजताम् प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (10/9,10,11)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ (12/6,7)

23.6.4 भागवत प्रसिद्ध नविध भक्ति

सगुण ब्रह्म में भक्ति कैसे अभ्यास करनी चाहिए, ऐसी जिज्ञासा होती है। नौ सोपानों द्वारा समन्वित कोई भक्तिमार्ग श्रीकृष्ण के भक्तों के लिये भागवत महापुराण में निरूपित होता है। यह भक्ति नवधा भक्ति है, ऐसा प्रसिद्ध है। इन मार्ग से हम न केवल श्रीकृष्ण में अपितु हमारे अभीष्ट सगुण ब्रह्म के जिस किसी भी रूप में भक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भागवत महापुराण 7.5.23)

श्रवण - विष्णु के सर्वव्यापी ईश्वर के नाम और महात्म्य का श्रवण।

कीर्तन - भगवान के गुणों और नाम का संकीर्तन और गान।

स्मरण - भगवान के विषय में ही सर्वदा स्मरण।

पादसेवन - भगवान के पादपद्मों की सेवा

अर्चन - भगवान की पूजा।

वन्दन – नमस्क्रिया।

दास्य – भगवान का दास रूप में आचरण।

सख्य – भगवान के साथ सौहार्द।

आत्मनिवेदन – भगवान में आत्म-समर्पण।

23.6.5 भक्तियोगविषयकाः श्लोकाः

पत्रम् पुष्पम् फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहम् भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9.26)

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम्॥ (9.27)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि तो तेषु चाप्यहम्॥ (9.29)

अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥ (9.30)

क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ (9.31)

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद् भाव्यम् भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।

एतत् प्रार्थ्यम् मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरूहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

(राजा कुलशेखरः मुकुन्दमालास्तोत्रे)

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥ (श्रीकृष्णचैतन्यः शिक्षाष्टके)

पाठगत प्रश्न 23.5

1. भक्ति क्या है?
2. भगवद्गीता के अनुसार चार प्रकार के भक्त कौन हैं?
3. निर्गुणब्रह्मविषयी भक्ति क्या है?

4. सगुण ब्रह्मविषयी भक्ति क्या है?

5. नवविधा (नवधा) भक्ति प्रख्यापक भागक्तश्लोक क्या है?

23.7 यम, नियम आदि

छः वैदिक दर्शनों में योगदर्शन अन्यतम है। महर्षि पतञ्जलि इस दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। पतञ्जलि महर्षि द्वारा प्रणीत योगसूत्र नामक ग्रन्थ में अष्टांग योग मार्ग वर्णित है। इस योग के आठ अंग अथवा सोपान हैं, अतः यह योग अष्टांग योग नाम से प्रसिद्ध है। पातञ्जल योग के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन आठ अंगों में यम से आरम्भ होकर प्रत्याहार तक जो अंग हैं, वे अन्तःकरण शुद्धि के द्वारा साधन चतुष्टय की उत्पत्ति के प्रति उपाय होते हैं, ऐसा वेदान्त दर्शन के आचार्य स्वीकार करते हैं।

इन अगों में यम आदि अगों का अर्थ नीचे प्रदर्शित है-

यम	अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पाँच यम शब्द द्वारा कहे जाते हैं।
नियम	शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्राणिधान, ये पाँच नियम शब्द द्वारा कहे जाते हैं।
आसन	स्थिरता और सुख से दीर्घकाल तक उपवेशन (बैठना) जैसे सम्भव होता है, वैसे हाथ, पैर आदि का संस्थापन आसन कहलाता है। पद्मासन, स्वस्तिकासन, इत्यादि नामों के द्वारा बहुत प्रकार के आसन प्रसिद्ध हैं।
प्राणायाम	रेचक, पूरक, कुम्भक, ये तीन उपायों के द्वारा किया जाने वाला प्राण निग्रहार्थक अभ्यास प्राणायाम रूप में व्यपदिष्ट है।
प्रत्याहार	विषय वस्तुओं के द्वारा इन्द्रियों का प्रत्याहरण प्रत्याहार कहलाता है।

पाठगत प्रश्न 23.6

1. यम क्या हैं?

2. नियम क्या हैं?

3. प्रत्याहार का क्या लक्षण है?

टिप्पणी

23.8 परम्परा साधनों का फल

परम्परा साधन चित्तशुद्धि के कारण होते हैं, ऐसा पूर्व में ही आपाततः प्रोक्त है। वस्तुतः एक-एक भी परम्परा साधन चित्त में भिन्न-भिन्न सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। चित्त में स्थित पुण्य, पाप आदि मलों का नाश कर्मयोग से होता है। चित्त के जो विक्षेप हैं उनका क्षय उस एकाग्रता और ध्यानयोग का फल है। भक्तियोग के यह दो फल हैं। यम, नियम आदि का भी वही है।

कर्म योग	–
ध्यान योग	–
भक्ति योग	अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा साधन चतुष्टय सम्पत्ति
यम, नियम आदि	वेदान्तवाक्यों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा ब्रह्म विद्या की उत्पत्ति

पाठसार

चित्तशुद्धि के कारण रूप साधन ही परम्परा साधन अथवा बहिरंग साधन कहलाते हैं। कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, यम, नियम इत्यादि नाना प्रकार के परम्परा साधन शास्त्र में निर्दिष्ट हैं। कर्तत्व बुद्धि और फलाभिसन्धि को वर्जित करके योग-बुद्धि के द्वारा नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित आदि कर्मों का समानुष्ठान कर्मयोग कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म की उपासना में ध्यान और भक्ति का अन्तर्भाव होता है। तथापि ध्यान योग उपासना शब्द से अधिक निर्दिष्ट है। निर्गुण ब्रह्म स्वरूप का अनुसन्धान अथवा सगुण ब्रह्म में प्रेम भक्ति है, ऐसा कहा जाता है। यम आदि पतञ्जलि के अष्टांग योग मार्ग में प्रसिद्ध हैं। कर्मयोग आदि में एक अथवा एकाधिक साधन से जिसका अन्तःकरण प्रायः शुद्ध होता है, उसमें ही सहकारी साधन प्रकाशित होते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. शास्त्र में निर्दिष्ट नाना प्रकार के परम्परा सम्बन्ध कौन से हैं?
2. अन्तःकरण कैसे शुद्ध होता है, यह विद्युतदीप दृष्टान्त द्वारा वर्णित करें।
3. उपासना क्या है, दो प्रकार की उपासना क्या है? भक्तियोग और ध्यानयोग कैसे उपासना में अन्तर्निहित हैं?
4. कर्मयोग का क्या फल है, और वह कैसे प्राप्त होता है?

2. उपासना का वेदान्त सार में प्रोक्त लक्षण क्या है?
3. चित्तवृत्ति क्या है?
4. चित्तविक्षेप क्या है, वे किससे निरोद्धव्य हैं?
5. ध्यान योगाभ्यास क्यों होता है?
6. भक्ति क्या है, उसके दो प्रकार क्या हैं?
7. भगवद्गीता के अनुसार चार प्रकार की भक्ति कौन सी है, सुश्लोक व्याख्या कीजिए।
8. निर्गुण ब्रह्मभक्ति और सगुण ब्रह्म भक्ति में क्या भेद हैं?
9. भागवत प्रसिद्ध नौ प्रकार की भक्ति को व्याख्यात कीजिए।
10. यम और नियम क्या हैं?
11. परम्परा साधनों का फल क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-23.1

1. परम्परा साधन बहिरन्न साधन भी कहलाते हैं।
2. चित्तशुद्धि के कारक साधन ही परम्परा साधन होते हैं। वे नाना प्रकार के शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं। यथा छान्दोग्योपनिषद् में आहार शुद्धि से चित्त शुद्धि होती है, ऐसा उक्त है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ, दान, तप, इत्यादि ध्यान पूर्वक से अनुष्ठित चित्तशुद्धि के कारण होते हैं, ऐसा हमें उपदेश देते हैं। महर्षि मनु, मनुस्मृति में तप चित्तशुद्धि का साधन होता है, ऐसा बोध कराते हैं। कर्म योग द्वारा चित्तशुद्धि होती है, ऐसा भी श्रीभगवान् गीताशास्त्र में समुपदेशित करते हैं। ध्यान से चित्त शुद्ध होता है, ऐसा भी भगवान् गीताशास्त्र में कहते हैं। योगदर्शन में प्रसिद्ध, यम, नियम आदि साधन भी अन्तःकरण की शक्ति को उत्पन्न करते हैं, ऐसा शंकरभगवत्पाद ब्रह्मसूत्रभाष्य में स्वीकार करते हैं। अन्य भी बहुविध साधन सत्त्व शुद्धि के कारण शास्त्रों में सुने जाते हैं।

उत्तर-23.2

1. शास्त्रों में बहुत प्रकार के कर्म और उपासनाएँ विहित हैं। यदि हम इन कर्मों और उपासनाओं का अनुष्ठान फल की इच्छा से ही करें तो भी हम पुनः पुनः कामनाओं के वशीभूत ही होते हैं। प्रत्युत यदि फल की इच्छा को त्याग कर

हम कर्मोपसना के अनुष्ठान में रत हों तो हमारा अन्त:करण शुद्ध और एकाग्र होगा।

2. विद्युतदीप प्रकाशक द्रव्य से पूर्ण है तो भी उसके बाहर का स्थान धूल आदि मलिनता युक्त हो तो वह स्वयं के अन्दर निहित दीप्ति से बाहर प्रकाशन में असमर्थ होता है। इस प्रकार अन्त:करण प्रकाशनशील सत्त्वगुण सहित हो तो भी रजस् और तमस् के योग से अशुद्ध होता है, अत: स्वयं के अन्दर निहित ब्रह्म के प्रकाशन में असमर्थ होता है। उससे यदि हमारे द्वारा ब्रह्मविद्या इच्छित होगी तो भी प्रथमत: अन्त:करण की शुद्धि यत्न द्वारा सम्पादन करनी चाहिए। अन्त:करण में विद्यमान सत्त्वगुण से रजोगुण और तमोगुण दूर करने चाहिए, यह अर्थ है।

3. सगुण ब्रह्मविषयक और निर्गुण ब्रह्मविषयक दो प्रकार की उपासना है।

4. मानस व्यापार रूप उपासना है। ध्यान और भक्ति मन द्वारा की जाती है। उसके कारण ध्यानयोग और भक्तियोग का मानस व्यापार रूप उपासना में अन्तर्भाव होता है।

उत्तर-23.3

1. कर्म का योग बुद्धि द्वारा समानुष्ठान ही कर्मयोग कहलाता है। 'अहं करोमि' ऐसी कर्तृत्व बुद्धि और 'इदं फलं मम भवतु', ऐसी फलों के द्वार सन्धि के बिना स्वयं के कर्मों का समनुष्ठान कर्मयोग कहलाता है।

2. 'अहं करोमि', ऐसी कर्तत्व बुद्धि और 'इदं फलं मम भवतु', ऐसी फलों की अभिसन्धि के बिना जो बुद्धि निस्स्वार्थता में रहता है, वही योगबुद्धि है। योगबुद्धि काम, क्रोध आदि के द्वारा कभी भी विचलित नहीं होती है। योगबुद्धि युक्त व्यक्ति सभी कर्मों को यत्नपूर्वक करता है तो भी कर्म-फलों के सिद्धि में प्रसन्न नहीं होता और उनकी असिद्धि में खिन्न नहीं होता। वह समत्व से सभी को देखता है। इस बुद्धि के द्वारा यदि हम कर्मों को करते हैं तो हमारा अन्त:करण शुद्ध होगा और क्रम से साधन चतुष्टय सम्पन्न होगा।

3. कर्मयोग का अन्त:करण शुद्धि ही फल है। कर्मयोग महान पुण्यकर्म है। निष्काम कर्मयोग से उत्पन्न पुण्य से चित्त का पाप नष्ट होता है। राग, द्वेष आदि अथवा काम, क्रोध आदि चित्त के पाप हैं। यह पाप ही चित्त का मल है। मलिन चित्त वेदान्त वाक्य द्वारा बोधित आत्मस्वरूप के सुष्ठु (सम्यक्) ग्रहण में समर्थ नहीं होता है। जब साधक ध्यानपूर्वक कर्माचरण में निष्ठा प्राप्त करता है तब पाप नष्ट होते हैं और चित्त शुद्ध होता है।

उत्तर-23.4

1. उपासना सगुण ब्रह्मविषयक मानस व्यापार रूप शाण्डिल्य विद्या आदि हैं।

टिप्पणी

2. चित्त का वर्तन ही वृत्ति कहलाती है। कभी चित्त कामरूप में होता है। और कभी क्रोध रूप में होता है। कभी पुनः लोभ रूप मे। जब चक्षु आदि इन्द्रिय बाह्य पदार्थों के द्वारा सम्बन्ध प्राप्त करते हैं तब चित्त अथवा अन्तःकरण काम आदि वृत्ति को धारण करते हैं। इष्ट किसी वस्तु के दर्शन से मन काम रूप होता है। अनिष्ट किसी वस्तु के दर्शन से मन क्रोधरूप होता है। इस प्रकार काम, क्रोध आदि चित्त की वृत्तियाँ कहलाती हैं।

3. काम आदि वृत्तियों के द्वारा ही अन्तःकरण विक्षिप्त होता है। उसके कारण ये वृत्तियाँ ही चित्त का विक्षेप हैं।

4. निर्मल और एकाग्र चित्त शुद्ध कहलाता है। विक्षेपों के द्वारा चित्त अनेकाग्र होता है। अनेकाग्र चित्त सम्पूर्णतः शुद्ध नहीं होता। उससे चित्तशुद्धि के लिए चित्तविक्षेप निरोद्धव्य है।

5. ध्यानयोगाभ्यास चित्तविक्षेपों के नाश से चित्त एकाग्रताया के और उससे चित्तशुद्धि के सम्पादन के लिए। विक्षेपों के हेतु संस्कार होते हैं। संस्कारों के द्वारा विक्षेप रूपी चित्तवृत्तियाँ पुनः पुनः उत्पन्न होती हैं। ध्यानाभ्यास से चित्त में अवस्थित विक्षेप हेतुओं के संस्कारों का और उससे विक्षेपों का क्रमशः नाश होता है। और उससे चित्त एकाग्र और शुद्ध होता है।

उत्तर-23.5

1. विषय-वस्तु में विराग, ईश्वर में अनुराग भक्ति कही जाती है। भगवान् में परम प्रेम ही भक्ति है, ऐसा नारदसूत्र में प्रोक्त है।

2. आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी, ये चार प्रकार के भक्त भगवद्गीता में भगवान् द्वारा कहे गए हैं।

3. आत्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्म का स्वरूपानुसन्धान ही निर्गुण ब्रह्मविषयी भक्ति है। आत्मस्वरूप की अनुसन्धानरूप भक्ति क्रमशः आत्मस्वरूप ज्ञानरूप में परिणत होती है। निर्गुण ब्रह्म में पूर्व यत्न से की गई यह भक्ति अभ्यास द्वारा साधक के अन्तःकरण में दृढ़ होती है। सुदृढ़ यह भक्ति निर्गुण ब्रह्म विद्या रूप को प्राप्त करके संसार के हेतुभूत निर्गुण ब्रह्मविषयक अविद्या को नष्ट करती है।4

4. सर्वात्मभूत परम ब्रह्म में उपासना की सुकरता के लिए शास्त्र अथवा आचार्य द्वारा नाम, रूप सगुण ब्रह्म है, ऐसा वेदान्तशास्त्र में प्रसिद्ध है। शास्त्र आलम्बन करके जीवों के द्वारा किये गए अन्तःकरण में होनी वाली भावनाओं के द्वारा सभी के आत्मस्वरूप जो ब्रह्म है, वह निर्गुण भी सगुण होता है। इस सगुण ब्रह्म में राम, कृष्ण, गणेश, दुर्गा आदि रूप में (किया गया) क्रियमाण प्रेम सगुण भक्ति कहलाता है। सगुण भक्ति से सगुण ब्रह्म की कृपा प्राप्त कर भक्त विशुद्ध अन्तःकरण वाला होकर ब्रह्म विद्या प्राप्त करता है।

5. ''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।''

उत्तर-23.6

1. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं।
2. शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान नियम हैं।
3. ''विषयवस्तुभ्यः इन्द्रियाणां प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।''

।।तेइसवाँ पाठ समाप्त।।

24

अन्तरङ्ग साधन

प्रस्तावना

मोक्ष ही प्राणियों का लक्ष्य है। और वह मोक्ष जीव और ब्रह्म की एकता के विज्ञान से होता है। अद्वैत ब्रह्म ही परिच्छिन्नता के कारण जीव रूप में प्रतिभासित होता है। क्योंकि ब्रह्म का नित्य-शुद्ध-बद्ध-मुक्त स्वरूप है। इस प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान मलिन अन्त:करण से होना सम्भव नहीं है। ब्रह्म ही आत्मा है। अत: ब्रह्मज्ञान ही आत्मस्वरूपज्ञान है। आत्मस्वरूप के ज्ञान के लिए मन एकाग्र, निर्मल, शान्त और शुद्ध होना चाहिए। मन के निर्मलत्वादि के लिए अद्वैतवेदान्त में बहुत से साधन उपदिष्ट किए हैं। उनमें से कुछ अंतरङ्ग (आन्तरिक) साधन हैं, कुछ बहिरङ्ग साधन है। बहिरङ्ग साधन कर्मयोग, ध्यानयोगादि साधन और उपासना हैं। वे उपासनादि बहिरङ्ग साधन अद्वैततत्त्वज्ञान के लिए परम्परा से कारण हैं। वे सब साक्षात् साधन नहीं हैं। और जो अद्वैततत्त्व के साक्षात्कार के लिए साक्षात् साधन हैं वे सहकारी साधन कहलाते हैं। सहकारि साधन साधनचतुष्टय हैं। विवेक, वैराग्य, शमादिष्टक, और मुमुक्षुत्व ये चार साधन साधनचतुष्टय नाम से प्रथित हैं। इन साधनों से युक्त साधक ही वेदान्तवाक्यों का श्रवणादि करके उस फल को प्राप्त करता है। यहाँ पाठ में यथाशास्त्र साधनचतुष्टय का वर्णन करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अद्वैतवेदान्त के मत में मोक्ष के सहकारी साधन क्या हैं यह जान पाने में;
- ब्रह्मविद्या में अधिकारी कौन है यह जान पाने में;
- साधनचतुष्टय क्या है यह जान पाने में;

- श्रवण-मनन और निदिध्यासन ब्रह्मज्ञान में कैसे उपकार करते हैं यह जान पाने में;
- साधनचतुष्टयसम्पन्न नचिकेता की कथा को जान पाने में;
- तात्पर्य ग्राहक लिङ्गों को जान पाने में;
- तात्पर्य क्या है यह जान पाने में।

24.1 मोक्षस्य सहकारिसाधनम्

मोक्ष के कर्मयोगादि परम्परा साधनों से चित्तशुद्धि होती है। जिसकी चित्तशुद्धि होती है उसी को साधन चतुष्टयाख्य मोक्ष के सहकारिसाधन सिद्ध होते हैं। इसलिए ब्रह्मविद्या में अधिकार प्राप्त करने की इच्छा वाले जन को मोक्ष के परम्परा साधन, कर्मयोगादि का अनुष्ठान किया जाना चाहिए। जब क्रमशः अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब साधक के द्वारा साधनचतुष्टय का अभ्यास किया जाना चाहिए। मोक्ष के सहकारिसाधन इससे मोक्ष के प्रति साक्षात् साधन ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति में जो सहकारिसाधन है वही बोद्धव्य है। वेदान्त शास्त्र में सर्वत्र साधनचतुष्टय इस साधनों से मोक्ष के सहकारिसाधन प्रसिद्ध हैं। साधन चतुष्टय से चार साधन प्रसिद्ध हैं। नित्यनित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिष्टक, सम्पत्तिः और मुमुक्षुत्व ये चार साधन वेदान्त शास्त्र में साधनचतुष्टय कहे जाते हैं।

साधनचतुष्टय क्या है यह वेदान्तसार ग्रन्थ में सदानन्दयोगीन्द्र ने कहा है-

''साधनानि नित्यनित्यवस्तुविवेक-इहामुत्रार्थफलभोगविराग शमादिषट्क सम्पत्ति-मुमुक्षुत्वानि'' इति।

अर्थात् - 1) नित्यनित्यवस्तुविवेक, 2) इहामुत्रफलभोगविराग, 3) शमादिषटकसम्पत्ति और 4) मुमुक्षुत्व चार साधन हैं। अब इनका क्रमशः विवरण नीचे करते हैं-

24.2 नित्यानित्यवस्तुविवेकः-

चारों साधनों में प्रथम साधन नित्यानित्यवस्तुविवेक है। नित्य और अनित्य वस्तु नित्यानितयवस्तु है और उन नित्यानित्य वस्तुओं का विवेक नित्यानित्यवस्तुविवेक कहलाता है। जगत् में नित्य वस्तु और अनित्य वस्तु ये दो प्रकार की वस्तुएँ होती है। उनका विवेक विवेचन है कि नित्य वस्तु क्या है और अनित्य वस्तु क्या है यह विचारपूर्वक ज्ञान करना ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है।

वेदान्तसार के लेखक के मत में ''नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावत् ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्।' ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सब आकाशादिप्रपंचादि अनित्य वस्तु हैं ऐसा विचारपूर्वक ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। नित्य वस्तु क्या होती है? जो तीनों कालों में रहे वह नित्य वस्तु है। जो अतीतकाल

में भी थी, वर्तमानकाल में भी है, भविष्यकाल में भी होगी वह नित्य वस्तु है। ऐसा एक ब्रह्म ही है। ब्रह्म नित्य वस्तु है इसका यहाँ प्रमाण- ''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्'' (मुण्डाकोपनिषदि 1/1/6), ''आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः', अजो नित्यः शाश्वतः'' (कठोपनिषदि 1/2/18), ''सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'' (तैत्तिरीये 2/1) ये सब श्रुतियाँ हैं। ब्रह्म से भिन्न अन्य सब अनित्य है। वे सब पहले नहीं थीं, अब हैं और भविष्यकाल में नहीं होंगी। अतः वे सब कालत्रय नहीं होगी। अतः वे अनित्य वस्तुएँ हैं। ब्रह्म से भिन्न अन्य सबके अनित्यत्व के विषय में ''नेह नानास्ति किञ्चन'' (4/4/19), ''अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्'' (छान्दोग्ये 7/24/1) इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणभूत हैं।

नित्य वस्तुएँ अनित्य वस्तुएँ ऐसे इनका पृथक्करण ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः॥''

''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या''- ऐसा इस प्रकार जो विनिश्चय, निर्धारण है वह यह नित्यानित्यवस्तुविवेक उदाहृत। कथित या उक्त है ऐसा अर्थ है। यदि शंका की जाए कि नित्यानित्यवस्तुविवेक से क्या सिद्ध होता है तो हमारा प्रकृत जो नित्य-शुद्ध-बद्ध-मुक्तस्वरूप है वही नित्य है यह सिद्ध होता है। उससे स्वरूपभूत नित्य वस्तुओं में ही प्रीति उत्पन्न होती है। यह नित्यानित्यवस्तुविचार वस्तुतः वेदान्तवाक्यों के श्रवण से सिद्ध होता है। न केवल नित्य वस्तुओं में प्रति अपितु वेदान्तवाक्य विचार से अनित्य वस्तुओं में द्वेष भी उत्पन्न होता है। जब नित्यानित्यवस्तुविवेक सिद्ध होता है तभी द्वितीय साधन इहामुत्रफलभोगविराग में प्रयास करना चाहिए।

24.3 इहामुत्रफलभोगविरागः-

नित्यानित्यवस्तुविवेकरूप प्रथम साधन के फलरूप साधन इहामुत्रफलभोगविराग है। इह अर्थात् इस लोक में अमुत्र अर्थात् स्वर्गलोक में कर्मजन्य जो फल प्राप्त होता है उसका भोग इहामुत्रफलभोग कहलाता है, उस फलभोग से विराग, विरक्ति, आसक्ति का अभाव ही इहामुत्रफलभोगविराग कहलाता है। इहामुत्रफलभोगविराग के विषय में वेदान्तसार में कहा है-

''ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानाम् कर्मजन्यतया अनित्यत्ववत् आमुष्मिकाणां अपि अमृतादिविषयभोगानाम् अनितयतया तेभ्यो नितरां विरतिः इहामुत्रफलभोगविरागः।'' इहलोक में होने वाले ऐहिक हैं। स्रक् चन्दन, वनिता, गृह, क्षेत्रादि विषय इस लोक में होते हैं अर्थात् इस लोक में ही होते हैं अतः ये विषय ऐहिक हैं। इन विषयों के भोग से ही जीव स्वयं को सुखी हैं ऐसा मानते हैं। परन्तु ऐहिक वस्तुओं से जो सुख जीव प्राप्त करते हैं वह अनित्य है। क्योंकि विषय अनित्य हैं। अतः वहाँ से जनित सुख भी अनित्य है। इसी प्रकार आमुष्मिक स्वर्गसुख अमृतादि विषय भोगों का भी अनित्यत्व

टिप्पणी

ही है। वहाँ प्रमाण हैं- ''तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवम् एव अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते'' (छा. 1/8/16) इत्यादि श्रुति हैं। अर्थात् कर्म से जीता गया पृथिवीलोक भोग से क्षीण हो जाता है वैसे ही पुण्य से जीता गया स्वर्गलोक भी भोग से क्षीण हो जाता है। ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' (गीता 9.21) यह गीतावचन भी प्रमाण है। अतः लौकिक तथा स्वर्गीयसुख दोनों ही अनित्य हैं। क्योंकि ये अनित्य हैं अतः इनसे निरन्तर विरति, अत्यन्त विमुखता ही इहामुत्रफलभोगविराग है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि॥'' (21)

स्वदेह से आरम्भ करके ब्रह्मलोक तक भोग्यवस्तुओं में दर्शन या श्रवण से जो जुगुप्सा या घृणाबोध है वही वैराग्य है। अर्थात् मनुष्य शरीर अनित्य है यह सब जानते हैं। यद्यपि वह निवास दीर्घकालिक होता है तथापि वहाँ नित्य निवास नहीं होता है। ब्रह्मलोक में प्राप्त सुख का अवसान होता ही है। कुछ वस्तुएँ अनित्य है यह देखते ही ज्ञान हो जाता है, कुछ वस्तुएँ अनित्य है ऐसा आप्तजन के मुख से सुनकर ज्ञान होता है। दोनों प्रकार से भोग्यवस्तुओं के अनित्यत्व को जानकर उसमें जो जुगुप्सा, घृणाभाव होता है वही वैराग्य है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार अनित्य वस्तुओं जब वैराग्य उत्पन्न होता है नित्य वस्तु को जानने के लिए मन आकुलित होता है। तभी साधक साधनचतुष्टय में तृतीय साधन को साधना प्रारम्भ करता है।

24.4 शमादिषट्कसम्पत्ति

जब अधिकारी द्वितीय साधनसम्पन्न होता है तभी तृतीय साधन का मार्ग उन्मुक्त होता है। तृतीय साधन शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि छः साधनों की सम्पत्ति, सम्प्राप्ति ही शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा हैं। इन सब साधनों की प्राप्ति ही शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि क्या हैं ऐसा प्रश्न है तो शमादि छः सम्पत्तियों का वर्णन एक-एक करके नीचे किया जाता है-

24.4.1 शमः-

''शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः मनसः निग्रहः'' ऐसा वेदान्तसार में उक्त है। वस्तुतः मन का निग्रह ही शम है। वेदान्त तत्व का श्रवण-मनन-निदिध्यासन से ही तत्वज्ञान होता है। जिस वृत्ति विशेष से आत्मविषयकश्रवणादिभिन्न विषयों से बल से मन का निग्रह होता है वह शम है। जीव का चित्त अतिशय चपल है। एक विषय में दीर्घकाल नहीं ठहरता। जैसे बुभुक्षु की भोजन के प्रति अभिरूचि होती है वैसे ही वैराग्यवान् पुरूष

की तत्त्वज्ञान में अभिरूचि होते हुए भी पूर्व संस्कारवश विक्षिप्त हो जाती है। जिस दशा में जिस वृत्ति विशेष से पार्थिव सुख अनित्य, परिणाम में दु:खजनक होते हैं ऐसे बलपूर्वक विषयों से प्रतिक्षण ही शम है। सुबोधिनी में कहा है-

''यथा तीव्रायां बुभुक्षायां भोजनाद् अन्यव्यापारो मनसे न रोचते, भोजने च विलम्बं न सहते, तथा स्त्रक- चन्दनादिविषयेषु अन्त्यन्तं अरूचि:, तत्त्वज्ञानसाधनेषु श्रवणमननादिषु अत्यन्तं अभिरूचिर्जायते यदा, तदा पूर्ववासनाबलात् श्रवणादिसाधनेभ्य: उड्डीय स्त्रकचन्दनआदिविषयेषु गम्यमानं मन:, येनान्त:करणवृत्ति विशेषेण निगृह्यते, स वृत्तिविशेष: शम इत्यर्थ:।''

विवेक चूड़ामणि में भी कहा है-

''विरज्य विषयव्रातद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुह:।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनस: शम उच्यते॥' (22)

मुहुर्मुह अर्थात् प्रतिक्षण, दोषदृष्ट्या-दोषदर्शन से, विषयव्रातात् अर्थात् विषय समूह से, विरज्य अर्थात् वैराग्य नियतावस्था अर्थात् निश्चल रूप से अवस्थान शम कहा है, कथित है ऐसा इस श्लोक का अर्थ है।

24.4.2 दम:-

''दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्यविषयेभ्यो निवर्तनम्'' ऐसा वेदान्तसार में उक्त है। बाह्येन्द्रियाँ चक्षु-कर्ण-नासिका-जिह्वा व त्वचा नाम वाली पाँच हैं। इन इन्द्रियों में चक्षु की रूप के प्रति, कर्ण की शब्द के प्रति, नासिका की गन्ध के प्रति, जिह्वा की रस के प्रति और त्वचा की स्पर्श के प्रति स्वभाव से ही प्रवृत्ति दिखाई देती है। आत्मविषयक-श्रवणमननादि में जब मन की प्रवृत्ति होती है तब बाह्येन्द्रियाँ स्वविषय की ओर जाती हैं तो अन्त:करण की जिस वृत्ति विशेष से बाह्येन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर नहीं जाती वह दम है। अत: दम बाह्येन्द्रियों का निग्रह है। इसलिए वेदान्तसार की टीका सुबोधिनी में कहा है- ''ज्ञानसाधनश्रवणादिभ्यो विलक्षणेषु शब्दादिविषयेषु प्रवर्त्तमानानि श्रेत्रदीनि बाह्येन्द्रियाणि येन वृत्तिविशेषेण निवर्तन्ते स दम इत्यर्थ:।'' पहले अन्त: इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए। उसके बाद बाह्येन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए। इसलिए पहले शम का निर्देश है उसके बाद दम का निर्देश है। यदि मन वशीभूत होता है तभी चक्षु आदि का निग्रह सम्भव है। मन के संकल्पवश ही चक्षु आदि रूपादि में भागती हैं। यदि कोई पुरूष किसी विषय में मन का नियोग करता है तो उसके सामने सुरूप भी हो तो नहीं दिखता, सुगीत हो तो भी नहीं सुनता। अत: मन का निग्रह हो जाता है तो बाह्येन्द्रियों का स्वत: निग्रह हो जाता है। परन्तु संस्कारवश मन विक्षिप्त होता है और इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर भागती है। इसलिए पुन: पुन: अभ्यास करना चाहिए। विवेकचूड़ामणि में दम के विषय में कहा है-

विषयेभ्य: परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके।
उभयेषामिन्द्रियाणां स दम: परिकीर्तित:॥'' (23)

उभयेषाम् इन्द्रियाणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का, विषयेभ्यः अर्थात् स्व-स्वविषय से, परावर्त्य अर्थात् विमुखी करके, स्वस्वगोल के अर्थात् स्व-स्वस्थान में, स्थापनं अर्थात् स्थिर करके निश्चल रूप से रक्षण करना, वह इस परिकीर्तित है ऐसा कथित है।

शमदमवान पुरूष ही स्थितप्रज्ञ है ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा है-

''यदा संहरते चाय कुर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'' (2/58)

यदा अयं कुर्मः अङ्गानि इव सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति ऐसा अन्वय है। अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वदा शब्दादि विषयों में प्रवृत्त होती हैं कूर्म जैसे भय से अपने अंगों का संकुचन कर लेता है वैसे ही जब यह ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त जन सभी इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से संकुचित कर लेता है तब उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। और वह स्थितप्रज्ञ होता है।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. साधनचतुष्टय क्या है?
2. अद्वैतवेदान्त के मत में नित्य वस्तुएँ क्या हैं?
3. ब्रह्म के नित्यत्व में श्रुति प्रमाण क्या है?
4. विवेकचूड़ामणि में नित्यानित्यवस्तुविवेक के विषय में क्या कहा है?
5. दम क्या है?
   (अ) मन का निग्रह
   (ब) बहिरिन्द्रियों का निग्रह
   (स) अन्तरिन्द्रियों का निग्रह
6. शम क्या है?
7. शमादि कौन हैं?
8. स्वर्गादि के अनित्यत्व में श्रुतिप्रमाण क्या है?

24.4.3 उपरतिः-

वेदान्तसार में उपरति के दो लक्षण कहे हैं- ''निवर्तितानाम् एतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यः उपरमणम् उपरतिः'' अथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः'' मन तथ बहिरिन्द्रियों के निग्रह से ही तत्त्वज्ञान का मार्ग उन्मुक्त नहीं होता है। पूर्वतनवासना से ये इन्द्रियाँ

और मन पुनः चञ्चल हो जाते हैं। अतः निवर्तित इन्द्रियों और मन की श्रवणादि साधन से अलग शब्दादि विषयों में प्रवृत्ति होती है। तब जिस वृत्ति विशेष से उनका निग्रह किया जाता है वह उपरति है। अर्थात् श्रवणादिव्यतिरिक्त विषयों से पुनः पुनः उनमें दोषदर्शन से उपरमण निवृत्ति ही उपरति है। वैसे ही सुबोधिनी में कहा है– ''निगृहीतानां एतेषां बाह्येन्द्रियाणां श्रवणादिसाधनव्यतिरिक्तेषु शब्दादिविषयज्ञेयेषु यथ तानीन्द्रियाणि सर्वथा न गच्छन्ति, तथा तेषां निग्रहो येन वृत्तिविशेषेण क्रियते, सोपरतिः इत्यर्थः।'' उपरति के लक्षणानन्तर वेदान्तसारकार सदानन्दयोगीन्द्र ने कहा है– ''विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः।'' शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित आदि का विधिपूर्वक सन्न्यास आश्रम स्वीकार करने से परित्याग करना ही उपरति है। अर्थात् मैं कर्त्ता नहीं हूँ इस भावना से सर्वकर्मत्याग ही उपरति है। विवेकचूड़ामणि में कहा है– ''बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरूत्तमा।''

मन का विषय प्रकाश शक्ति के, बाह्यानालम्बन, बाह्यानात्म वस्तु के आकार से अपरिणत होना ही उत्तम उपरति है।

24.4.4 तितिक्षा

''तितिक्ष शीतोष्णादिद्वंद्वसहिष्णुता'' ऐसा कहा गया है। अर्थात् शीतोष्ण से लेकर विपरीत विषयों को तथा उनसे उत्पन्न सुख-दुःखादि को सहन करना। सभी जीव सुख से आनन्द अनुभव करते हैं। आनन्द से प्रमाद नहीं होता है। परन्तु दुःख को सब सहन नहीं कर सकते। अतः दुःख के कारण बहुत से लोग प्रमाद करते हैं। परन्तु जो तितिक्षा का अभ्यास करता है उसके समीप सुख व दुःख दोनों समान हैं। वह सुख से अत्यधिक आनन्दित नहीं होता, दुःख से भी दुःखी नहीं होता। अतः वह अप्रमादी व धैर्यवान होकर साधना से अविचलित होता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है–

''सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते॥''

सर्वदुःखानां अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से, चिन्ताविलापरहित अर्थात् चिन्ता और विलाप को छोड़कर, अप्रतीकारपूर्वकम् अर्थात् प्रतीकार न करके, सहनम् अर्थात् स्वीकार करना, ही तितिक्षा कही गई है ऐसा अर्थ है।

गीता में भी भगवान वासुदेव ने कहा है–

''दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधस्थितधीर्मुनिरूच्यते॥ ''

वस्तुतः शमदमोपरति से बाहिर्विषयों से निवृत्ति होती है। तितिक्षा में तो अन्तर्विषयों से चित्त का निवर्तन होता है।

24.4.5 श्रद्धा

केवल श्रवणादि से तत्त्वसाक्षात्कार नहीं होता है। वह भी श्रद्धापूर्वक ही करना चाहिए। श्रद्धा है क्या ऐसा पूछते हैं तो कहते हैं- ''गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।'' गुरू के वचनों में तथा गुरू के द्वारा उपदिष्ट शास्त्र के वचनों में दृढ़तर निश्चय ही श्रद्धा है। आत्मतत्त्वजिज्ञासा का श्रद्धा ही मेरूदण्ड है। श्रद्धा नहीं रहती तो सौ बार उपदिष्ट भी अर्थ का अवधारण नहीं होगा। अतः आत्मजिज्ञासु को श्रद्धा का अवलम्बन अनिवार्य है। गीता में भगवान् ने गाया है ''श्रद्धावान लभते ज्ञानम्।' भगवान शंकराचार्य ने श्रद्धा के विषय में विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''शास्त्रस्य गुरूवाक्यस्य सत्यबुद्धयवधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥''

गुरूवाक्यस्य अर्थात् गुरू के द्वारा उपदिष्ट वाक्य का तथा शास्त्रवाक्यस्य अर्थात् वेदान्तवाक्य का, सत्यबुद्धावधारणं अर्थात् सत्यता से ग्रहण करना, यथा अर्थात् जिस निश्चय से, वस्तूपलभ्यते अर्थात् आत्मा की उपलब्धि होती है वह श्रद्धा है, सभी के द्वारा कही गई है।

24.4.6 समाधानम्

''निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तद्गुणविषये च समाधिः समाधानाम्।'' अर्थात् विषयों से प्रत्याहित चित्त का आत्मा के विषय में श्रवण-मनन-निदिध्यासन में तथा उसके अनुगुण विषय में गुरूशुश्रुषादि में अवस्थान ही समाधान है। इस दशा में ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे आत्मविषयस्मृतिधारा का विच्छेद हो। आत्मविषयक प्रत्यवाह का उत्पादन ही समाधि है, वही समाधान है। विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''सम्यगस्थापनं बुद्धैः शुद्धैः ब्रह्मणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्॥''

शुद्धे अर्थात् निर्गुण में, ब्रह्मणि अर्थात् ब्रह्मविषयक तत्त्वज्ञान में, बुद्धैः अर्थात् चित्त का, सम्यक् अर्थात् यथार्थ रूप से, आस्थपनम् अर्थात् स्थिरीकरण ही समाधान है यह कहा गया है। तो किन्तु कौतुहल से चित्त का लालन समाधि के बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं होता है।

इसी प्रकार शमदिषट्कसम्पत्ति सहकारिसाधनों में अन्यतम हैं। साधनचतुष्टय की सिद्धि में साधक को आत्मज्ञान अनायासता से हो जाता है। इस प्रकार साधनचतुष्टय सम्पन्न अधिकारी वेदान्तवाक्यश्रवण से अद्वैत ब्रह्मात्मज्ञान को प्राप्त करता है।

टिप्पणी

24.5 मुमुक्षुत्वम्

मुमुक्षुत्व का अर्थ है मोक्ष में इच्छा। आत्मज्ञान प्राप्ति में यही प्रधान साधन है। यदि पुरूष की मोक्ष प्राप्ति की इच्छा न होती तो मोक्षोपाय का अन्वेषण नहीं करता। इसलिए आत्मदर्शन भी नहीं करता। आत्मदर्शन मोक्ष का मार्ग है यह वेदान्त तत्त्व श्रवण-मनन-निदिध्यासन आत्मदर्शन में कारण हैं यह ज्ञान नहीं कर सकता था। अत: वेदान्त में उसकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। उससे वेदान्तैकवेद्य का आत्मा का ज्ञान भी उसका नहीं होता है। अत: अधिकारी की मोक्ष की इच्छा अवश्य होनी चाहिए। विवेचूड़ामणि में शंकराचार्यजी ने कहा है-

''अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता।।''

अहंकारादिदेहान्तान् अर्थात् सूक्ष्म अहंकार से लेकर स्थूलदेह तक, अज्ञानकल्पितान् अर्थात् अनजाने में उत्पन्न हुओं को, बन्धान् अर्थात् बन्धसमूहों को, स्वस्वरूपावबोधेन अर्थात् आत्मज्ञान से, मुक्त होने की इच्छा ही मुमुक्षुता है, यह अर्थ है।

इस प्रकार साधनचतुष्टय निरूपित किये जाते हैं। जब तक नित्यानित्यवस्तुविवेक नहीं होता तब तक अनित्य वस्तुओं में वैराग्य नहीं होता। वैराग्य के बिना शमादि का भी आचरण सम्भव नहीं है। शमादि के अभाव में मोक्षविषयी इच्छा ही नहीं हो सकती। मोक्ष में इच्छा के बिना ब्रह्मजिज्ञासा भी नहीं होती। इसलिए पहले नित्यानित्यवस्तुविवेक उसके बाद इहामुत्रफलभोगविराग, उसके बाद शमादिषट्सम्पत्ति उसके बाद मुमुक्षुत्व इस प्रकार क्रम से इनका उल्लेख है।

इस प्रकार साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता ही वेदान्तविद्या में अधिकारी होता है। यहाँ श्रुतिप्रमाण भी प्राप्त होता है -

''शान्तो दान्त उपरतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽमन्येवआत्मानं पश्यति।''

अर्थात् जिसका मन शान्त है, इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं हैं, जो संन्यासदीक्षा को प्राप्त कर चुका है, जो सुख-दु:ख में समान मन वाला है वह समाहित होकर एकाग्रभाव प्राप्त कर स्वयं में स्वयं को देखता है। इस श्रुति का समर्थन उपदेशासाहस्त्री का यह वाक्य करता है -

''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणान्विताय अनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे।।' (324, 16/12)

प्रशान्तचित्ताय अर्थात् जिसका मन शान्त है उसके लिए, जितेन्द्रियाय अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं हैं, प्रहीणदोषाय अर्थात् त्याज्यकर्मों को त्यागकर नित्यादि कर्मों का अनुष्ठान करता है उसके लिए, गुणान्विताय अर्थात् विवेकवैराग्यादि गुण विशिष्ट के लिए, यथोक्तकारिणे अर्थात् अनुगताय अर्थात् जो गुरू तथा शास्त्रवचन के अनुसार आचरण करता है सर्वदा

आचार्य के अनुगत ही रहता है, उसके लिए, सततं मुमुक्षवे अर्थात् मोक्षप्राप्ति में जिसका अदम्य उत्साह है उसके लिए यह ब्रह्मविद्या प्रदेय है, दातव्य है।

24.6 साधनचतुष्टयम् एव ब्रह्म विषयक अधिकारी

पहले हमने वेदान्तशास्त्र के अनुबन्धचतुष्टय में अधिकारी कौन होता है यह आलोचित किया। जिसका साधनचतुष्टय होता है वही व्यक्ति वेदान्त शास्त्र में अधिकारी होता है। वह वेदान्तशास्त्र के द्वारा बोधित विषय के अवगमन में समर्थ होता है। आत्मस्वरूप ब्रह्म ही है यह वेदान्तशास्त्र से बोधित होता है। यह आत्म तथा ब्रह्म का ऐक्य अथवा जीव और ब्रह्म का ऐक्य वेदान्तशास्त्र का विषय है। इस विषय को वेदान्ताध्ययन से साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति ही समझ सकता है, अन्य नहीं। इसलिए वेदान्तशास्त्र का अधिकारी साधनचतुष्टयसम्पन्न ही होता है यह जाना जाता है।

जो नदी के पर पार जाना चाहता है वह नौका में आरूढ़ होकर चप्पू चलाकर वहाँ जा सकता है। किन्तु यदि हाथ में चप्पू नहीं है तो नौका का आरोहण करके भी वह उस नौका से परपार होने में समर्थ नहीं होता है। जिसके पास चप्पू है वह नौका में आरूढ होकर सुखपूर्वक चप्पू चलाकर नदी के परपार जाता है। इसी प्रकार संसार के पार मोक्ष को जो जाना चाहता है वह वेदान्तवाक्यों का श्रवणादिरूपी उपाय से वहाँ जा सकता है। किन्तु जिसका साधन चतुष्टय नहीं है वह श्रवणदिकों को करके भी आत्मस्वरूप ब्रह्म को जानने में समर्थ नहीं होता है। साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति तो ब्रह्मबोधक वेदान्तवाक्यों को सुनकर, मानकर, निदिध्यासन करके ब्रह्मविद्या को अवश्य प्राप्त करता है और जनममरणरूपी संसार से मुक्त होता है। इसलिए वही व्यक्ति ब्रह्मविद्याधि कारी है। वही ब्रह्मविद्या के अन्तरङ्गसाधन उपनिषद वाक्य- श्रवणादि को करने में योग्य होता है। ऐसा अर्थ है। ''मोक्षे अधिकारी'', ''वेदान्तश्रवणे अधिकारी'', और ''वेदान्ते अधिकारी'' ऐसे निर्देश किया गया है।

साधनचतुष्टय सम्पन्न ब्रह्मविद्याधिकारी के विषय में भगवान भगवत्पाद शंकराचार्य ने विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता॥ (17)

अन्यव- विवेकिनः विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः मुमुक्षोः एव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता।

तात्पर्य- जो विवेकी, विरक्त, शमदमादिगुणसहित, और मुमुक्षु होता है उसी की ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता होती है ऐसा शास्त्र के आचार्यों का मत है। ब्रह्मजिज्ञासा शब्द का यहाँ ब्रह्मविचार ऐसा अर्थ है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन उपायों से उपनिषदवाक्यों को ब्रह्म कैसा है यह विचार किया जाता है। इसलिए ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता इसका अर्थ है श्रवणादि में योग्यता। विवेकादि साधनों के बिना ब्रह्मविचार फलप्रद नहीं होता

है। ब्रह्मविचार का ब्रह्मविद्या ही फल है। विवेकादि साधनों से सम्पन्न व्यक्ति ही श्रवणादि से वह फल प्राप्त करने में योग्य है। इसलिए साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति की ही ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता मानी जाती है।

24.7 साधनचतुष्टयसम्पन्नः नचिकेता

कठोपनिषद् में साधनचतुष्टयसम्पन्न नचिकेता की कथा

वाजश्रवस का पुत्र बालक नचिकेता था। एक बार वाजश्रवस ने यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त में दक्षिणा रूप में वृद्ध दुग्धहीन गाय दान की। वह देखकर नचिकेता शास्त्रविधान को स्मरण करके चिन्तित हुआ-इस प्रकार की दक्षिणा से पिता स्वयं किये यज्ञ का इष्ट फल प्राप्त नहीं करेंगे अपितु अनिष्ट फल प्राप्त होगा। अतः उनके पुत्र अर्थात् मेरे द्वारा यह यज्ञ सफल किया जाना होगा। यह सोचकर नचिकेता पिता के समीप जाकर हे पिता! मुझे किसके लिए दक्षिणा रूप में आप देंगे यह पूछा। बार-बार ऐसे पूछने से कुपित पिता ने कहा तुम्हें मृत्यु को दूँगा। बोलकर वाजश्रवस मुझसे यह क्या कहा गया यह सोचकर दुःखी हो गया। किन्तु नचिकेता पिता के वचन मिथ्या न हो इसलिए सोचकर मृत्युदेव यम के घर चला गया। नचिकेता के जाने पर यम अन्यत्र कहीं गए हुए थे। यमलोक में किसी ने नचिकेता का अतिथि सत्कार नहीं किया। तब भी अक्षुब्ध नचिकेता ने तीन रात यमालय में निवास किया। यम वापस घर आकर सब सुनकर नचिकेता को अर्ध्यपाद्यादि से पूजित कर बोले- हे ब्राह्मण! काल के लिए मैंने तुम्हारी पूजादि नहीं की। क्षमा करें। भोजनादि के बिना तुमने यहाँ तीन रात्रि निवास किया अतः तीन वर माँगो मैं दूँगा। जो इच्छा है कहो। नचिकेता ने प्रथमवर के रूप में पिता का सौख्य माँगा। यम ने वही वर उसे दिया। द्वितीयवर के रूप में नचिकेता ने स्वर्गप्राप्ति में उपायभूत विद्या की कामना की। यम ने वह वर भी नचिकेता को दे दिया। तृतीयवर के रूप में आत्मस्वरूप जानने की इच्छा की। इस वर को प्रदान तो यम ने नहीं दिया। साधनचतुष्टय सम्पन्न अधिकारी के लिए ही आत्मस्वरूप उपदेष्टित है अन्यथा वह उपदेश फलदायी नहीं होगा यह यम जानते थे। अतः नचिकेता साधनचतुष्टयसम्पन्न है या नहीं यह जानने के लिए मृत्युदेव यम निश्चितवान थे। आत्मस्वरूपज्ञान के स्थान पर अन्य कोई भी वर माँग लो यम ने कहा। एक आत्मज्ञान को छोड़कर पप्रञ्च में जो कुछ भी है यथेच्छा माँगो, मैं तुम्हें प्रदान करूँगा, ऐसा यम ने उस बालक नचिकेता से कहा। सेविका, रथ, हाथी, हिरण, वित्त, दीर्घजीवन इत्यादि जो जो चाहते हो वह सब दूँगा जब यम ने ऐसा कहा तो नचिकेता बोला-यह सब वस्तुएँ निश्चित ही अनित्य है। यह जगत् अनित्य है। यहाँ जगत् में जीवन दीर्घ हो तब भी अनित्य ही होगा। मैं अनित्य कुछ भी नहीं चाहता, अपितु मुझे नित्य आत्मज्ञान ही अभीष्ट है। इसलिए मुझे वही दो। यह सुनकर यम को ज्ञान हो गया कि नचिकेता को नित्यानित्यवस्तुविवेक है। रथ, हस्ती, हिरण दीर्घजीवदादि ऐहिक भोग तथा अप्सरा से लेकर आमुष्कि भोग तुम्हें दूँगा जब यम ने ऐसा प्रलोभन दिया तब नचिकेता दृढ़ता से बोले- इन भोगों में

मेरी रति ही नहीं है। इनको मैं वरण नहीं करूँगा मेरा वरणीय वर आत्मज्ञान ही है। इससे नचिकेता में इहामुत्रफलभोगविराग है यह यम को ज्ञात हो गया।

नचिकेता की शमादिसम्पत्ति भी यम ने यहीं से जान ली। मन और इन्द्रियों का निग्रह ही शम-दम है। ये दोनों नचिकेता में निरन्तर विद्यमान हैं इसीलिए वह यम के द्वारा प्रदर्शित विषयोपभोगों से प्रलोभित नहीं हुआ। तितिक्षा भी नचिकेता में है। शीतोष्ण, सुख-दु:ख, मानापमानादि जो द्वंद्व हैं उसके विषय में सहिष्णुता ही तितिक्षा है ऐसा कहा जाता है। जब नचिकेता यम के घर आया तब सबके द्वारा उपेक्षित भी वह तीन रात्रि वहाँ रहा। किसी के द्वारा उसे भोजन भी नहीं दिया गया, सम्मान की बात तो दूर है। फिर जब यम अर्ध्यपाद्यादि से उसका पूजन करते हैं तब बिना क्षोभ को अप्रतीकारपूर्वक वह नचिकेता उसे स्वीकार करता है। नचिकेता तितिक्षावान है यह जानने के लिए यम को और अधिक क्या प्रमाण चाहिए। श्रद्धा भी उस बालक की स्फुट है। शास्त्र और गुरूवाक्य में विश्वास अथवा आस्तिक बुद्धि ही श्रद्धा है। यज्ञ में निष्फल गायों को दान करते हुए पिता को देखकर नचिकेता शास्त्रोपदेश को याद करता है। और शास्त्र में बोधित पुत्रधर्म को याद करके स्वसमर्पण करके भी पिता के यज्ञ को सफल करने का यत्न करते हैं। और भी आत्मस्वरूप के उपदेश के लिए यम के समान समर्थ अन्य आचार्य सुख से नहीं मिला यह भी नचिकेता ने कहा। यहाँ से उसकी गुरूवचन में श्रद्धा है यह यम को ज्ञात हुआ। और शमादि में से कुछ गुण नचिकेता में स्पष्ट दिखाई देते हैं अत: अन्य भी गुण उसमें होंगे यह जाना जा सकता है।

मुमुक्षुत्व अथवा मोक्ष में इच्छा भी नचिकेता में विद्यमान है। क्योंकि निरावधि प्रलोभनों के समक्ष भी वह मोक्ष के उपायभूत केवल आत्मज्ञान की ही पुन: पुन: प्रार्थना करता है। इस प्रकार नचिकेता साधनचतुष्टय- सम्पन्न है यह यम ने परीक्षण के द्वारा निश्चित किया। उससे वह मोक्ष के अन्तरङ्ग साधनों में श्रवण-मनन-निदिध्यासन में अधिकारी है ऐसा जानकर यम उसके लिए आत्मस्वरूप का उपदेश करते हैं। आचार्य यम के मुख से आत्मस्वरूप ब्रह्म को सुनकर नचिकेता ब्रह्मज्ञानी हुआ।

पाठगत प्रश्न 24.2

1. उपरति क्या है?
2. तितिक्षा क्या है?
3. श्रद्धा क्या है?
4. समाधान क्या है?
5. मुमुक्षुत्व क्या है?
6. साधनचतुष्टसम्पन्न ही वेदान्त विद्या में अधिकारी होता है, यहाँ श्रुति प्रमाण क्या है?

7. नचिकेता किसका पुत्र था?

(अ) अग्नि का (ब) वाजश्रवस का

(स) यम का (द) याज्ञवल्क्य का

24.8 श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि

''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य निदिध्यासितव्यः'' (बृह.उ. 2. 2.4) इस मन्त्र से उपनिषद् में आत्मा का श्रवण, मनन और निदिध्यासन उपदिष्ट है। आत्मसाक्षात्कार मे श्रवण-मनन- निदिध्यासन साक्षात्करण हैं इसी कारण इस प्रसंग में श्रवणमननिदिध्यासन का वर्णन कर रहे हैं। जब तक स्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कार नहीं होता तब तक श्रवणमननिदिध्यासन का अनुष्ठान करना चाहिए। इसलिए वेदान्तसार में कहा गया है-

'स्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कारपर्यन्तं श्रवण-मनन-निदिध्यासन-समाध्य- नुष्ठानस्य अपेक्षितत्वात्।''

''आवृत्तिइसकृदुपदेशात्' (4.1.1) यह ब्रह्मसूत्र में भी सूत्रकार बादरायण ने पुनः पुनः श्रवणदि का अनुष्ठान करने के लिए कहा है। भाष्यकार शंकरभगवत्पाद ने भी लिखा है-

''दर्शनपर्यवसानानि हि श्रवणादीनि आवर्त्यमानानि दृष्टार्थानि भवन्ति, यथ अवद्यातादीनि तण्डुलादि- निष्पत्तिपर्यवसानानि, तद्वत।'' इसका अर्थ है जैसे कि पुनः पुनः अवद्यात से धान से तण्डुल निकलते हैं जब तक तण्डुल नहीं निकलते तब तक अवद्यात करना चाहिए वैसे ही जब तक तत्त्वसाक्षात्कार नहीं होता तब तक श्रवणादि का पुनः पुनः अभ्यास करना चाहिए।

24.8.1 श्रवणम्

धर्मराजध्वरीन्द्र विरचित अद्वैतवेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ वेदान्त परिभाषा में भी ब्रह्मसाक्षात्कार हेतु श्रवण, मनन और निदिध्यासन आदि का वर्णन किया है। वहाँ श्रवण के विषय में कहते हैं-

''श्रवणं नाम वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्माणि तात्पर्यावधरणानकला मानासी क्रिया।'' श्रवण केवल कर्णों से वेदान्त वाक्यों को सुनकर उन सब वेदान्तवाक्यों का तात्पर्य अद्वैत ब्रह्म में ही हो ऐसा निश्चय है। वेदान्तसार में भी श्रवण के विषय में कहा है-

''श्रवणं नाम षड्विधिलिन्नैः अशेषवेदान्तानाम् अद्वितीयवस्तुनि तात्पर्यावधारणम्।'

तात्पर्य शब्दार्थ- तात्पर्यनिर्णायकलिङ्ग क्या है? लीनं गमयतीति लिङ्ग, तात्पर्यनिर्णय के लिए लिङ्ग तात्पर्यनिर्णायक लिङ्ग कहलाता है। तात्पर्य क्या है? वह जिसके पर है

टिप्पणी

वह तत्पर यह बहुब्रीहि, अर्थपर यह अर्थ है। उसका भाव तात्पर्य है भाव ष्यञ्प्रत्यय। शब्द अथवा वाक्य जो अर्थपर है वह प्रतीतिजननयोग्यत्व ही तात्पर्य है ऐसा व्युत्पत्ति लब्ध अर्थ है। अद्वैत मत में अद्वितीय ब्रह्म में ही अशेषवेदान्तों का तात्पर्य है। आकाङ्क्षा की तरह तात्पर्य भी शाब्दबोध में सहकारि कारण है। नैयायिक मत में बोलने की इच्छाविशेष ही तात्पर्य शब्दार्थ है। लोक में अभिप्रेत अर्थ के बोधन के लिए शब्द या वाक्य प्रयोग किए जाते हैं। इसलिए शब्द या वाक्य से ही इस प्रकार के अर्थ की प्रतीति हो यह बोलने की जो इच्छा है वही तात्पर्यशब्दार्थ है- ''वस्तुरिच्छा तु तात्पर्य परिकीर्तितम्'' (अन्नभट्टस्य दीपिकाटीका)

इसलिए वैयाकरणों ने ईश्वरेच्छा को ही तात्पर्य कहा है। उनके मत में यह वाक्य या यह पद अर्थ के बोध के लिए उच्चारणीय है यह ईश्वरेच्छा तात्पर्य है यह तात्पर्यस्वरूप है। अतः सर्वज्ञेश्वरप्रणीत होने से अत्र अतिव्याप्ति की शंका नहीं है। जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ हों, वहाँ बोलने की इच्छा ही तात्पर्य है यह उनके द्वारा भी अंगीकृत है। वेदान्तमत में तो - ''तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वम् एव तात्पर्यम्।'' ईष्ट अर्थ की प्रतीतिजननसामर्थ्य ही तात्पर्य है यह इसका अर्थ है। शब्द के वैसे सामर्थ्यवश होने से ही भोजन प्रकरण में ''सैन्धवम् आनय'' यह सैन्धव शब्द लवण को बोधित करता है। सैन्धवशब्द के अश्वबोधन सामर्थ्य होने पर भी वह लवण ही अर्थ कैसे बोधित हो तो भोजन प्रकरण में अश्वार्थ प्रतीति न हो ऐसी इच्छा से अश्वार्थ प्रतीतियोग्यता होने पर भी अश्व की प्रतीति नहीं होगी। इस प्रकार की इच्छा तात्पर्य के द्वारा अभिहित है ऐसा नहीं है, उससे इतर प्रतीति से उत्पन्न इच्छा द्वारा अनुच्चरित होने पर वह प्रतीतिजननयोग्यत्व का तात्पर्य के द्वारा विवक्षा होने से। लौकिक वाक्यों में तो तात्पर्य प्रकरण से समझा जाता है। वाक्यदीप में कहा है-

''वाक्यात् प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
शब्दार्थः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलम्॥''

अर्थात्- वाक्यात् प्रकरणात् अर्थात् औचित्य, देश और काल से शब्दों के अर्थ भिन्न होते हैं। इसलिए इन सब विषयों को विचारकर ही किसी भी शब्द का तात्पर्य समझना चाहिए।

वैदिक वाक्यों को तो कुछ के मत में अधिकरणमुख से, कुछ के मत में उपक्रम से तात्पर्य निर्णय किया जाता है। अधिकरण विषय-संशय-पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष-संगत्यात्मक पञ्चलिङ्गक है। कहा गया है-

''विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
सन्नतिश्चेति पञ्चाङ्ग शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥'

तात्पर्यनिर्णयकानि षट् लिङ्गानि- उपक्रमादि से तात्पर्यनिर्णय किया जाता है इसलिए उपक्रमादि का सामान्य परिचय देते हैं। उपक्रमादितात्पर्य- निर्णायकलिङ्गप्रतिपादक श्लोक है-

''उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिन्न तात्पर्यनिर्णये॥

उपक्रमोपसंहारौ, अभ्यासः, अपूर्वता, फलम्, अर्थवादः, उपपत्तिः चेति छः तात्पर्यग्राहक लिंग है। अब इन उपक्रमादि लिंगों के स्वरूपवर्णन उदाहरण सहित सामान्यतः दिए जाते हैं-

(क) **उपक्रमोपसंहारौ**- प्रकरणप्रतिपाद्यार्थ के प्रकरण के आदि और अन्त में उपपादन ही उपक्रमोपसंहरौ है। जैसे-छान्दोग्योपनिषद् में छठे अध्याय में प्रारम्भ में 'एकमेवाद्वितीयम्', अन्त में ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' यह अद्वितीय वस्तु का प्रतिपादन करते हैं।

(ख) **अभ्यास**- प्रकरणप्रतिपाद्य की वस्तु का उसके मध्य में पुनः पुनः प्रतिपादन अभ्यास है। यथा छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीय वस्तु के मध्य में 'तत्त्वमसि' ऐसा कहकर नवीन प्रतिपादन विद्यमान है।

(ग) **अपूर्वता**- प्रकरणप्रतिपाद्य के अर्थ का प्रमाणान्तर से अविषयीकरण अपूर्वता है। जैसे- छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीयवस्तु का प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तर से अविषयीकरण।

(घ) **फलम्**- प्रकरणप्रतिपाद्य का आत्मज्ञान या उसके अनुष्ठान का वहाँ वहाँ सुनाई देने का प्रयोजन ही फल है। जैसे-''आचार्यवान् पुरूषों वेद, तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये'' (6,14,2) ऐसा छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीयवस्तुज्ञान की वह प्राप्ति ही प्रयोजन है।

(ङ) **अर्थवाद**- प्रकरणप्रतिपाद्य की वहाँ वहाँ प्रशंसा अर्थवाद है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् में 'उत तमादेशमप्राक्ष्य येनाश्रुतु श्रुतं भवत्यमत। मतम्बविज्ञातं'' (6,1,3) अद्वितीय वस्तु की प्रशंसा करते है।

(च) **उपपत्ति**- उपपत्ति युक्ति है। प्रकरणप्रतिपाद्वार्थ साधन में वहाँ वहाँ सुनाई देने वाली युक्ति उपपत्ति है। जैसे- ''यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व मृण्मयं विज्ञातं स्याद् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम्'' इत्यादि अद्वितीय वस्तु साधन में विकार के वाचारम्मणमात्रल में युक्ति सुनी जाती है। इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म है यह स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् प्रकरण भी द्रष्टव्य हैं। इस प्रकार वेदान्तों का अद्वितीय ब्रह्म में ही तात्पर्य अवधारण ही श्रवण है यह विस्तार से बता दिया है।

24.8.2 मननम्

वेदान्तपरिभाषाकार ने मनन का लक्षण किया है- ''मननं नाम शब्दावधारिते अर्थे मानान्तरविरोध शंयायाम् तन्निराकरणानुकूलर्कात्मज्ञानजनको मनसो व्यापारः।''

इसका अर्थ है कि श्रवण से जो अर्थ निश्चित होता है वहाँ प्रमाणान्तर से बहुत से विरोध आ जाते हैं। द्वैतवादी वहाँ आक्षेप कर सकते हैं अथवा स्वयं के मन में ही विरूद्ध युक्तियाँ पैदा हो सकती हैं। इस प्रकार जिस मनोवृत्तिविशेष से वेदान्तानुगुणयुक्तियों से युक्त जिस मनोवृत्तिविशेष से विरूद्ध मतों का खण्डन करके स्वमत में दृढ़ता सम्पादित करते हैं वही मनन है, ऐसा कहा जाता है। अध्यात्मोपनिषद् में भी मानते हैं-

''युक्त्या सम्भवितत्त्वानुसन्धानं मननं तु तत्।''

मनन ही तर्कात्मक है, परन्तु इससे वेदसिद्धान्त अविरोधी तर्क ही जानना चाहिए न कि वेदसिद्धान्त विरोधी तर्क। इसीलिए भगवान भाष्यकार ने कहा- ''श्रुत्यनुगृहीतः एव ह्यत्र तर्कोनुभवान्नत्वेन आश्रियते।'' मनु ने भी कहा है-

''आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धते स धर्मं वेद नेतरः॥ (10.106)

अर्थात् जो ऋषियों के धर्मोपदेश को वेदस्मृत्यादि शास्त्रविरोधी तर्कों से अनुसंधान करता है वह धर्म का यथार्थ स्वरूप जानता है, अन्य नहीं।

वेदान्तसार में मनन के विषय में कहा है- ''मननं तु श्रुतस्य अद्वितीयवस्तुनः वेदान्तानुगुणयुक्तिभिः अनवरतम् अनुचिन्तनम्।'' अतः वेदान्तवाक्यों को सुनकर अद्वैत ब्रह्म ही वेदान्तों का तात्पर्य है यह जानकर विरूद्ध युक्तियों का वेदसिद्धान्ताविरोधियुक्तियों से निराकरण करना ही मनन है यह अर्थ फलित होता है।

24.8.3 निदिध्यासनम्

श्रवण और मनन के बाद वेदान्तपरिभाषा में निदिध्यासन का लक्षण करते हैं-

''निदिध्यासनं नाम अनादिदुर्वासनया विषयेष्वाकृष्यमाण चित्तस्य विषयेभ्यऽकृष्यात्मविषयक स्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापारः।''

अशेष वेदान्तों का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म में है यह निश्चित रूप से ज्ञान होते हुए भी अनादिकाल से जो दुर्वासनाएँ हमारे मन में स्थित हैं वे चित्त को विषयों में आकर्षित करते हैं। इस प्रकार विषयों में आकृष्ट होते हुए चित्त को जिस मनोवृत्ति विशेष से विषयों से खींचकर आत्मविषयी स्थिरता में सम्पादित किया जाता है वह निदिध्यासन कहलाता है। वेदान्तपरिभाषकार के मत में निदिध्यासन ही ब्रह्मसाक्षात्कार में साक्षत्कारण है। इसलिए उन्होंने कहा- ''निदिध्यासनं ब्रह्मसाक्षात्कारे साक्षात्कारणम्।'' वेदान्तसार में निदिध्यासन के विषय में कहा है- ''विजातीदेहादिप्रत्ययरहित-अद्वितीयवस्तु- सजातीयप्रत्ययवाहः निदिध्यासनम्।'' जब मन स्थिर होता है, अर्थात् मन में देहादि प्रत्ययों का आविर्भाव नहीं होता, तब स्थिर शान्त एकाग्र मन में अविच्छिन्नतैल धारा की तरह अद्वितीय ब्रह्मज्ञान निरन्तर प्रवाहित होता है, वही निदिध्यासन कहलाता है। कहा भी है-

''ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्।
एकतानत्वम् एतद्धि निदिध्यासनमुच्यते॥''

अर्थात् श्रवण-मनन से जब अर्थ निःसन्दिग्ध होता है तब उस निःसन्दिग्ध वस्तु में मन की एकान्तता ही निदिध्यासन कहा जाता है। इस प्रकार श्रवण-मनन-निदिध्यासन ब्रह्मसाक्षात्कार में सहकारिकारण अथवा साक्षात्कारण हैं। कहा है-

''श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयम् एते दर्शनहेतवः॥''

पाठगत प्रश्न 24.3

1. ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'' यह किस उपनिषद् में विद्यमान है?

   (अ) कठोपनिषद् में (ब) केनोपनिषद् में

   (स) छान्दोग्योपनिषद् में (द) बृहदारण्यकोपनिषद् में

2. श्रवण क्या है?
3. मनन क्या है?
4. निदिध्यासन क्या है?
5. वेदान्त सिद्धान्त में तात्पर्य क्या है?

पाठसार

अद्वैतब्रह्मप्राप्ति के लिए सहकारि साधन हमनें इस पाठ में पढ़े। वही साधन साधनचतुष्टय इस नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ही नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व हैं। इनमें से नित्यानित्यवस्तुविवेक है कि ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उससे अन्य सब वस्तुएँ अनित्य है। जैसे इस जगत् में विद्यमान भोग्य वस्तुएँ अनित्य हैं वैसे ही स्वर्गादिलोकान्तरों में भी विद्यमान वस्तुएँ अनित्य हैं ऐसा जानकर अनित्य विषयों के भोग से विरति ही इहामुत्रफलभोगविराग है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा ये छः साधनों की प्राप्ति ही शमदमादिषट्कसम्पत्ति है। मुमुक्षुत्व ही मोक्ष में इच्छा है। यह साधनचतुष्टय जिसके पास होते हैं वही अद्वैतवेदान्त का अधिकारी होता है। नचिकेता साधनचतुष्टयसम्पन्न था, तभी उसने यम से ब्रह्मविद्या प्राप्त की। साधनचतुष्टय होने पर वेदान्तवाक्यों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आत्मसाक्षात्कार होता है। श्रवण ''वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्माणि तात्पर्यावधरणनुकूला मानीस क्रिया'' है। मनन ''शब्दावधारिते अर्थे

टिप्पणी

मानान्तरविरोधशङ्कायाम् तन्निराकरणानुकूलतर्कात्यज्ञानजनको मानसो व्यापार:।'' निदिध्यासन ''अनादिदुर्वासनयाविषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेभ्योऽ-कृष्यात्मविषयकरस्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापार:।'' इस प्रकार आत्मतत्त्व साक्षात्कार के सहकारि और साक्षात् कारण हमने इस पाठ में आलोचित किए।

पाठान्त प्रश्न

1. नित्यानित्यवस्तुविवेक का वर्णन कीजिए।
2. साधनचतुष्टय को द्वितीय साधन का विशदता से वर्णन कीजिए।
3. शम-दम के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
4. उपरति क्या है?
5. तात्पर्य के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
6. तात्पर्यग्राहक लिंगों का परिचय दीजिए।
7. नचिकेता का ब्रह्मविद्या में अधिकार कैसे था इसका वर्णन कीजिए।
8. श्रवण के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
9. मनन के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
10. निदिध्यासन के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
11. शमादिषट्कसम्पत्ति में से श्रद्धा व समाधान का वर्णन कीजिए।
12. तितिक्षा क्या है?

पाठगतप्रश्नानाम् उत्तराणि

उत्तर-24.1

1. 1) नित्यानित्यवस्तुविवेक, 2) इहामुत्रफलभोगविराग,
   3) शमादिषट्कसम्पत्ति, 4) मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं।
2. अद्वैतवेदान्त के मत में ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है।
3. ''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्।''
4. ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या यही रूप विनिश्चित है। वह यह नित्यानित्यवस्तुविवेक समुदाय है।

5. बद्ध बहिरिन्द्रियों का निग्रह।
6. शम श्रवणादिव्यतिरिक्त विषयों से मन का निग्रह है।
7. शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।
8. वह जैसे यह कर्मजित लोक क्षीण हो जाता है वैसे ही अमुत्र पुण्यार्जित लोक भी क्षीण हो जाता है। यह छान्दोग्यश्रुति है।

उत्तर-24.2

1. निवर्तित मन और इन्द्रियों की श्रवणादि साधनव्यतिरिक्तविषयों में शब्दादि में प्रवृत्ति होती है तो जिस वृत्ति विशेष से उसका निग्रह किया जाता है वह उपरति है। अथवा उपरति विहित कर्मों का विधि से त्याग करना है।
2. तितिक्षा शीतोष्णादि द्वंद्वों को सहना है।
3. गुरूपदिष्ट वाक्यों में विश्वास श्रद्धा कहलाता है।
4. निगृहीत मन का श्रवणादि में उसके अनुगुण विषय में समाधि ही समाधान है।
5. मोक्ष में इच्छा।
6. ''शान्तो दान्त उपतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽत्मन्येव आत्मानं पश्यति।''

उत्तर-24.3

1. वाजश्रवस का।

   (द) बृहदारण्यकोपनिषद् में।
2. ''श्रवणं नाम वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यावधारणानुकूला मानसी क्रिया।''
3. ''मननं नाम शब्दावधारिते अर्थे मानान्तरविरोधशङ्कायाम् तन्निराकरणानुकूलतर्कात्मज्ञानजनको मानसो व्यापारः।''
4. ''निदिध्यासनं नाम अनादिदुर्वासनया विषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेभ्योऽपकृष्यात्मविषयक स्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापारः।''
5. तदितरप्रतीतिजनन की इच्छा से अनुच्चरित होने पर उस प्रतीतिजननयोग्यत्व का तात्पर्यम् कहते हैं।

।।चौबीसवाँ पाठ समाप्त।।

25

मोक्ष

प्रस्तावना

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चार पुरूषार्थ हैं। उनमें मोक्ष परमपुरूषार्थ है। मोक्ष नित्य है, अत एव वह परम पुरूषार्थ है। मोक्ष को उद्देश्य करके ही अद्वैत वेदान्त शास्त्र द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्म जाना जाता है और साधन विधीत हैं। साधनों का यथायथम् अनुष्ठान जो करता है, वही मोक्ष रूपी फल प्राप्त करता है। मोक्ष क्या है, मोक्ष प्राप्ति के प्रति वेदान्त शास्त्र में बोधित साधन क्या हैं, इस पाठ में विशेष विचार किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अद्वैत वेदान्त शास्त्र का क्या प्रयोजन है, यह जान पाने में;
- अद्वैत वेदान्त मत में मोक्ष क्या है, यह जान पाने में;
- मोक्ष नित्य कैसे है, यह जान पाने में;
- अद्वैत वेदान्त दर्शन में ''ज्ञानेन एव मोक्षः भवति'', इस सिद्धान्त को स्वीकार करने मं क्या कारण है, यह जान पाने में;
- मोक्ष का साक्षात् साधन ब्रह्म ज्ञान ही है, ऐसा जान पाने में;
- ब्रह्म ज्ञान से व्यतिरिक्त मोक्ष साधन कैसे हैं, यह जान पाने में;
- ब्रह्म ज्ञान की उत्पत्ति के प्रति साधन क्या है, यह जान पाने में।

25.1 वेदान्त शास्त्र कैसे अध्येतव्य है

जिसका साधन चतुष्टय विद्यमान होता है, वही व्यक्ति वेदान्त शास्त्र में अधिकारी है, ऐसा पूर्व में ही हमारे द्वारा ज्ञात है। वही वेदान्त शास्त्र का तात्पर्य समझने में समर्थ है, ऐसा अर्थ है। साधन-चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति जब वेदान्त शास्त्र को सुनता है तब वह वेदान्त वाक्यों का तात्पर्यभूत ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। उसके मन में ब्रह्मविद्या उदित होती है, ऐसा अर्थ है। और ब्रह्मविद्या से मोक्ष होता है। इस प्रकार साधन चतुष्टय से युक्त साधक वेदान्तशास्त्र के श्रवण से अन्त में मोक्ष ही प्राप्त करता है। अतः यह मोक्ष वेदान्तशास्त्र का प्रयोजन होता है। आत्यान्तिक रूप से सभी प्रकार के दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष पद से कही जाती है।

वेदान्तशास्त्र उपनिषदों की मीमांसा है। उपनिषद् ही वेदान्त कहा जाता है। मीमांसा का अर्थ विचार है। वेदान्त शास्त्र में आचार्य उपनिषदों के तात्पर्य के विषय में मीमांसा करते हैं। आचार्यों के द्वारा क्या उद्देश्य करके उपनिषद् तात्पर्य मीमांसा की जाती है? ''साध न चतुष्टय सम्पन्न यह शास्त्र को पढ़कर उपनिषदों का तात्पर्य समझें, इस उद्देश्य से वेदान्ताचार्य उपनिषद् की मीमांसा करते हैं। किस प्रयोजन को उद्देश्य करके साधन चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति उपनिषदों के तात्पर्य को जानने की इच्छा करता है? कहा जाता है- वह मोक्ष रूप प्रयोजन को उद्देश्य करके उपनिषद् के तात्पर्य को जानने की इच्छा करता है।

जैसे ही साधन चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति मुमुक्षु होता है। अर्थात् वह मोक्ष की इच्छा करता है। जो बद्ध है, वह ''अहं बद्धः अस्मि'', ऐसा जानकर उस बन्धन से स्वयं के मोक्ष की इच्छा करे। साधन चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति संसार रूप बन्धन से मोक्ष की इच्छा करता है। जिससे वह संसार से मोक्ष की अभिलाषा करता है वह संसार के विषय में पहले ही जानता है। जन्म, मरण आदि चक्र ही संसार कहलाता है। यह दुःखमय है। आत्म के स्वरूप के विषय में जो अज्ञान है, उसके द्वारा संसार उत्पन्न होता है। नित्य सुखात्मक ब्रह्म ही आत्मा का स्वरूप है, ऐसा उपनिषदों में बोधित है। आत्मा ब्रह्म ही है, ऐसा स्वयं अनुभूत करके महात्मा भी वह हमें बताते हैं। यह आत्मा-ब्रह्म का अभेद है अथवा आत्मा का अद्वैत है, हम नहीं जानते है। अतः हमारा आत्मस्वरूप विषय में अथवा अद्वैत के विषय में अज्ञान है। अज्ञान से ही दुःख अनुभव करते हैं।

अज्ञान से दुःख कैसे होता है? कहा जाता है- यह सम्पूर्ण जगत् वस्तुतः आत्मस्वरूप ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही जगत् रूप में दिखता है। हमारे आत्मस्वरूप से भिन्न कोई भी व्यक्ति नहीं है, भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है। यह ज्ञान ही अद्वैत दर्शन है। उपनिषद् इस अद्वैत का बोध कराता है। किन्तु हम अद्वैत को नहीं जानते हैं। इस अज्ञान के कारण हम द्वैत को अनुभव करते हैं। यह द्वैत क्या है? 'अहं, त्वम्, इदं तत्, अत्र तत्र, इदानीं तदानीम्, अन्तः बहिः, अयं लोकः परलोकः, जीवः जगदीश्वरः'', इत्यादि रूप में हमारे द्वारा जो अनुभूत होता है वही द्वैत है। अखिल जगत् ही द्वैत है। इस द्वैत

से काम, लोभ, मोह, भय, दु:ख इत्यादि उत्पन्न होते हैं। काम से हम विषयोपभोगों में प्रवृत्त होते हैं। भय आदि से हम विषयों से निवृत्त होते हैं। प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप सभी कर्म कहलाते हैं। साधु कर्म से पुण्य उत्पन्न होता है और असाधु कर्म से पाप। कर्मों के द्वारा सञ्चित पुण्य और पाप के उपभोग के लिए हम शरीर से शरीरान्तर को जाते हैं। इस प्रकार जन्म, जरा, मरण इत्यादि रूप संसार उत्पन्न होता है। संसार में हम महान दु:ख अनुभव करते हैं। इस संसार के दु:ख का हेतु अविद्य, काम, कर्म, ये तीन हैं। संसार का हेतु कर्म, उसका हेतु काम, और उसका हेतु अविद्या अथवा अज्ञान है। इस प्रकार अज्ञान से संसार रूपी दु:ख होता है।

संसार रूप दु:ख का मूल कारण यह आत्मस्वरूपविषयक अज्ञान होता है। वह किस कारण से? आत्मस्वरूप अद्वैत के विषय में हमारा ज्ञान नहीं है, इस कारण से संसार रूप दु:ख उत्पन्न होता है। उस आत्मस्वरूप विषयक अज्ञान से ही संसार उत्पन्न है, ऐसा जाना जाता है। आत्मस्वरूप के ज्ञान से वह अज्ञान निवृत्त होता है। अत: संसार की निवृत्ति आत्मस्वरूप के ज्ञान से होती है। संसार से निवृत्ति ही मोक्ष कही जाती है। उसके कारण जो मोक्ष की इच्छा करता है वह आत्मस्वरूप को जान लेता है। आत्मा का स्वरूप जो ब्रह्म है वह उपनिषदों में तात्पर्यत: बोधित है। अत एव साधन-चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति उपनिषदों का तात्पर्य जानने हेतु इच्छित होता है। उस तात्पर्य के सुख से अवगमन के लिये ही उत्तरमीमांसा रूपी वेदान्तशास्त्र आचार्यों द्वारा प्रवर्तित हुआ। मीमांसा द्वारा उपनिषदों का तात्पर्यभूत ब्रह्म जब साधक के द्वारा जाना जाता है तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है। उससे मोक्ष को उद्देश्य करके साधकों के द्वारा उपनिषद् मीमांसा रूप वेदान्तशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 25.1

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये गए हैं।

1. संसार क्या है और उसका क्या करण है?
2. संसार की निवृत्ति कैसे होती है?
3. वेदान्तशास्त्र किस लिए प्रवृत्त हुआ?
4. साधन चतुष्टय सम्पन्न ही वेदान्तशास्त्र में अधिकारी है, ऐसा किस कारण से कहा जाता है?

25.2 मोक्ष का स्वरूप

साधन चतुष्टय सम्पन्न साधक वेदान्त शास्त्र के अध्ययन से उपनिषदों का तात्पर्य विचार करके ब्रह्मविद्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसा ज्ञात है। यह मोक्ष क्या है? मोक्ष नित्य, निरतिशय आनन्द की संज्ञा है।

संसार में सभी जन्तु आनन्द की ही इच्छा करते हैं। कोई भी प्राणी दु:ख की इच्छा नहीं करता है। अत एव दु:ख के परिहार के लिए और सुख की प्राप्ति के लिये प्राणी यत्न करते हैं। उन यत्नमानों में कुछ पुण्य कर्मों के द्वारा विषय सुख को प्राप्त करते हैं। किन्तु कर्मों के द्वारा सम्पादित वह सुख अनित्य और सातिशय होता है। जब तक पुण्य कर्मों का फल रहता है, उस काल तक वैषयिक सुख प्राप्त होता है। पुण्य कर्म के क्षीण होने पर वह सुख नष्ट हो जाता है और दु:ख पुन: आ जाता है। उसके कारण पुण्यकर्मों से प्राप्त वैषयिक सुख अनित्य है। और वह सुख अत्यन्त उत्कृष्ट नहीं है। पुण्यकर्म जब तक उत्कृष्ट होता है, तब तक उससे उत्पन्न वैषयिक सुख भी उत्कृष्ट होता है। मनुष्य लोक में जो सुख है, उससे भी उत्कर्ष अथवा अतिशय गन्धर्व लोक के सुख का होता है। उससे भी अतिशय स्वर्गलोक में प्राप्त सुख का है। उससे भी अतिशय वैकुण्ठ लोक में लभ्यमान सुख का है। उससे पुण्यकर्मों के द्वारा प्राप्त सुख सातिशय भी होता है।

कर्मों से प्राप्त सुख किस कारण से अनित्य और सातिशय होता है? इस प्रश्न का समाधान यह है- कर्मों के द्वारा उपलब्ध सुख वैषयिक होता है। इस वैषयिक का अर्थ विषय सम्बद्ध है। विषय आत्मभिन्न पदार्थ हैं। आत्मा तो कभी भी विषय नहीं है। वह सर्वदा विषयी ही है। आत्मा से सभी पदार्थ विषयीकृत अथवा जाने जाते हैं। उसके कारण आत्मा विषयी और आत्म भिन्न सभी पदार्थ उसके विषय हैं। विषयी आत्मा ही वस्तुत: सभी के सुख का मूल है। नित्य और निरतिशय सुख ही वस्तुत: आत्मा कहलाता है। अत एव उपनिषद् आत्मा को आनन्द स्वरूप कहते हैं। आत्मा में ही सभी सुख निहित है तो आत्मा-भिन्न पदार्थों और विषयों में सुख है, ऐसा लोक में जीव चिन्तन करने से भ्रान्त हैं। सुख स्वरूप आत्मा का ज्ञान उन्हें नहीं है, इस कारण से ही वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं। उसके कारण जो नित्य और निरतिशय आनन्द प्राप्त करने का इच्छुक होता है, वह आत्मा को जानें। और आत्म ज्ञान से आत्मस्वरूप और नित्य-निरतिशय सुख का अनुभव किया जा सकता है। इस सुख में दु:ख का लव लेश भी नहीं होता है। जन्म, जरा, मरण आदि रूप संसार में उपलब्ध होने वाला सुख अनित्य और सातिशय होता है, पुन: दु:ख मिश्रित होता है। वह संसार नित्य और निरतिशय होने पर और सुख-प्राप्त होने पर निवृत्त होता है एवं आत्म-ज्ञान द्वारा आत्मस्वरूप की, नित्य-निरतिशय सुख की प्राप्ति और संसार की निवृत्ति अद्वैत वेदान्तशास्त्र में मोक्ष अथवा मुक्ति कही जाती है। यह मोक्ष ही वेदान्तशास्त्र का प्रयोजन हैं

पाठगत प्रश्न 25.2

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये गये हैं-

1. मोक्ष क्या है?
2. वैषयिक आनन्द से आत्मस्वरूप आनन्द का क्या भेद है?
3. मोक्ष कैसे प्राप्त होता है?

25.3 निवृत्त की निवृत्ति और प्राप्त की प्राप्ति

हमारी आत्मा सदैव ब्रह्म ही है, अत: हम वस्तुत: सदा संसार से मुक्त ही होते हैं। उसके कारण वस्तुत: हमारा संसार सदा निवृत्त ही होता है, नित्य-निरतिशय और ब्रह्मानन्द सदा प्राप्त ही होता है। तथापि आत्मस्वरूप विषयक भ्रान्ति द्वारा संसार निवृत्त ही है और ब्रह्मानन्द प्राप्त ही है, ऐसा हम नहीं जानते हैं। जब ब्रह्मविद्या द्वारा वह भ्रान्ति समाप्त होती है तब निवृत्त संसार ही निवृत्त होता है और प्राप्त ब्रह्मानन्द ही प्राप्त होता है, ऐसा अनुभूत है। और जब मोक्ष होता है तब निवृत्त संसार रूप दु:ख की निवृत्ति होती है और प्राप्त परमानन्द की ही प्राप्ति होती है।

यहाँ कुछ संशय उदित होते हैं- निवृत्त की निवृत्ति कैसे होती है, और प्राप्त की प्राप्ति कैसे संभव है? कहा जाता है - निवृत्त की निवृत्ति रज्जु सर्प न्याय द्वारा सम्भव होती है और प्राप्त की प्राप्ति कंठचामीकर न्याय के द्वारा होती है।

जैसे किसी मार्ग पर एक रस्सी पड़ी थी। सांयकाल का मन्द अन्धकार था। किसी वृद्ध ने बाजार से गृह की ओर जाते हुए उस रस्सी को दूर से देखकर सर्प माना। अरे यह सर्प है, इस आक्रोश से वह अति भयभीत होकर वहाँ से दूर जाकर स्थित हुआ। उसके शरीर पर स्वेद (पसीना) उत्पन्न हुआ। कम्पन भी आरम्भ हुआ। तब कोई बालक वहाँ आया। उसने पूर्व में उस मार्ग से कीड़ा रेंगते जाते हुए वहाँ रस्सी को देखा था। उसके कारण अब अन्धकार में भी, वहाँ रस्सी ही है, ऐसा उसने जाना। भयाक्रान्त वृद्ध को देखकर बालक ने पूछा- आप किस कारण से भयभीत और कम्पित हैं? वृद्ध ने रज्जु को देखकर कहा- हे कुमार! वहाँ देखो, अतिघोर विषधर कोई सर्प मेरी मृत्यु के समान वहाँ सोया है। यह सुनकर बालक ने हँसकर वृद्ध का हस्त ग्रहण करके उसको रज्जु के निकट लाकर कहा- आप देखें, यह सर्प नहीं है, अपितु रस्सी है। एकाग्रता से कुछ काल तक अवलोक करके वृद्ध ने ''वह रज्जु ही है', ऐसा निश्चित करके बालक को कहा- अब मुझे शान्ति हुई, वह सर्प निवृत्त हुआ।

वस्तुत: सर्प पूर्व में ही निवृत्त था। तथापि वह अनिवृत्त है, ऐसी वृद्ध की भ्रान्ति थी। रज्जु ज्ञान से जब वह भ्रान्ति समाप्त हुई तब निवृत्त सर्प की ही निवृत्ति हुई। यह दृष्टान्त रज्जु-सर्प न्याय कहलाता है। रज्जु-सर्प न्याय से यह सिद्ध होता है- निवृत्त की भी निवृत्ति होती है। उससे ब्रह्मविद्या के द्वारा जब ब्रह्मविषयी अविद्या समाप्त होती है, तब निवृत्त ही संसार रूपी दु:ख की निवृत्ति होती है।

चामीकर (कण्ठाहार) नामक कण्ठ में पहना जाने वाला कोई स्वर्ण निर्मित आभूषण होता है। एक बार कोई महिला उत्सव देखने हेतु जाती है, ऐसा निश्चित करके वेशाभूषण आदि द्वारा स्वयं को अलंकृत करने हेतु प्रवृत्त हुई। स्वर्णाभरणों की पेटिका को जब खोला तब उसने वहाँ अतिमूल्यवान चामीकर को नहीं देखा। खेद से उसने आक्रोश करना प्रारम्भ किया। हा हन्त, मेरे चामीकर कहाँ गए, ऐसा उच्च स्वर में विलाप करती वह

घर के अन्दर और बाहर सभी जगह चामीकर के अन्वेषण में व्याकुल हुई। गृह के समक्ष आंगन में जब वह चामीकर के अन्वेषण में निरत थी तब विद्यालय से गृह आते हुए कोई बालक उसका विलाप सुनकर समीप आया। उसने उससे पूछा- आप इस प्रकार विलाप करती हुई कौन सी वस्तु ढूँढ रही हैं? उस महिला ने नष्ट चामीकर के विषय में उसे कहा। तब वह बालक मृदु हँसकर अङ्गुली से महिला के कण्ठ की ओर निर्देश करके उसको कहा- अयि भद्रे! वह चामीकर आपके कण्ठ में विराजमान है। आश्चर्य पूर्वक महिला ने स्वयं के कण्ठ को स्पर्श करके चामीकर को वहीं अनुभूत किया। वह आनन्द से बालक का मिष्ठान्न देकर बोली- तुम्हारे वचन से मैंने नष्ट चामीकर को पुनः प्राप्त किया। (वस्तुतः) चामीकर सर्वदा महिला के कण्ठ में ही विराजमान था। उसके कारण वह चामीकर सदा प्राप्त ही था। भ्रम के कारण उसने (महिला) उसको अप्राप्त माना। जब ज्ञान के द्वारा भ्रम समाप्त हुआ तब प्राप्त चामीकर की ही प्राप्ति हुई। यह दृष्टान्त कण्ठ-चामीकर न्याय कहा जाता है। कण्ठ-चामीकर न्याय से यह सिद्ध होता है- प्राप्त की ही प्राप्ति होती है। उससे जब ब्रह्म ज्ञान के द्वारा ब्रह्म-विषयक अज्ञान दूर होता है, तब प्राप्त परमानन्द ही प्राप्त होता है।

आत्यन्तिक रूप से संसार रूपी दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष कहलाता है। रज्जु-सर्प न्यास से निवृत्त की ही निवृत्ति और कण्ठ-चामीकर न्याय से प्राप्त की ही प्राप्ति मोक्ष होता है, अतः मोक्ष नित्य है, ऐसा जानते हैं।

पाठगत प्रश्न 25.3

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये गए हैं।

1. निवृत्त की भी निवृत्ति सम्भव होती है, ऐसा दृष्टान्त के द्वारा प्रदर्शित करें (अथवा रज्जु सर्प न्याय के द्वारा विवरण दें)
2. प्राप्त की भी प्राप्ति होती है, ऐसा दृष्टान्त के द्वारा प्रदर्शित करें (अथवा कण्ठ चामीकर न्याय का वर्णन करें)
3. मोक्ष नित्य है, ऐसा कैसे जाना जाता है?
4. मोक्ष नित्य है तो हम बद्ध कैसे हैं?

25.4 मोक्ष का साक्षात् साधन ज्ञान ही है

मोक्ष नित्य है, ऐसा हमारे द्वारा ज्ञात है। नित्य है, इस कारण से मोक्ष ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है। आत्मा का स्वरूप ब्रह्म ही है, हमारा ऐसा ज्ञान नहीं है, इस कारण से हम जन्म-मरण के चक्र में बद्ध होते हैं। वस्तुतः हम सभी की आत्मा सर्वदा ब्रह्म ही है। अत एव वस्तुतः हम मुक्त ही हैं। तथापि हमारा उस प्रकार का ज्ञान नहीं है,

टिप्पणी

अत एव हम बद्ध हैं। उसके कारण मुक्ति नित्य है, वह अज्ञान से आच्छादित होती है। आत्मा ब्रह्म ही है, यह ज्ञान जब प्राप्त हो तब वह अज्ञान नष्ट होता है, और हम हमारे नित्य, मुक्त स्वभाव को अनुभव करते हैं। उस ब्रह्म-ज्ञान से अथवा ब्रह्मविद्या के द्वारा ही मोक्षज्ञ सिद्ध होता है। ब्रह्मविद्या से उत्पन्न अविद्या की निवृत्ति और परमानन्द प्राप्ति मोक्ष कहलाता है। जिसके कारण ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष होता है, उससे ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष साक्षात् साधन है।

अत एव श्रीशंकरभगवतपाद ने विवेकचूड़ामणि में कहा है- आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न लभ्यते जन्मशतान्तरिऽपि इति। आत्मा एक, अद्वैत है, ऐसा जो बोध है, वही आत्मैक्य बोध है। वही ब्रह्मविद्या है। इस ब्रह्मविद्या के बिना मुक्ति सौ जन्मों में भी प्राप्त नहीं होती, ऐसा अर्थ है।

ज्ञान से ही मोक्ष होता है, ऐसा अद्वैतवेदान्त दर्शन के आचार्यों ने हमें पुनः पुनः स्मरण कराया है। मुमुक्षु द्वारा उससे आत्मज्ञान ही सम्पादनीय है। आत्मा का यथार्थ स्वरूप ब्रह्म उपनिषदों में बोधित है। उसके कारण आत्मज्ञान के लिए उपनिषद् का अर्थ ज्ञेय है। उस अर्थ के निर्णय के लिए उपनिषद्-मीमांसा रूप अद्वैत वेदान्त शास्त्र प्रवृत्त हुआ। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही आत्म का वास्तविक स्वरूप है, ऐसा उपनिषद् के आख्यान द्वारा वेदान्तशास्त्र में आचार्यों के द्वारा निर्णीत है। उसके कारण ब्रह्मविद्या से ही मोक्ष होता है। ब्रह्म ही हम सब की आत्मा है। अतः ब्रह्मविद्या के द्वारा हम हमारे आत्मा का स्वरूप ही जानेंगे। आत्मस्वरूप ब्रह्म के ज्ञान के द्वारा ही ब्रह्म अभिन्न नित्य, निरतिशय आनन्द को प्राप्त करें। ब्रह्म स्वरूपभूत यह आनन्द निखिल दुःख विवर्जित है। उसके कारण ब्रह्मानन्द प्राप्ति में दुःखमय संसार नष्ट होता है। एवं जब हमारे द्वारा ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, तब हम निवृत्त निखिल दुःख आत्मानन्द को अनुभव करते हैं, संसार रूपी जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 25.4

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये गए हैं-

1. ज्ञान से ही मोक्ष होता है, ऐसा किस कारण से कहा जाता है?
2. मुमुक्षु द्वारा ज्ञान कहाँ से प्राप्त हो सकता है?
3. ज्ञान से जो मुक्त है वह क्या अनुभव करता है?

25.5 ज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष साधन किस लिए हैं?

ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त भी बहुविध मोक्ष-साधन कर्म-योग आदि शास्त्रों में सुने जाते हैं। वे ब्रह्म-ज्ञान की उत्पत्ति के लिए होते हैं।

जो वस्तु सर्वदा प्राप्त ही है उसकी प्राप्ति के लिये कुछ भी करना नहीं चाहिए। नित्य प्राप्त वस्तु के विषय में यह वस्तु मेरी नहीं है, प्रयत्न से यह मेरे द्वारा प्राप्तव्य है, ऐसा जो भ्रम है, उसका निवारण केवल ज्ञान से ही होता है। प्राप्त की भी अप्राप्ति रूप से भ्रान्ति का निवर्तक ही ज्ञान है। उससे जब साध्य सर्वदा साधक का सिद्ध होता है तब उसकी अप्राप्ति साध्य-विषयक अज्ञान के द्वारा ही हो, और पुनः प्राप्ति ज्ञान से होती है। आत्मा तीनों कालों में भी ब्रह्म ही है, अतः मोक्ष सभी प्राणियों का वस्तुतः सिद्ध ही है। तथापि ब्रह्मविषयक अज्ञान के कारण 'अहं न मुक्तः, अपितु संसारे बद्धः एव'' ऐसा जीव द्वारा चिन्तन किया जाता है। अतः ब्रह्मज्ञान से, संसार से मुक्ति होती है। सभी को आत्मत्व से नित्य सिद्ध, ब्रह्म का ज्ञान ही हमारे द्वारा ब्रह्मविद्या, अखण्डाकारवृत्ति, ब्रह्मानुभव इत्यादि शब्दों के द्वारा भी कहा जाता है। और मोक्षज्ञ ब्रह्मविद्या को ही अपेक्षित है, न की कर्मोपासना, योग, समाधि आदि को। एवं यदि ब्रह्म विद्या से ही मोक्ष होता है, तभी मोक्ष का उपाय अथवा साधन केवल ब्रह्मविद्या होगी। कर्मयोग, भक्तियोग, इन्द्रिय निग्रह, ध्यान इत्यादि मोक्ष साधन नहीं होंगे। और उस कर्म आदि की अत्यन्त अनुपयोगिता ही आध्यात्म मार्ग में प्राप्त होती है। किन्तु ऐसा नहीं होता है। कर्म, योग आदि श्रवण, मनन, निदिध्यासन पर्यन्त मोक्ष के साधन हैं, ऐसा वेदान्तशास्त्र में आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट है। उसके कारण संशय है- ब्रह्मज्ञान से अतिरिक्त कर्मयोग आदि साधन कैसे मोक्ष-साध न होते हैं?

कहा जाता है- संसार-कारण अज्ञान का निवारक ब्रह्मज्ञान ही होता है तो भी उस ब्रह्मज्ञान के उत्पत्ति के लिये अन्य साधन आवश्यक होते हैं। जैसे- ब्रह्मविद्या अथवा अखण्डाकारवृत्ति कलुषित अन्तः करण में उदित नहीं होती है। शुद्ध अन्तःकरण ही उसमें सर्वदा प्रतिबिम्बित ब्रह्म के अनुभव में समर्थ होता है। बहिर्मुखता, कर्मवासना, काम, क्रोध, लोभ इत्यादि मलों के द्वारा हमारा अन्तःकरण कलुषित होता है। इन मलों के निवारण के लिए कर्मयोग, उपासना इत्यादि साधन आवश्यक हैं। कर्मयोग-साधनों के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण युक्त जो साधक है, वह ही गुरू उपदिष्ट वेदान्त वाक्य का तात्पर्य जानता है। कर्मयोग आदि साधनों के निरन्तर अनुष्ठान से शुद्ध अन्तःकरण में ब्रह्मविद्या गुरूपदिष्ट, ब्रह्मबोधक वेदान्त वाक्यों श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा उत्पन्न होती है। यह ब्रह्मानुभव ही ब्रह्मविद्या अथवा अखण्डाकारवृत्ति कहलाती है। इस प्रकार शास्त्र में प्रोक्त ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त सभी साधनों का प्रयोजन यही है- मोक्ष सम्पादिका ब्रह्मविद्या के प्रमाणवृत्ति के आश्रयभूत जो अन्तःकरण है उसमें स्थित मलों के निवर्तन पूर्वक ब्रह्म-विद्या का उत्पादन। अतः ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त सभी मोक्ष-साधन ब्रह्म-ज्ञान की उत्पत्ति के लिये होते हैं, ऐसा सिद्ध है।

वास्तविक मोक्ष-साधन ब्रह्मविद्या ही है, ऐसा निश्चित है, अतः ब्रह्म विद्या ही मोक्ष है, इस प्रकार आचार्य ब्रह्मविद्या की स्तुति करते हैं। उस मोक्षरूप ब्रह्मविद्या के जो साध न हैं, वे भी मोक्ष-साधन ही है, ऐसा युक्त है। शास्त्र में प्रायः मोक्ष-साधन, इस शब्द से ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति के लिये जो साधन अपेक्षित है, वे निर्दिष्ट हैं। उसके कारण जहाँ विशेषतया मोक्ष-साधनों का विचार कर्तव्य होता है वहाँ हम ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति के लिये जो साधन कर्मयोग आदि होते है, उनका भी विचार करते हैं।

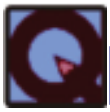

पाठगत प्रश्न 25.5

टिप्पणी

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये जा रहे हैं-

279. मोक्ष के साक्षात् साधन क्या हैं?

280. ब्रह्म ज्ञान अतिरिक्त साधन क्यों होते हैं?

25.6 ज्ञानोत्पत्ति के साधन और उनका त्रैविध्य

ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह सिद्ध ही है। अतः मोक्ष के साधनों का विचार करने पर अद्वैतवेदान्त शास्त्र में प्रायः ब्रह्म-ज्ञान की उत्पत्ति के प्रति जो साधन होते हैं, वे ही आलोचित हैं।

जो ब्रह्मविद्या-उत्पत्ति के साधन, मोक्ष साधन हैं, वे तीन प्रकार के होते हैं। वे हैं- अन्तरंग साधन, सहकारी साधन और परम्परा साधन।

जिस कारण से भी साधा जाता है, वही साधन कहलाता है। जहाँ वस्त्र साध्य होता है, वहाँ वस्त्र निर्माण के मुख्य साधन तन्तु होते हैं। उसके कारण तन्तु वस्त्र के प्रति अन्तरंग साधन होते हैं। किन्तु केवल तन्तुओं के द्वारा तन्तुवाय वस्त्र का निर्माण नहीं कर सकता अपितु वह तन्तुओं के साथ तुरी, वेमा इत्यादि वस्तुओं का भी उपयोग करता है। तन्तुओं के द्वारा वस्त्र-निर्माण के कार्य में तुरी, वेमा इत्यादि तन्तुवाय को सहायता करते हैं, ऐसा अर्थ है। उससे वस्त्र के प्रति तुरी, वेमा आदि सहकारी होते हैं। और वह सहकारी साधन तन्तुवाय साधन के समीप में स्वयं ही नहीं आते अपितु काष्ठों और अन्य उपकरणों के द्वारा श्रमपूर्वक वह निर्मित होते हैं। तुरी वेमा आदि सहकारी साधन का साधन काष्ठ आदि है, ऐसा अर्थ है। उसके कारण काष्ठ आदि वस्त्र के प्रति परम्परा साधन होता है। इस प्रकार तन्तुवाय वस्त्र को साधने के लिए प्रथम वस्त्र के परम्परा साधन काष्ठ आदि को संकलित करता है। तत्पश्चात् वह काष्ठ आदि के तक्षण आदि के द्वारा वस्त्र के सहाकारी साधन तुरी, वेमा आदि को सम्पादित करता है। तदनन्तर उसके सहकृतों के द्वारा वस्त्र के अन्तरंग साधन तन्तुओं के द्वारा वह वस्त्र को साधता है।

इस प्रकार मोक्ष में साधनीय (अथवा मोक्ष के साक्षात् साधनभूत ब्रह्मविद्या में साधनीय) मुमुक्षु के भी यथोक्त तीन प्रकार के साधन आवश्यक होते हैं। मोक्ष के प्रति अन्तरंग साधन श्रवण, मनन, निदिध्यासन होते हैं। सहकारी साधन श्रवण आदि के अनुष्ठान काल में सदा होते हैं- साधन चतुष्टय, इस नाम से शास्त्र में चार प्रसिद्ध साधन हैं। वे हैं- 'नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रर्थफलभोगविराग, शमादिषट्क-सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व।' (जैसे चैत आदि प्रसिद्ध हैं- अमानित्व, अद्वैष्टा सर्वभूतानाम्, शान्तो दान्त, उपरत इत्यादि शास्त्रवाक्यों

के द्वारा)। परम्परा साधन तो जिन साधनों के द्वारा साधनचतुष्टय रूप सहकारी साधन सिद्ध होते हैं वे ही है। यथा- कर्मयोग, भक्तियोग, जप, उपासना, ध्यान, यज्ञ, दान, तप इत्यादि (गीता उपविशयासने युञ्ज्याद् योगम् आत्मविशुद्धये, यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कायमेव तत् यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्) परम्परा साधनों को कभी बहिरंग साधन भी कहा जाता हैं

(तीन सोपान, उसके ऊपर ब्रह्मविद्या का उदय और उससे मोक्ष- ऐसा कोई भी चित्र)

एवं मोक्ष के तीन प्रकार के साधन सोपान क्रम से किस कारण से कहे जाते हैं, ऐसा संशय हो। वहाँ यहाँ समाधन है- कर्मयोग, ध्यानयोग इत्यादि के परम्परा साधनों का जो अनुष्ठान करता है, उसका ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर साधन चतुष्टय रूप उसका सहकारी साधन सम्पन्न होता है। शुद्ध अन्तःकरण और साधन चातुष्टय सम्पन्न व्यक्ति ब्रह्मविद्या में अधिकारी अथवा योग्य होता है। यहाँ ब्रह्मविद्या में अधिकारी, इस ब्रह्म-विद्योपदेशकों के वेदान्तवाक्यों के तात्पर्य अवगमन में अधिकारी हैं, ऐसा अर्थ है। वेदान्तवाक्यों का तात्पर्यावगमन श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप तीन उपायों द्वारा सिद्ध होता है। उससे ब्रह्मविद्या में जो अधिकारी है, वह श्रवणादि में अधिकारी है, ऐसा अर्थ समाहित होता है। इस प्रकार कर्मयोग आदि साधनों के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि और साधनचतुष्टय सम्पन्न ब्रह्मविद्या में अधिकारी होकर जो श्रवण आदि करता है, वह ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है, अतः साधनों का सोपान क्रम है, ऐसा जानते हैं।

पाठगत प्रश्न 25.6

यहाँ कुछ पाठगत प्रश्न दिये गए हैं।

1. तीन प्रकार के ज्ञान-साधन कौन से हैं?
2. मोक्ष के तीन साधनों में सोपान क्रम किस कारण से स्वीकार किया जाता है?

25.7 भगवद्गीता में ज्ञानोत्पत्ति के साधनों का संग्रह

आत्मा के स्वरूप परिज्ञान से ही मोक्ष होता है, ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण ने बार-बार हमें उपदेश दिया है। आत्मा का स्वरूप तो ब्रह्म है। उससे मोक्ष की जो आकांक्षा करता है, उसके द्वारा ब्रह्म ज्ञेय है। मुमुक्षु द्वारा ब्रह्म ही ज्ञेय है, इस युक्ति से ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह सिद्ध है। ऐसी स्थिति में अन्य शंका समुत्पन्न होती है- यह ब्रह्मज्ञान कैसे प्राप्तव्य है, इस ब्रह्म-ज्ञान के क्या-क्या साधन हैं? इस शंका निवारण के लिए श्रीकृष्ण भगवान श्रीमद्भवगद्गीता के तेरहवें अध्याय में ब्रह्म-ज्ञान के साधनों का संग्रहीत करके उपदेश दिया है। इन साधनों के अभ्यास से हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता

है। शुद्ध अन्त:करण साधन चतुष्टय द्वारा समुत्पन्न होता है। शुद्ध अन्त:करण युक्त साध के जब आत्मस्वरूप ब्रह्म के बोधक वेदान्त वाक्यों को सुनते हैं, उसके अन्त:करण में ब्रह्मज्ञान समुद्भूत होगा, और उससे वह संसार से मुक्त होगा। तथा भगवान द्वारा प्रोक्त ज्ञान के साधन है-

अमानित्वम् अदम्भित्वम् अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यम् आत्मविनिग्रह:॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम् अनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम्॥
असक्तिरनभिष्वङ्ग: पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यञच समचित्तत्वम् इष्टानिष्टोपपत्तिषु॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वम् अरतिर्जनसंसदि॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम् अज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय : 13, श्लोका : 7-11)

ये अमानित्व आदि जिससे ज्ञान के साधन होते हैं उससे ये श्रीभगवान् के ज्ञान शब्द के द्वारा अभिहित हैं- एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्। यथा लोक में आयुर्वै घृतम् ऐसा प्रयोग होता है तथा यह भी प्रयोग सम्भव होता है। घृत के भक्षण (खादन) से आरोग्य होता है और उससे आयु वर्द्धन होता है। एवं घृतसेवन से आरोग्यता और उससे दीर्घ आयु प्राप्त होती है, अत: आयुवृद्धि का साधन घृत आयु के समान ही है, ऐसी प्रशंसा की जाती है। इसी प्रकार यहाँ भी अमानित्व आदि साधनों के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है, यह हेतु का अमानित्व आदि ज्ञान ही है, ऐसा भगवान द्वारा प्रशस्ति है।

अमानित्व आदि ब्रह्म-ज्ञान के साधनों का सामान्य अर्थ नीचे प्रदर्शित है-

अमानित्व - 'आत्मन श्लाघनम् मानित्वम्'। उसका अभाव अमानित्व है।

अदम्भित्व - स्वधर्म प्रकटीकरण दम्भित्व है। उसका अभाव अदम्भित्व है।

अहिंसा - प्राणियों की पीड़ा हिंसा है। उसका अभाव अहिंसा है।

क्षान्ति - परापराधप्राप्ति में अविक्रिया।

आर्जव - ऋजुभाव अवक्रत्व।

आचार्योपासन - मोक्ष साधनोपदेष्टा आचार्य। उसका शुश्रूषादि प्रयोग द्वारा सेवन।

शौच - शुचिता। शारीरिक मलों का मिट्टी-जल से प्रक्षालन। मानसिक मलों का राग आदि का प्रतिपक्ष भावना से अपनयन।

स्थैर्य - स्थिरभाव। मोक्षमार्ग में ही कृत अध्यवसाय।

आत्मविनिग्रह – मन और अन्द्रियों का विनिग्रह। यहाँ आत्म शब्द से विशिष्ट मन और इन्द्रियादि कहलाते हैं।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम् – इन्द्रियविषयों और भोगों में विरागभाव।

अनह्यार – अह्यार का अभाव।

जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दु:ख – दोष का अनुदर्शन-जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि दु:खरूप दोष है, ऐसा अनुदर्शन। जन्म दु:ख है, मृत्यु दु:ख है, जरा दु:ख है, व्याधि दु:ख है, ऐसा अनुचिन्तन।

आसक्ति – भाग विषयों में सन्नरहितता।

पुत्रदारगृह आदि में अनभिष्वन्न – पुत्रों में, दार (पत्नी) में, गृह में, दासवर्ग आदि में अनासक्ति।

इष्टानिष्टोपपत्तिषु नित्यं समाचित्तत्वम् – इष्टों की और अनिष्टों की उपपत्ति में समचित्तत्व। उपपत्ति समप्राप्ति है। समचित्तत्व तुल्यचित्तता।

मयि अनन्ययोगेन

अव्यभिचारिणी भक्ति: – ईश्वर में अनन्ययोग से निश्चल भक्ति। 'भगवान से परे अन्य नहीं है, अत: वही हमारी गति है', इस प्रकार की निश्चित बुद्धि अनन्ययोग है।

विविक्तदेशसेवित्वम् – शुद्ध देश में वास।

जनसंसदि अरति: – संसार शून्य अविनीताओं की संसदि अरमण।

आध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् – आत्मस्वरूप विषयक ज्ञान में स्थिरता।

तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम् – तत्त्व ज्ञान के अर्थ की आलोचना। तत्त्व ज्ञान का अर्थ अथवा फल है-मोक्ष। मोक्ष के विषय में चिन्तन ही तत्त्व ज्ञानार्थ दर्शन है।

पाठसार

संसार रूपी बन्धन आत्मस्वरूप ब्रह्म के अज्ञान द्वारा ही उत्पन्न हुआ। उपनिषद्-मीमांसा रूप वेदान्तशास्त्र हमें आत्मस्वरूप ब्रह्म का बोध कराता है। उसके कारण हम में से जिसे संसार से समोक्ष की इच्छा होती है, वह साधक गुरू के पास विधिपूर्वक जाकर वेदान्तशास्त्र पढ़कर ब्रह्म को जानने के लिए अग्रसर होता है। ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविषयक अज्ञान को नष्ट करता है। अज्ञान के नष्ट होने पर साधक की संसार से निवृत्ति होती है और

टिप्पणी

उससे आत्मानन्द प्राप्त होता है। किन्तु यह संसार निवृत्ति है, ऐसा जाना जाता है, और परमानन्द की प्राप्ति कंठ-चात्रीकर न्याय के द्वारा प्राप्त की ही प्राप्ति है, ऐसा जाना जाता है। अज्ञान से अनिवृत्त की ज्ञान से निवृत्ति, आन से अप्राप्त की ज्ञान से प्राप्ति ऐसा अर्थ है। उसके कारण मोक्ष नित्य है। अज्ञान ही उसका प्रतिबंध है, अतः मुमुक्षु के द्वारा ज्ञान के लिये ही यत्न करना चाहिये।

ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष होता है। उससे मोक्ष का साक्षात् साधन ब्रह्मज्ञान ही है। ब्रह्मज्ञान उत्पादक होने से अन्य साधन भी मोक्ष साधन कहलाते हैं। ये ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति के साधन तीन (3) प्रकार के हैं- परंपरा साधन, सहकारी साधन और अंतरंग साधन चित्त शुद्धि के साधन परंपरा साधन होते हैं। अंतरंग साधन के अनुष्ठान में साधक के सहकारी साधन सहकारी साधन कहलाते हैं। सहकारी साधनों से युक्त ब्रह्मविद्या के अधिकारी साधक के द्वारा अनुष्ठान करने योग्य साधन अंतरंग साधन हैं। अंतरंग साधन के अनुष्ठान द्वारा ब्रह्मविद्या उत्पन्न होती है।

पाठान्त प्रश्न

इसमें परीक्षा-उपयोगी प्रदृष्टव्य प्रश्न दिये जाते हैं-

1. वेदान्तशास्त्र क्या है?
2. वेदान्तशास्त्राध्ययन का क्या प्रयोजन है।
3. मोक्ष क्या है और वह कैसे सिद्ध होता है?
4. मुमुक्षु ब्रह्मज्ञान कैसे प्राप्त करता है?
5. मोक्ष नित्य है, ऐसा किस कारण से कहते हैं?
6. रज्जु-सर्प न्याय को व्याख्यात करें?
7. कण्ठचामीकर न्याय को व्याख्यात करें?
8. ब्रह्मविद्या के उत्पादक मोक्ष साधनों का वर्णन करें?
9. मोक्ष साधनों में सोपानक्रम कैसे योगित है, व्याख्यात करें।
10. अमानित्व आदि साधन क्या हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर - 25.1

1. जन्म, जरा, मरण आदि चक्र ही संसार कहलाता है। आत्मस्वरूप विषयक अज्ञान संसार का कारण है।

2. आत्मस्वरूप विषयक अज्ञान से ही संसार उत्पन्न हुआ। जब आत्मविषयक ज्ञान होगा तब संसार कारण वह अज्ञान नष्ट होगा। अज्ञान के नष्ट होने पर संसार भी निवृत्त होगा। आत्म विषयक ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान भी कहलाता है। उसके कारण ब्रह्मज्ञान से ही संसार की निवृत्ति होती है।

3. वेदान्तशास्त्र उपनिषद् मीमांसा द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्म के बोध के लिए प्रवृत्त हुआ।

4. साधन चतुष्टय सम्पन्न ही वेदान्तशास्त्र को पढ़कर उसका तात्पर्यभूत आत्मस्वरूप ब्रह्म को जानने हेतु अग्रसर होता है। उससे साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति ही वेदान्तशास्त्र में अधिकारी कहलाता है।

उत्तर-25.2

1. संसार के दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष कहलाता है।

2. वैषयिकानन्द अनित्य और सातिशय होता है। आत्मस्वरूपानन्द अथवा ब्रह्मानन्द नित्य और निरतिशय होता है।

3. ब्रह्मज्ञान से ब्रह्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति होने पर मोक्ष प्राप्त है।

उत्तर-25.3

1. मन्द अन्धकार में मार्ग में रज्जु को देखकर कोई ''यह सर्प है'', ऐसा चिन्तन करके भ्रान्त होता है। जब कोई अपर (अन्य) व्यक्ति ''यह सर्प नहीं है अपितु रज्जु है', ऐसा उसको बोधित किया तब उसकी भ्रान्ति गई। तब सर्प निवृत्त हुआ, ऐसा वह कहता है। किन्तु वस्तुत: सर्प पूर्व में ही निवृत्त था। तथापि वह अनिवृत्त है, ऐसी उस व्यक्ति की भ्रान्ति थी। रज्जु ज्ञान से जब वह भ्रान्ति गई तब निवृत्त सर्प की ही निवृत्ति हुई। यह दृष्टान्त रज्जुसर्प न्याय कहलाता है। रज्जु सर्पन्याय से यह सिद्ध होता है- निवृत्त की भी निवृत्ति सम्भव होती है।

2. किसी महिला ने उसका चामीकर (स्वर्ण हार) कहीं गिरकर अप्राप्त है, इस प्रकार चिन्तन किया। जब अन्य कोई उसके कण्ठ में ही चामीकर है, ऐसा बोध कराता है, तब चामीकर प्राप्त हुआ, ऐसा वह कहती है। किन्तु वह चामीकर सदा प्राप्त ही था। उसने भ्रम से उसको अप्राप्त माना। जब ज्ञान से भ्रान्ति गई तब प्राप्त चामीकर की ही प्राप्ति हुई। यह दृष्टान्त कण्ठ-चामीकर न्याय कहलाता है। कण्ठ-चामीकर न्याय से यह सिद्ध होता है- प्राप्त की भी प्राप्ति सम्भव होती है।

3. रज्जुसर्प न्याय से निवृत्त की ही संसार के दु:ख की निवृत्ति है, कण्ठ-चामीकर न्याय से प्राप्त की ही परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष में होती है, अत: मोक्ष नित्य है, ऐसा जाना जाता है।

4. मोक्ष नित्य है तो भी आत्मस्वरूप विषयक अज्ञान से संसार अनिवृत्त है, और ब्रह्मानन्द अप्राप्त है, ऐसा हम सोचते हैं। उसके कारण हम बद्ध हैं।

उत्तर-25.4

1. आत्मविषयक अज्ञान से संसार बंधा हुआ है। उस अज्ञान से निवृत्ति जब होती है तब संसार भी निवृत्त होता है और मोक्ष होता है। अज्ञान का निवर्तक केवल ज्ञान ही होता है। उसके कारण ज्ञान से ही मोक्ष होता है।
2. आत्मा का यथार्थ स्वरूप ब्रह्म उपनिषदों में बोधित होता है। उसके कारण आत्म ज्ञान के लिए उपनिषद् का अर्थ ज्ञेय है। उस अर्थ का निर्णय करने हेतु उपनिषद्-मीमांसा रूप अद्वैत वेदान्तशास्त्र प्रवृत्त हुआ। उसके कारण मुमुक्षु द्वारा आत्मज्ञान को वेदान्तशास्त्र से प्राप्त किया जा सकता है।
3. ज्ञान के द्वारा जो मुक्त है, वह नित्य और निरतिशय ब्रह्मानन्द को अनुभव करता है।

उत्तर-25.5

1. मोक्ष का साक्षात् साधन ब्रह्मज्ञान हैं अत एव ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष है, ऐसा कहा जाता है।
2. मोक्ष का साक्षात् साधन ब्रह्मविद्या ही है तो भी उसकी उत्पत्ति अशुद्ध अन्त:करण में नहीं होती है। उससे ब्रह्म ज्ञान के लिये अन्त:करण की शुद्धि सम्पादनीय है। अन्त:करण में स्थित मलों की निवृत्ति के लिये ही कर्मयोग आदि साधन शास्त्र में बोधित हैं। अत: ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त सभी मोक्षसाधन अन्त:करण शुद्धि द्वारा ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति के लिये होते है।

उत्तर-25.6

1. जो ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति के साधन, मोक्ष साधन हैं, वे तीन प्रकार के हैं। वे हैं- अन्तरंग साधन, सहकारी साधन और परम्परा साधन।
2. कर्मयोग, ध्यान योग इत्यादि परम्परा साधनों का अनुष्ठान जो करता है, उसका ही अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्त:करण के शुद्ध होने पर उसके साधन चतुष्टय नामक सहकारी साधन सम्पन्न होते है। शुद्ध अन्त:करण और साधन चतुष्टय से सम्पन्न मनुष्य ही ब्रह्म विद्योपदेशक वेदान्तवाक्यों को सुनकर आत्मस्वरूप ब्रह्म का साक्षात् करता है। इस प्रकार कर्मयोग आदि साधनों के द्वारा अन्त:करण शुद्धि और साधन चतुष्टय को सम्पादित करके ब्रह्मविद्या का अधिकारी बनकर जो श्रवण आदि करता है, वह ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है, अत: साधनों का सोपानक्रम है, ऐसा जाना जाता है।

॥पच्चीसवाँ पाठ समाप्त॥

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

माध्यमिक पाठ्यक्रम

भारतीय दर्शन (247)

औचित्य

इस धरातल पर सभी जीव इष्ट ही प्राप्त करना चाहते हैं। सुख ही इष्ट है और दुख ही अनिष्ट है। इसीलिए सुख का उपाय भी इष्ट है। दुख का उपाय भी अनिष्ट है। सुख के दो प्रकार हैं नित्य और अनित्य। नत्यि सुख आत्म सुख है। वह जन्य नहीं है। ना ही किसी कारण से वह सुख उत्पन्न होता है। वह सुख तो आत्म स्वभाव से ही उत्पन्न होता है। अनित्य सुख जन्य है। उसका कोई भी कारण हो सकता है। अनित्य सुख का कारण ही धर्म कहलाता है। धर्म के बिना सुख नहीं होता है। धर्म भी जन्य है। वेदों में वर्णित जो यज्ञ आनद है वही धर्म है। **तद्यागादिजन्यः पुण्याख्यः अदृष्ट्विशेषो वा धर्मः।** धर्म अंतः करण में विद्यमान किसी गुण विशेष का नाम है।

दुख का कुछ ना कुछ कारण तो होगा ही। सुख या दुख बिना कारण के उत्पन्न नहीं होते। सुख का क्या कारण है? जैसा तैसा संदिग्ध ज्ञान आवश्यक है। उससे जो इष्ट का जो सुख है उसका जो साधन है वहां निष्ठा से प्रवृत्त होना चाहिए। किंतु उस सुख के कितने भेद हैं वह भी स्पष्ट रूप से जानना चाहिए। इस प्रकार – **'इदं मदिष्ट्साधनम्'** यह ज्ञान प्रवृत्ति के प्रति कारण होता है।

पुरुष नर या नारी जो कामना या इच्छा करते हैं वह फलीभूत होता है उसी को पुरुषार्थ कहा गया है। पुरुष सुख ही संचित करता है। अतः सभी साधारण प्राणियों के अनुसार सुख ही पुरुषार्थ है। सुख के प्रकार हैं। इसीलिए पुरुषार्थ के भी प्रकार हैं। नित्य सुख ही मोक्ष कहलाता है। अनित्य सूख ही काम कहलाता है। काम का कारण ही धर्म कहलाता है। धर्म का साधन ही अर्थ कहलाता है। अर्थ ही धर्म की सामग्री धन आदि है। इस प्रकार धर्म अर्थ काम मोक्ष चार पुरुषार्थ वैदिक संस्कृतियों में प्रसिद्ध हैं। उनमें काम और मोक्ष मुख्य हैं काम का साक्षात कारण धर्म है। धर्म का प्रायोजक अर्थ है। काम की कल्पना ही धर्म और अर्थ का पालन करवाती हैं अन्यथा नहीं। इसलिए धर्म और अर्थ गौड़ हैं। काम और मोक्ष में भी मोक्ष नित्य है। इसलिए मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। अर्थ अनित्य है यह प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात होता है। इंद्रिय जन्म सुख क्षणिक है वह भी अनित्य ही है ऐसा अनुभव सिद्ध है। अनित्य सुख का कारण धर्म भी अर्थात अनित्य है। कारण के होने पर कार्य का अभाव नहीं होता है।

वेदों में श्रुति, उसके अनुसार युक्ति और अनुभव यह तीनों हमेशा प्रर्माण के साथ उल्लेखित किए जाते हैं।

''यत्कृतकं तदनित्यम् इति नियमः दृष्टानुमानोभयसिद्धः''। धर्म कर्म से उत्पन्न होता है इसलिए अनित्य है। काम धर्म से उत्पन्न होता है इसलिए अनित्य है। इस प्रकार नित्यत्व से सिद्ध है कि मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। मोक्ष ब्रह्म ज्ञान से होता है यह अद्वैत वेदांत का सिद्धांत है। इसलिए ब्रह्म क्या है? उसका ज्ञान क्या है? उसके लाभ का प्रमाण क्या है? इस तरह की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उन जिज्ञासाओं की शांति के लिए अद्वैत वेदांत के मतों के अनुकूल प्रकरण यहां पर उपस्थित है।

सभी दार्शनिक जीवों के सुख की इच्चा को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। परंतु सुख साधन के विषय में और स्वरूप के विषय में उनके अनेक मतभेद हैं। दसवीं कक्षा के इस ग्रंथ में सभी दर्शनों का सामान्य परिचय विद्यमान है। वेदांत

के प्रर्थानों का वेदांत के संप्रदायों का विशेष परिचय पाठ्य पुस्तक में विद्यमान है। इसी प्रकार अद्वैत वेदांत के अनुसार संक्षेप से कुछ विषय उस्थापित हैं। जिसके द्वारा अद्वैत वेदांत में यथा प्रक्रिया प्रवेश हो। विशेष रूप से विषय से परिचय हो। दसवीं कक्षा के पाठों का अच्छी तरह से अध्ययन करके 12वीं कक्षा के पाठों का पढ़ना है। जिसके द्वारा इस विषय का अच्छा ज्ञान होगा। यह दसवीं कक्षा का पाठ आधार रूप में महत्वपूर्ण है।

इस तरह के बहुत सारे पाठ्यक्रम छात्रों के हित के लिए निर्मित हैं। जिससे दार्शनिक तत्वों का सरल शैली में बोध होगा इस प्रकार की आशा करते हैं।

अधिकारी

यह पाठ्यविषय संपूर्ण रूप से सस्कृत भाषा में लिखा हुआ है। परीक्षा भी संस्कृत माध्यम से ही होगी। इसलिए इस पाठ का अधिकारी कौन होगा यह प्रश्न निश्चित रूप से उत्पन्न होता है।

यहां पर वह छात्र अधिकारी है जो –

- काव्य व्याकरण कोष और वेद का विविध रूप से अध्ययन किया हो दर्शनशास्त्र को देखने की इच्छा और समझने की इच्चा मन में व्याप्त हो।
- न्याय शास्त्र के तर्क संग्रह इस ग्रंथ का दीपिका सहित ज्ञान रखता हो।
- न्याय की भाषा अर्थात न्याय शास्त्र की शैली को जानता हो।
- सरल संस्कृत, संस्कृत साहित्य के सरल गद्यांश को और पद्यांश को पढ़ और समझ सके।
- सरल संस्कृत को समझ सके।
- अपने भावों को संस्कृत भाषा में लिखकर प्रकट कर सके।

प्रयोजन (सामान्य)

माध्यमिक स्तर पर भारतीय दर्शन का पाठ्य रूप से योजना के कुछ उद्देश्य यहां नीचे दिए जाते हैं।

1. इहलोक में या परलोक में जीवन का परम लक्ष्म सुख लाभ ही है। इस विषय को स्पष्ट ज्ञान छात्रों को हो यह लक्ष्य है।
2. बहुत से दर्शन सुख प्रतिपादन में प्रवृत्त हैं और कुछ उनके वृद्ध है। उनके विरोध के क्या कारण हैं छात्र इनको जानकर सूक्ष्म चिंतन कर सकें।
3. जीवन में विभिन्न दार्शनिक संप्रदायों में परस्पर कलह का कारण जानकर उनमें सौहार्द का निर्माण पुनः उत्पन्न करा सकें ऐसा सामर्थ छात्रों में उत्पन्न हो।
4. अपने और अपने परिचितों के जीवन दर्शन को स्वीकार कर पाने में सक्षम हो।
5. भारतीय दर्शन की महीका को जानकर उसके प्रचार में आदर और श्रृद्धा पूर्वक प्रवर्तित हो।

6. छात्र भारत की अति प्राचीन भारतीय ज्ञान संपदा, वैज्ञानिकता और सर्वजन उपकार की महिमा को गर्व के साथ संसार में प्रसारित करें।
7. दर्शन के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होगी जिससे दार्शनिक ग्रर्थों के सरल अंशों को पढ़कर छात्र उन अंशों का अर्थ ज्ञात कर पाने में सक्षम होंगे वे स्वयं ही मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति करने में समर्थ होंगे।
8. दर्शनाध्ययन करके छात्र महाविद्यालय स्तर पर और विश्वविद्यालय स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए अवसर को प्राप्त करने में समर्थ होंगे।
9. दार्शनिक चिंतन में रुचिमंत होकर शक्त तो संलग्न होंगे।

प्रयोजन (विशिष्ट)

दर्शन में प्रवेश के लिए सामर्थ्य

1. दर्शन में कौन-कौन से विषय सम्मिलित हैं इसका सामान्य ज्ञान।
2. आस्तिक और नास्तिक दर्शन के भेद का ज्ञान हो।
3. नास्तिकों के सिद्धांतों का, आर्चायों के ग्रथों का, परंपराओं का, सामान्य ज्ञान हो। जिससे उस दर्शन को अधिक पढ़ने में मन हो।
4. आस्तिक को के सिद्धांतों का, आर्चायों के ग्रथों का, परंपराओं का, सामान्य ज्ञान हो। जिससे उस दर्शन को अधिक पढ़ने में प्रवर्तित हो सके।
5. पढ़ी हुई सामिग्री का आश्रित प्रश्नों के उत्तर देंगे।
6. दर्शन के अध्ययन में सामर्थ्य
7. प्रस्थानत्रय का सब विस्तार पूर्वक ज्ञान प्राप्त हो। जिससे प्रस्थानत्रय से आगे भी विस्तार पूर्वक अध्ययन में प्रवर्तित हो सके।
8. अद्वैत वेदांत के मत से ब्रह्म, माया, जीव, ईश्वर, अध्यारोप, अपवाद, मोक्ष, और उनके साधन इत्यादि बहुत से विषयों का ज्ञान हो।
9. इस पाठ्य विषय के ज्ञान से उस दर्शन में विद्यमान अन्य आकार ग्रंथों के अध्ययन में समर्थ हों।
10. दर्शन के प्रयोग का सामर्थ्य
11. दर्शन के स्पष्ट ज्ञान को प्राप्त कर अपने जीवन में उसके प्रयोग को करके कृतकृत्य होगा।
12. जिस प्रकाश वैद्य लोगों को देखकर उनके रोग आदि के विषय में चिंतन करता है, चोर धनकोष के विषय में चिंतन करता है, व्यापारी क्रेताओं को देखता है, उसी प्रकार जगत को दार्शनिक रूप से देखने में समर्थ हों।
13. अन्य भी दिगभ्रमित लोगों के जीवन में पथ प्रदर्शक रूपी दीपक के समान सहायक होंगे।

पाठ्य सामग्री

पाठ्क्रम के साथ निम्नलिखित सामग्री समायोजित होगी -

- दो मुद्रित पुस्तकें।
- एक शिक्षक अंकित मूल्यांकन प्रपत्र दिया जायेगा। इसके साथ छात्रों के द्वारा एक परियोजना कार्य भी (प्रोजेक्ट) करना है।
- दर्शन का शिक्षण प्रायोगिक रूप से भी होगा। परन्तु प्रायोगिक परीक्षा कोई भी नहीं है।
- पाठ निर्माण करने में संपर्क कक्षाओं के अध्यापन काल में छात्रों के जीवन कौशल का अच्छी प्रकार से विकास हो ऐसा ध्यान होना चाहिए। इससे उनमें अपने आप युक्ति समन्वित चिन्तन शक्ति का विकास होगा।
- मुक्त विद्यालय में प्रवेश के बाद इस पाठ्यक्रम को विद्यार्थी एक वर्ष से प्रारंभ कर अधिक से अधिक पांच वर्षों में पूर्ण कर सकते हैं।

अङ्क मूल्यांकन विधि और परीक्षा योजना

- पत्र के (100) सौ अंक हैं। परीक्षा का समय तीन घंटे होगा। इस पत्र का स्वरूप लिखित ही है (Theory)। प्रायोगिक रूप से (Practical) कुछ भी नहीं है। रचनात्मक (Formative) योगात्मक (Summative) दो प्रकार से मूल्यांकन होगा।
- रचनात्मक मूल्याकन - बीस अंकों (20) का शिक्षक अंकित कार्य का (TMA) एक पत्र है। इसका मूल्यांकन अध्ययन केन्द्र (Study Centre) में हों इस कार्य के अंक अंकपत्रिका (Marks Sheet) में अलग से उल्लेख होगा।
- योगात्मक मूलकन- वर्ष में दो बार (मार्च मास में और अक्टूबर मासे में) बाह्यपरीक्षा होगी। वहाँ परीक्षा में समुचित मूल्यांकन होगा।
- प्रश्नपत्र में ज्ञान (Knowledge) अवगम (Understanding) अभिव्यक्ति (Application Skill) और अवलम्ब युक्त अनुपात से प्रश्न पूछे जायेंगे।
- परीक्षाओं में अतिलघुत्तरात्मक - लघुत्तरात्मक निबन्धात्मक - प्रश्नों का भी समावेश होगा।
- दर्शन प्रस्थान, नास्तिक दर्शन, आस्तिक दर्शन, अद्वैत वेदांत इत्यादि ये मुख्य विषय होंगे। अन्य स्थानों पर प्रसक्त अनुप्रसक्त भी कुछ विषय को जानना चाहिए।
- उत्तीर्णता का परिमाप (Condition) - तैतीस प्रतिशत (33%) अंक उत्तीर्णता के लिए (मानदंड) है।
- संस्थान की परीक्षा में उत्तर लेखन भाषा - संस्कृत (अनिवार्य) या हिन्दी

अध्ययन योजना

- निदेश भाषा (Medium of instruction) - संस्कृत।
- स्वाध्याय काल अवधि (Self Study Hours) 240 घंटे
- कम से कम तीस (30) संपर्क कक्षा (Personal Contact Programme - PCP) अध्ययन केंद्र में होगी।
- भारांश - सैद्धांतिक (Theory) शत प्रतिशत। प्रायोगिक (Practical) नहीं है।

अंक विभाजन

आगे की सारणी में देखना चाहिए।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय के बिंदु)

माध्यमिक कक्षा हेतु भारतीय दर्शन की पुस्तक में निम्न विषय सम्मिलित हैं। जिनका विवरण नीचे दिया गया है संपूर्ण पाठ्य विषय के तीन भाग किए गए हैं प्रत्येक भाग में कुछ पाठ, स्वाध्याय के लिए कितने घंटे, सैद्धांतिक परीक्षा में कितने अंश, प्रायोगिक परीक्षा में कितने अंश, और प्रत्येक अध्याय में अंक विभाजन विषय यहाँ दिए गए हैं।

अध्याय-1 दर्शन प्रस्थान परिचय (पाठ 1 से 4)
अध्याय का औचित्य

महर्षि कपिल जन्म से ही सिद्ध जाने जाते हैं। सभी दर्शनों का प्रारंभ हो उसी दर्शन से होता है। इस प्रकार कपिल का सांख्य दर्शन वेदांत के अति समीप है। इसके मुख्य और पूर्व पक्ष हैं। संख्याओं का गुणा विचार पुरुष विचा सृष्टि विचार इत्यादि अद्वैत वेदांत में कुद परिवर्तन से स्वीकार किए गए हैं ऐसा प्रतीत होता है। इसलिए पूर्व और मूल पक्ष से संख्याओं का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है हेतू के लिए यहां पर सांख्य दर्शन के प्रोक्त विषय यहां उद्धृत हैं।

अध्याय-2 नास्तिक दर्शन (पाठ 5 से 7)
अध्याय का औचित्य

नास्तिक, वैशेषिक, चार्वाक, बौद्ध, जैन मुख्य हैं। उन दर्शनों के स्वरूप, भेद, आचार्य, ग्रंथ, ऐतिहासिकता, संप्रदाय इत्यादि विषय यहां प्रतिपादित हैं।

अध्याय-3 आस्तिक दर्शन (पाठ 8 से 14)
अध्याय का औचित्य

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत यह 6 आस्तिक दर्शन है। उन दर्शनों के स्वरूप, भेद, आचार्य, ग्रंथ, ऐतिहासिकता, संप्रदाय इत्यादि विषय यहां प्रतिपादित हैं।

अध्याय-4 अद्वैत वेदांत (पाठ 15 से 23)
अध्याय का औचित्य

सामान्य रूप से छात्र सभी दर्शन नामों से परिचित हों। तथापि किसी एक दर्शन में छात्र का प्रक्रिया के अनुसार ज्ञान अवश्यक ही होना चाहिए। दर्शनों में अपने सिद्धांत किस तरह जुड़े हुए हैं किन युक्तियों से समर्थित हैं युक्ति प्रदर्शन के प्रमाण या वे प्रमाण कौन से हैं इत्यादि सब कुछ सब विस्तारपूर्वक छात्र को ज्ञान होना चाहिए। इसलिए दर्शनों में श्रेष्ठ दर्शनों का ही सम विस्तारपूर्वक परिचय हो इस चिंतन के साथ अद्वैत वेदांत का प्रकरण अनुसार विभाग बना कर दसवीं कक्षा में कुछ प्रकरण स्थापित किए गए हैं। बचे हुए विभाग 12वीं श्रेणी में स्थापित हैं। अनुबंध चतुष्टय, ब्रह्म, माय, ईश्वर, जीव, मोक्ष इनके साधन के यह विषय यहां प्रतिपादित हैं।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय बिन्दु)

माध्यमिक कक्षा हेतु भारतीय दर्शन की पुस्तक में निम्न विषय समाहित हैं।

क्र.सं.		मुख्यबिन्दवः	स्वाध्यायाय होराः	भारांशः (अङ्कः)
1.	**अध्याय-1**	**दर्शनविद्याप्रस्थानपरिचयः**	50	20
	पाठ-1	दर्शनपरिचयः- दर्शनपदार्थः, दर्शनस्थ आवश्यकता, व्यापकता, प्रवृत्तिः, मूलम्, विशेषता, दर्शनेषु मतभेदस्य कारणानि, प्रमाणानि इत्यादिकम्		
	पाठ-2	भारतीयविद्याविभागः- भारतीयविद्याविभाजनस्य विविधाः प्रकाराः।		
	पाठ-3	भारतीयविद्यापरिचयः- 1 वेदवेदाङ्गपरिचयः		
	पाठ-4	भारतीयविद्यापरिचः- 2. उपाङ्गानाम् उपवेदानां व परिचयः।		
	पाठ-5	प्रस्थानत्रयम्- श्रुतिस्मृतिन्यायप्रस्थानानिः समृतिप्रस्थाने भगवद्गीतया सह भागवतादिपुराणानाम् अष्टावक्रसंहितादीनाञ्च अन्तर्भावः।		
	पाठ-6	प्रस्थानत्रयम्- श्रुतिस्मृतिन्यायप्रस्थानानि। स्मृतिप्रस्थाने भगवद्गीतया सह भागवतादिपुराणानाम् अष्टावक्रसंहितादीनाञ्च अन्तर्भावः।		
2.	**अध्याय-2**	**नास्तिकदर्शनानि**	30	12
	पाठ-7	चार्वाकदर्शनम्- दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रमेयानि, मोक्षः इत्यादीनां विचारः।		
	पाठ-8	बौद्धदर्शनम्- दर्शनाभिधानस्य व्युपत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रमेयानि, मोक्षः इत्यादीनां विचारः।		
	पाठ-9	आर्हतदर्शनम्- दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः,, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रमेयानि, मोक्षस्वरूपम्, मोक्षसाधनम् इत्यादीना विचारः।		
3.	**अध्याय-3**	**आस्तिकदर्शनानि**	75	32
	पाठ-10	न्यायवैशेषिकदर्शने- दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलभास्त्राणि, पदार्थाः प्रमेयप्रमाणानादीनि, मोक्षः इत्यादीनां विचारः।		
	पाठ-11	न्यायवैशेषिकदर्शने दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि पदार्थाः, प्रमाणानि, मोक्षः, इत्यादीनाः विचारः।		
	पाठ-12	सांख्यदर्शनम्- दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रेमयानि, मोक्षः इत्यादीना विचार।		

क्र.सं.		मुख्यबिन्दवः	स्वाध्यायाय होराः	भारांशः (अङ्कः)
	पाठ–13	योगदर्शनम्– दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रमेयानि, मोक्षस्वरूपम्, मोक्षसाधनम् इत्यादीना विचारः। किञ्च योगोपनिषदाम् परिचयः, हठयोगादिविभिन्नयोगसम्प्रदायानाम् परिचयः।		
	पाठ–14	मीमांसादर्शनम्– दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रमेयानि, मोक्षस्वरूपम्, मोक्षसाधनम् इत्यादीनां विचारः।		
	पाठ–15	वेदान्तदर्शनम्– दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रेमयानि, मोक्षस्वरूपम्, मोक्षसाधनम् इत्यादीनां विचारः। किञ्च अद्वैतादीना वेदान्तसम्प्रदायताभाम् भिन्नानाम् मतानाम् भूमिका।		
	पाठ–16	वेदान्तदर्शनम्–दर्शनाभिधानस्य व्युत्पत्तिः, इतिहासः, आचार्याः, मूलशास्त्राणि, प्रमाणानि, प्रेमयानि, मोक्षस्वरूपम् मोक्षसाधनम् इत्यादीनां विचारः। अद्वैतादीना वेदान्तसम्प्रदायगतीनाम् भिन्ननाम् मतानाम् भूमिका।		
4.	**अध्याय–4**	**अद्वैतवेदान्त**	**85**	**36**
	पाठ–17	अनुबन्धचतुष्टयम्– अधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि।		
	पाठ–18	ब्रह्म– स्वरूपतटस्थलक्षणानि। समन्वयाधिकरणमाश्रित्य ब्रह्मतत्वप्रबोधनम्।		
	पाठ–19	माया– वेदान्तसारस्थानि पञ्च लक्षणानिः विवेकचूडामण्यादिप्रकरणेभ्य प्रसिद्धश्लोकानाम् उद्धृतयः।		
	पाठ–20	ईश्वरः– प्रतिबिम्बदृष्टान्तमुखेन अवच्छेददृष्टान्तमुखेन च ईश्वरस्वरूपबोधनम्।		
	पाठ–21	जीवः– प्रतिबिम्बदृष्टान्तमुखेन अवच्छेददृष्टान्तमुखेन च ईश्वरस्वरूपबोधनम्।		
	पाठ–22	अध्यारोपापवादौ– अध्यारोपापवादयोः आवश्यकता, स्वरूपम् दृष्टानताः, सृष्टिश्रुतिभिः अस्य न्यायस्य सम्बन्धः।		
	पाठ–23	मोक्षोपायः बहिरङ्गसाधनम्–कर्म, भक्तिः, उपासना। यज्ञदानतपासि।		
	पाठ–24	मोक्षोपायः अन्तरङ्साधनम्–श्रवणमननिदिध्यासनानि। समाधिः।		
	पाठ–25	मोक्षः मोक्षस्वरूपम्ः प्राप्तप्राप्ति–परिहृतपरिहारन्यायमाश्रित्य दृष्टान्तमुखेन विवरणम्।		

प्रश्न पत्र का प्रारूप
(Question Paper Design)

विषय : भारतीय दर्शन (247) **स्तर: माध्यमिक कक्षा**

परीक्षा अवधि : (Time) तीन घण्टें (3 hrs) **पूर्णांक : (Full Marks)-100**

लक्ष्य के अनुसार अङ्क विभाजन

विषय	अङ्क	प्रतिशत योग
ज्ञान (Knowledge)	25	25%
अवबोध (Understanding)	45	45%
अनुप्रयोगकौशल (Application Skill)	30	30%
महायोग	**100**	

प्रश्न प्रकार से अङ्कों का विभाजन

प्रश्न प्रकार	प्रश्न संख्या	अङ्क	योग
दीर्घोत्तरीयप्रश्न (LA)	5	6	30
लघूत्तरात्मकप्रश्न (SA)	10	4	40
लघूत्तरीयप्रश्न (VSA)	10	2	20
बहुविकल्प के प्रश्न एक अङ्क के प्रश्न स्तम्भ मिलान और रिक्त स्थान पूर्ति	0	1	10
महायोग	**35**		**100**

पाठ्य विषय विभागानुसार भारांश

विषय घटक	अङ्क	स्वाध्याय के घंटे
दर्शन प्रस्थान परिचय	20	50
नास्तिक दर्शन	12	30
आस्तिक दर्शन	32	75
अद्वैत वेदांत	36	85
महायोग	**100**	**240**

प्रश्न पत्र के कठिनता का स्तर

प्रश्न स्तर	अङ्क
कठिन (Difficult) (मेधावी एवं उत्तर देने में समर्थ)	25
मध्यम (Medium) (नित्य पठन अध्यवसायी छात्र उत्तर देने में समर्थ)	50
सरल (Easy) (समग्र पाठसामग्री को थोड़ा पढ़कर छात्र उत्तर देने में समर्थ)	25

आदर्श प्रश्न पत्र
(Sample Question Paper)

इस प्रश्न पत्र में ..... प्रश्न हैं ..... और मुद्रित है।

(Roll No.)												
अनुक्रमाङ्क	4	5	0	1	5	9	1	8	3	0	0	1

(Code No.)
कूट संख्या 55/SS/A/A
SET
स्तबक: A

भारतीय दर्शन

Bhartiya Darshan

(247)

परीक्षा दिन और दिनांक _____
Day and Date of Emamination

निरीक्षक का हस्ताक्षर
Signature of two Invigilators (1) _____
(2) _____

सामान्य निर्देश

1) अनुक्रमांक प्रश्न पत्र के प्रथम पृष्ट पर अवश्य लिखें।

2) निरक्षण करें की प्रश्न पत्र की क्रम संख्या प्रश्नों की संख्या प्रथमपुट के प्रारम्भ में दी हुई संख्या के समान है या नहीं। प्रश्नक्रम सही है अथवा नहीं।

3) वस्तु निष्ठ प्रश्नों के (क), (ख), (ग), (घ) इन विकल्पों में से युक्त उत्तर चुनकर उत्तर पत्र में लिखें।

4) सभी प्रश्नों के उत्तर निर्धारित समय में ही लिखें।

5) उत्तर पत्र में आत्मपरिचयात्मक लेखन अथवा निर्दिष्ट स्थान को छोड़कर अन्य कहीं पर भी अनुक्रमाङ्क लिखना मना है।

6) अपने उत्तरपत्र में प्रश्नपत्र की गूढसंख्या अवश्य लिखें।

7) सभी प्रश्नों के उत्तर संस्कृत या हिन्दी भाषा में ही लिखें।

भारतीय दर्शन

Bhartiya Darshan

(247)

परीक्षा समय अवधि : तीन घण्टे (3 Hrs) पूर्णांक (Full Marks) 100

निर्देश :-

1) इस प्रश्न पत्र के (A) भाग में 10, (B) भाग में 10, (C) भाग में 10, (D) भाग में 5 प्रश्न सहित कुल (35) प्रश्न है।

2) प्रश्न पत्र के दाहिनी तरफ संख्याओं में (अंक x प्रश्न = पूर्णांक) इस प्रकार अंकों का निर्देश किया है।

3) सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

(A) दसों के युक्त विकल्प चुनो।

1. ''जनमाद्यस्य यत:'' इसमें ब्रह्मा के कितने लक्षण बताए गए हैं?

   (क) 2 (ख) 1 (ग) 3 (घ) 4

2. ''व्यष्टिस्थूलशरीराभिमानी'' कौन है?

   (क) वैश्वानर (ख) विश्व (ग) प्रज्ञा (घ) ईश्वर

3. जैन मत के अनुसार ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

   (क) 4 (ख) 6 (ग) 4 (घ) 7

4. अनेकांतवादी कौन हैं?

   (क) चार्वाक (ख) जैन (ग) बौद्ध (घ)

5. वेदांती चार्वाक न्याय में कितने प्रमाण हैं?

   (क) 2 (ख) 3 (ग) 1 (घ)

6. चार्वाक के मत में प्रमा कौन है?

   (क) प्रत्यक्ष (ख) अनुमिति (ग) उपमिति (घ) शाब्दी

7. लिंग प्रमाण की अपेक्षा क्या प्रमाण बलवान है?

   (क) श्रुति (ख) वाक्य (ग) स्थान (घ)

8. समाख्या भट्ट के मतानुसार प्रमेयों की संख्या कितनी है?

   (क) 4 (ख) 5 (ग) 9 (घ) 12

9. अज्ञान त्रिगुणात्मक है ऐसा कौन नहीं मानते हैं?

(क) सांख्य (ख) नैयायिक (ग) योगी (घ) वेदांती

10. ''यथोर्णनभि:'' यह मंत्र किस उपनिषद में है?

(क) कठोपनिषद (ख) इशोपनिषद (ग) मुंडकोपनिषद (घ) मांडूक्योपनिषद

(B) दसों के यथा निर्देश उत्तर लिखें-

1. ब्रह्म सूत्र में कितने अध्याय हैं और वह कौन-कौन से हैं?
2. कौन तेजस? कौन हिरण्यगर्भ?
3. चार्वाक का अन्य नाम क्या है? प्रथम तीर्थंकर कौन थे?
4. चार्वाक के मत में कितने तत्व हैं? जैन दर्शन के मत में कितने प्रमाण हैं?
5. अर्थापति का भेद लिखो। वेदांत परिभाषाकार के मत में अर्थापति का लक्षण क्या है?
6. अद्वैत शब्द का अर्थ परिभाषित करें। अद्भुत में जगत किस तरह का है?
7. सांख्यकारिका में सत्कार्य उपपादित करने के लिए कितनी युक्तियां उद्धृत हैं और वह कौन-कौन सी हैं?
8. ब्रह्म के सगुणत्व को प्रतिपादित करने वाली एक श्रुति और एक स्मृति का उदाहरण प्रस्तुत करें।
9. अज्ञान का लक्षण क्या है? वह किस प्रकार जगत का कारण है?
10. दस विद्या के स्थान कौन-कौन से हैं?

(C) दस का कुछ विस्तार से उत्तर के द्वारा समाधान करो-

1. भगवान श्री कृष्ण के स्वरूप का निर्णय करें अथव बृहदारण्यक का विषय संक्षेप में लिखें।
2. जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष तत्व को प्रतिपादित करें।
3. मीमांसा मत के अनुसार अनुपलब्धि प्रमाण को विस्तार से आलोचित करें अथवा मीमांसा मत के अनुसार अर्थापत्ती प्रमाण को आलोचित करें।
4. अद्वैत वेदांत में ब्रह्म के स्वरूप की आलोचना करें अथवा अद्धैत वेदांत के अनुसार माया के विशिष्ट्य को लिखें।
5. द्वैत वेदांत दर्शन के अनुसार मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करें अथवा विशिष्टद्वैत दर्शन के अनुसार ईश्वर के स्वरूप की आलोचना करें।
6. ब्रह्म के तटस्थ लक्षण की आलोचना करें अथवा बिंब प्रतिबिंब के अनुसार परमेश्वर स्वरूप की आलोचना करें।
7. ब्रह्म के स्वरूप लक्षण की आलोचना करें अथवा अद्वैत वेदांत के अनुसार अर्थाध्यास का वर्णन करें।
8. अज्ञान की त्रिगुणात्मकता का वर्णन करें अथवा अवच्छेदवादानुसार ईश्वर स्वरूप का वर्णन करें।

9. ब्रह्म शब्द की उत्पत्ति लिखकर उसके अर्थ का निरूपण करें अथवा मुमुक्षु किसे कहते हैं वर्णन करें।

10. कर्म भेदों की आलोचना करें अथवा अपवाद किसे कहते हैं वर्णन करें।

(D) पांचों प्रश्नों का बहुत ही विस्तार से उत्तर के द्वारा समाधान करो-

1. न्याय प्रस्थान विषय में प्रबंध लिखें अथ्वा गीता के अनुसार आत्मा स्वरूप का प्रतिपादन करें।

2. सांख्य मत के अनुसार सत्कार्य वाद का वर्णन करें अथवा सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टिक्रम का वर्णन करें।

3. विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार प्रमाण पर विचार करें अथवा अद्वैत में किस प्रकार निर्गुण ब्रह्म जगत के उपादान कारण और निमित्त कारण होते हैं।

4. अज्ञान के अनिर्वचन का निरूपण करें अथवा अज्ञान के भेदों पर विचार प्रस्तुत करें।

5. अधिकारी लक्षण की आलोचना करें अथवा सूक्ष्म शरीर के विषय में विस्तार से टिप्पणी करें।

आदर्श प्रश्न पत्र की अंङ्क योजना

(A) दसों प्रश्नों का युक्त विकल्प

1. क 2. ख 3. ख 4. ग 5. क 6. ग 7. ख 8. घ 9. घ 10. क

(B) दसों प्रश्नों का यथा निर्देश उत्तर

1) ब्रह्मसूत्रे चत्वारः अध्ययाः। ते हि समन्वयाध्यायः, अविरोधाध्यायः, साधनाध्यायः, फलाध्यायश्चेचति।

2) व्यष्टिसूक्ष्म शरीराभिमानी जीवः तैजसः। समष्टिसूक्ष्मशरीराभिमानी जीवः हिरण्यगर्भः।

3) चार्वाकाणाम् अपरं नाम लोकायतिकाः इति। प्रथमतीर्थङ्करः ऋषभदेवः।

4) चार्वाकमते चत्वारि तत्त्वानि। जैनदर्शनमते द्वे प्रमाणे।

5) अर्थापत्तिः दृष्टार्थापत्तिः, श्रुतार्थापत्तिः इति भेदेन द्वेधा। उपपाद्यज्ञानेन उपपादककल्पनम् अर्थापत्तिः इति वेदान्तपरिभाषाकरः।

6) नास्ति द्वैतं यत्र तद् अद्वैतम्, द्वैतनिषेधः इत्यर्थः। अद्वैते जगत, शुक्तिरजतवत् प्रातिभासिकं मिथ्या।

7) सांख्यकारिकायाम् सत्कार्यमुपपादयितुम् पञ्च युक्तयः उपन्यस्ताः। ता हि असदकरणात् उपदानग्रहणात् सर्व सम्भवाभावात् शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च।

8) ब्रह्मणः सगुणत्वप्रतिपादिनी श्रुतिः- (श्वेतश्वतरोपनिषद्) ''त्वं स्त्री त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः (4/3) इति स्मृतिः- (श्रीमद्भगवतगीता) ''सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति (13/13) इति।

9) सदसदभ्याम् अनिर्वचनीयम् त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति। तत् जगतः उपादानकारणम्।

10) पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्त
छन्दोज्योतिषाणि षडङ्गानि इति दश विद्यास्थानानि।

(C) दसों प्रश्नों के कुछ विस्तार के साथ उत्तर के द्वारा समाधान :-

1) पाठ-6/3 देखें।

2) पाठ-7 देखें।

3) पाठ-14/12 देखें।

4) पाठ-15/13 देखें।

5) पाठ-16/14 देखें।

6) पाठ-19/17 देखें।

7) पाठ-18/16 देखें।

8) पाठ-19/16 देखें।

9) पाठ–18/15 देखें।

10) बिन्दु–17/20 देखें।

(D) प्रदत्त प्रश्नों का दीर्घ उत्तर से समाधान :–

1) पाठ–6/4 देखें।

2) पाठ–12/10 देखें।

3) पाठ–15/14 देखें।

4) बिन्दु–19/17 देखें।

5) बिन्दु–17/20 देखें।